बिहार में १८५७

(छोटानागपुर तथा संथाल परगना)

प्रणव चन्द्र राय चौधरी, एम०ए०, बी०एल०,

विशेष पदाधिकारी

विवरणिका पुनरीक्षण शाखा, राजस्व विभाग,
बिहार सरकार

विवरणिका पुनरीक्षण कार्यालय, राजस्व विभाग,
बिहार, पटना, १९५९

अधीक्षक, सचिवालय मुद्रणालय,
बिहार, पटना, द्वारा मुद्रित
१९५९

[मूल्य—२·५० न० पै०]

प्राक्कथन।

सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का जो रूप छोटानागपुर और संथाल परगने में था, वह बहुत कम प्रकाशित हो सका है। नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय पुरालेखागार, जिला समाहरणालय के अभिलेख कक्षों एवं अन्य स्थानों से उपलब्ध कुछ मूल अभिलेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां का स्वाधीनता आन्दोलन जैसा कि कुछ अंग्रेजी इतिहासों में वर्णित है, उससे कुछ विभिन्न तरह का ही था। उन लेखकों ने यह दिखाने की भरपूर चेष्टा की है कि यहां के आन्दोलन को जन सहयोग प्राप्त नहीं हुआ तथा इसे बड़ी सुगमता से दबा दिया गया। प्रस्तुत प्रात में प्रोद्धित कुछ मौलिक एवं प्रामाणिक प्रलेखों से यह पूर्णतया प्रमाणित होता है कि बिहार के इन क्षेत्रों का आन्दोलन अन्य क्षेत्रों से भिन्न नहीं था। राष्ट्र के अन्य भागों के साथ ही इन भागों में भी क्रान्ति की चिनगारियां उग्रतर रूप में फूट पड़ी थीं। अभिलेखों से इस बात की पुष्टि होती है कि सन् १८५७ के आन्दोलन से पहले भी, सन् १८३१—३३ तथा १८५३—५६ में ही क्रमशः सिंहभूम के कोलों तथा संथालों ने देशव्यापी प्रचंड स्वातन्त्र्य आन्दोलन छेड़ा था, भले ही संथालियों द्वारा परिचालित, १८५३—५६ के ये दोनों आन्दोलन निर्ममतापूर्वक दबा दिये गये।

राष्ट्र के अन्य भागों की तरह, यहां का सन् १८५७ का स्वातन्त्र्य-आन्दोलन एक सामूहिक जन-क्रान्ति था, जिसे सभी वर्गों के व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। इसमें (हिन्दू और मुसलमान) संथाल, मांझी, चेरो, भोगता, खेरवार, जागीरदार, जमींदार, टिकैत, दीवान, सिपाही, किसान, जमींदार, सूबेदार, जैसे लोग सम्मिलित थे। भोजपुर और बिहार के लोगों का भी सहयोग इसमें था, खासकर इसमें सुलगी के लाल जगत पाल सिंह जैसे व्यक्ति भी थे जो परम वीर, स्वयं, बाबू कुंवर सिंह के दामाद थे।

कुछ वृत्तान्तों के अनुसार "पूरे आन्दोलन काल तक छोटानागपुर प्रमंडल चिन्ता एवं व्याकुलता का विषय बना था तथा समय-समय पर उलझन, कठिनाइयां और प्रत्यक्ष विपत्तियां भी सामने आ पड़ती थीं। वस्तुतः इस राज्य में जैसा निरन्तर संघर्ष चलता रहा, वैसा बंगाल के किसी भी भूभाग में नही था" (फ्रेडरिक हेलिडे)।

चतरा (हजारीबाग) में हुए निरन्तर युद्ध का विशद वर्णन उपलब्ध है, जिसकी सफलता तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों के द्वारा इस तरह वर्णित है:—"यद्यपि यह (सफलता) पर्याप्त हानि के पश्चात् प्राप्त हुई, फिर भी जिस लक्ष्य की पूर्त्ति हुई, वह महत्त्वपूर्ण है और मुझे विश्वास है कि अगर यह सोन से कलकत्ता, पूरे देश में अमन को सुदृढ़ नहीं भी कर सकी, तो कम-से-कम बिहार में पूर्ण रूप से शीघ्र ही शान्ति स्थापित कर सकेगी। (छोटानागपुर मंडल के स्थानापन्न आयुक्त के नाम हजारीबाग के प्रधान सहायक आयुक्त का दिनांक ४ अक्टूबर, १८५७ का पत्र)"। ऐसे बर्बरतापूर्ण एवं भयानक तरीके का भी वर्णन मिलता है जिसमें प्रतिशोधात्मक दंड दिये जाने का उल्लेख है। इस युद्ध के वर्णन क्रम में ही उक्त पत्र आगे लिखता है—"ये दोनों विद्रोही, जयमंगल पान्डेय तथा घायल नादिर अली, जिन्होंने दो दिन पहले अंग्रेजी फौज के विरुद्ध जमकर इसी जगह मुकाबला किया था, वहीं मैंने, अपने आयुक्त पद से, उनकी अभियोग-परीक्षा की एवं उन्हें फांसी की सजा दी और जिसको आज ही प्रातःकाल कार्यान्वित किया गया।

संथाल परगनान्तर्गत देवघर के समीप रोहिणी नामक ग्राम में कुछ स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों को जिन पर कुछ भी संदेह होता था, अत्यन्त निर्दयतापूर्वक शूली पर चढ़ा दिया जाता था। यहां तक कि एक मेजर ने, सिर पर घाव होने के बावजूद भी, बिना किसी राज्यादेश के कुछ शहीदों को फांसी पर लटका दिया। उसने स्वयं रस्सी का लगाया जाना भी देखा, जिससे किसी तरह की गड़बड़ी न हो। उस मेजर के ही शब्दों में इस क्रूरता की भयानकता का अन्दाज लगाया जा सकता है। उसने कहा है, "इस तरह मैंने एक पिस्तौल उठाया और कैदियों के कानों से सटाते हुए निश्चित मुद्रा में कहा कि तुम्हारे मुंह से दूसरा शब्द निकला कि तुम्हारा सर टुकड़े-टुकड़े होकर भूमि पर बिखर जायगा। कैदी भय से कांप गया और उसने अपनी जीभ थाम्ह ली। हाथी आया, कैदी को उस पर चढ़ा दिया गया, रस्सी ठीक की गयी, हाथी आगे बढ़ा और कैदी लटकता रह गया। इस तरह मैंने दूसरों को भी चढ़ाया और उनकी भी वही गति हुई"। निर्दयता अपनी सीमा तक पहुंच चुकी थी। इन हुतात्माओं को मातृभूमि को स्वतन्त्र बनाने के अभियान में इतनी महंगी कीमत चुकानी पड़ी थी।

बड़कागढ़ के ठाकुर विश्वनाथ शाही तथा छोटानागपुर महाराज के भूतपूर्व दीवान भौंरो के गनपत राय, रांची के इन दोनों नेताओं की संक्षिप्ततः सुनवाई हुई और उन्हें क्रमशः ६ तथा २१ अप्रील को मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई और उसी दिन ये रांची के पुराने आयुक्तालय के अहाते में उत्तर तरफ एक वृक्ष पर निर्ममतापूर्वक फांसी पर चढ़ा दिये गये। पाण्डे गनपत राय के ११ गांवों के साथ ही ठाकुर के भी ९७ गांवों को सन् १८५७ के दिसम्बर महीने में ही जब्त कर लिया गया था। हमीर के राजा टिकैत उमराव सिंह और अन्य लोगों को भी इसी तरह का दण्ड ६ जनवरी, १८५८ को मिला, और दो दिन ही बाद उनको फांसी दे दी गई।

रांची, हजारीबाग और पलामू के इस आन्दोलन के अग्रणी, बाबू कुंवर सिंह से, जो उत्तर प्रदेश की ओर बढ़ चुके थे, मिलने के लिए बढ़ रहे थे। केवल पलामू के चेरो जमींदार ही नहीं, भोगता लोगों ने भी ब्रिटिश समाज्य के विरुद्ध हथियार उठाया था। वस्तुतः संपूर्ण पलामू मण्डल के निवासी एक-एक कर शस्त्र सुसज्जित हो चुके थे। अन्ततोगत्वा दो प्रमुख नेता, नीलाम्बर तथा पीताम्बर शाही, वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए पकड़े गये। उनकी सुनवाई हुई और उन्हें फांसी पर लटका दिया गया। इस तरह अन्य जिन व्यक्तियों की ऐसी गति हुई उनमें हमीर के राजा सिंह, टिकैत उनारस सिंह तथा उनके दीवान शेख भिखारी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन मौलिक तथ्यों के अध्ययन के बाद मेरी इच्छा थी कि मैं छोटानागपुर और संथाल परगना के स्वाधीनता संग्राम का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करूँ जिससे भविष्य के इतिहासकारों तथा अनुसंधानकर्त्ताओं को प्रामाणिक एवं हद् इतिहास तैयार करने में सुविधा मिले। मैंने अपना यह प्रस्ताव मुख्य मंत्री डा० श्रीकृष्ण सिंह जी के समक्ष रखा तथा उन्होंने अपने अनुसंधान, अध्ययन एवं विद्वत्ता के लिये स्वाभाविक प्रेम स्वभावगत महानता के कारण मेरे उक्त प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। जिला-विवरणिका-पुनरीक्षण के लिये विशेष पदाधिकारी के पद पर आसीन होने के नाते श्री पी० सी० राय चौधरी ने पुराने अभिलेखों के अध्ययन से प्रचुर सामग्रियों का संकलन किया है। इस पुस्तक के अवलोकन से लेखक के स्तुत्य प्रयास का परिचय मिलेगा।

सन् १८५७ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि अतीत में ही उद्भूत है और श्री पी० सी० राय चौधरी ने स्वभावतः कुछ हद तक इसकी समीक्षा भी की है। मुझे आशा तथा

विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक केवल वर्त्तमान समय के ही नहीं, बल्कि भविष्य के इतिहासकारों तथा अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये भी आकर्षण का विषय बना रहेगा। यद्यपि कोई-कोई लेखक द्वारा की गयी व्याख्या से सभी बातों पर सहमत न भी हों, लेकिन फिर भी सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के सम्बंध में विशेष अनुसंधान करने में इससे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है।

पाठकों के सम्मुख इसे प्रस्तुत करने में मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है।

राधा गोविन्द प्रसाद,
एम० ए०, बी० एल०, एम० एल० सी०,
उप-मंत्री (राजस्व, वन, धार्मिक धर्मस्व एवं न्यास के प्रभारी),
बिहार सरकार।

पटना :
१५ अगस्त, १९५७।

आमुख ।

बिहार के अन्य भागों के सन् १८५७ के स्वाधीनता आन्दोलन से छोटानागपुर और संथाल परगना का स्वाधीनता आन्दोलन कुछ भिन्न सा था। इन भागों में ब्रिटिश शासकों और साधारण जनता के बीच एक गहरी खाई थी। बृटिश शासकों ने अपने जन्मजात मनोबल तथा शासन यंत्र के विस्तार एवं स्थितिकरण की प्रेरणा से बड़े-बड़े नेताओं को कुचल दिया जिससे जन-आन्दोलन को प्रोत्साहन मिल पाता। छोटानागपुर और संथाल परगने में आदिवासियों के प्रति जो व्यवहार किया गया उसमें इस तथ्य को पूर्णतः ही भुला दिया गया कि वे अभिजात वर्ग के थे और उनकी भी अपनी संस्कृति थी तथा वे अजायब घरों की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु ही नहीं थे। इन इलाकों में समाज की सभी प्रमुख संस्थाओं, परम्पराओं एवं रीति रिवाजों के प्रति एक घोर उपेक्षा का भाव दिखाया गया जिनकी जड़ें समाज में गहरी जमी थी। राज्य का एक ही उद्देश्य रह गया और वह था इसे पूर्ण रूप से स्थापित करना। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये वहां एक खास किस्म की प्रशासनिक व्यवस्था ही लाद दी गई तथा इसे अपने आप नहीं पनपने दिया गया। छोटानागपुर और संथाल परगने का १८५७ का आन्दोलन इन्हीं दुखों का पर्यवसान था। आदिवासी समाज को मृत्यु स्तर तक ले आया गया। उन्हें अपने शासकों पर ही अब निर्भर करना पड़ता जो पहले ईश्वर की दया का सदैव भरोसा रखते थे।

प्रस्तुत पुस्तक में छोटानागपुर और संथाल परगने के १८५७ के स्वाधीनता आन्दोलन के विकास को चित्रित किया गया है जो मौलिक प्रमाणों, अन्य सामग्रियों एवं पूर्व इतिहास की पृष्ठभूमि के अध्ययन पर आधारित है। उक्त आन्दोलन जनमत से अनुप्राणित एवं लोकप्रिय था। इसमें किसी प्रकार के स्वार्थ का समावेश न था और वह एक स्वाभाविक क्रान्ति थी। आदिवासी यह भलीभांति जानते थे कि शासकों के बन्दूक और तोप गोलों के सम्मुख उनके तीर धनुष तुच्छ प्रमाणित होंगे फिर भी उन्होंने क्रान्ति की और यही तो इस विषण्ण कथा का चरम आकर्षण है।

विशेष सामग्री पाने के लिये मैंने राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली और पश्चिम बंगाल सरकार के शिक्षा विभाग के अभिलेखागार का निरीक्षण किया तथा वहां के निर्देशक एवं सहायक निर्देशक (डा० टी० राय चौधरी एवं श्री एस० राय) की मदद से प्रचुर परिमाण में प्रलेखों का संग्रह किया। पुरातन अभिलेख-संरक्षक, पश्चिम बंगाल सरकार, श्री जी० एन० चन्द्रा से भी काफी सहयोग मिला। और मुझे उनसे संथाल परगने से सम्बन्धित बहुत से कागजात मिले। उनकी मदद के लिये मैं उन लोगों का बहुत ही अनुगृहीत हूँ।

हजारीबाग और सिंहभूम के पुराने जमाने के पत्राचार की प्रतियां जिनका निचोड़-विवरणिका-पुनरीक्षण शाखा द्वारा हजारीबाग ओल्ड रेकर्ड्स और सिंहभूम ओल्ड रेकर्ड्स के रूप में प्रकाशित हुआ है, बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। दूसरे अभिलेखागार के अभिलेखों से तथा समकालीन लेखकों से भी सहायता ली गई है।

राजस्व मंत्री, पंडित विनोदानन्द झा तथा उप-मंत्री श्री राधागोविन्द प्रसाद से अमूल्य सुझाव पाने के कारण, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। उन लोगों की बहुत ही प्रबल इच्छा थी कि छोटानागपुर और संथाल परगना में १८५७ ई० का विवरण पूरे प्रामाणिक प्रलेखों पर आधारित हो। उनलोगों ने मुझे राज्य के अन्दर या बाहर जहां कहीं से भी सामग्री एकत्रित कर उसके आधार पर पुस्तक लिखने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी।

अधीक्षक, सचिवालय प्रेस, गुलजारबाग तथा उनके सहायकों का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस किताब को २६ जनवरी के शुभ अवसर पर बहुत ही सीमित समय में प्रकाशित करने का कष्ट किया।

इस पुस्तक के कुछ हिस्से का अनुवाद मेरे परम मित्र स्वर्गीय श्री विभूति नाथ झा, आई० ए० एस०, जिलाधीश, मुजफ्फरपुर के द्वारा किया गया था। किन्तु उनकी अकाल मृत्यु से यह काम कुछ दिनों तक रुका रहा। अतः इस अधूरे कार्य को हमारे कार्यालय के अन्वेषण सहायक, श्री चन्द्र नारायण मिश्र, एम० ए० के द्वारा संपन्न किया गया।

इस पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ था और अब सरकारी आदेश, जनता की सेवा आदि को ध्यान में रख कर मुझे इस "१८५७ इन बिहार" के द्वितीय अंग्रेजी संस्करण के साथ-साथ इसका हिन्दी संस्करण भी जनता के सामने प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है।

विवरणिका-पुनरीक्षण शाखा,
राजस्व विभाग,
बिहार, पटना।

पी० सी० राय चौधरी।

विषय-सूची ।

प्रथम परिच्छेद

संथाल परगना

पृष्ठभूमि

सन् १८५५ में धारा "३७" के अनुसार भागलपुर और वीरभूमि जिलों के कुछ हिस्से लेकर संथाल परगने की सृष्टि हुई और उसी समय से इस जिले का इतिहास प्रस्वीकृत प्रशासनिक इकाई के रूप में प्रारम्भ होता है। संथाल परगने के रूप में एक अलग जिले की सृष्टि विपुल संथाल विद्रोह (१८५४-५५) का प्रत्यक्ष परिणाम है, जिस विद्रोह के मूल कारणों का वर्णन अलग किया गया है। इसके पूर्व संथाल परगना तथा इसके समीपवर्त्ती इलाके को, जिनमें अभी हजारीबाग, मुंगेर तथा भागलपुर के जिले सम्मिलित हैं, "जंगली इलाका" कहा जाता था, तथा जब सन् १७६५ में ईस्ट इंडिया कंपनी को दीवानी मिली, इस क्षेत्र पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया था।

मुसलमानी शासन-काल पर्यन्त, इस क्षेत्र का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करना कुछ सरल नहीं है। उपलब्ध-प्रस्तर खंड एवं भग्नावशेष ही, वहां की प्राचीन उच्च सभ्यता के द्योतक हैं। अभिलेख के अनुसार मेलर (सौरिया पहाड़िया) यहां के प्राचीनतर आदिवासियों में गिने जाते हैं। मेगास्थनीज ने उन्हें "मल्ली" नाम से ३०२ ई० पूर्व में सम्बोधित किया है। ह्वेनसंग (६४५ ई०) ने भी इनकी चर्चा अपने विवरणों में की है।

राजमहल के आसपास के क्षेत्र एवं संथाल परगने के कुछ हिस्से अपने सामरिक तथा आर्थिक महत्त्व के बदौलत पुर्त्तगाली लेखकों, यवन इतिहासकारों तथा यूरोपीय कम्पनियों के ध्यान में बहुत पूर्व ही आये। खास कर ये क्षेत्र नदियों से घिरे रहने के कारण बहुतों को आकृष्ट कर सके। बहुत ही उथल-पुथल के बाद साम्राज्यवादियों ने १५८०-८१ ई० में, अन्ततोगत्वा, बिहार पर अपना स्वामित्त्व स्थापित किया।

अकबर ने खान-ई-आजम को बंगाल का गवर्नर बना कर भेजा। वहां, खान-ई-आजम, तेलियागढ़ी को पुनः जीत कर जब २७ मार्च, सन् १५८२ ई० में राजमहल के पास कतियागंज नौतरन-नहर पहुँच चुका था, तो उसे अफगानों से मिले हुए विद्रोहियों का सामना करना पड़ा। साम्राज्यवादियों की विजय हुई।

सन् १५६२ में बंगाल की राजधानी राजमहल में बनी। अकबर ने मई, १५६४ में मानसिंह को बंगाल का सूबेदार बनाकर भेजा और सन् १५६५ में मानसिंह ने राजमहल में नई राजधानी की नींव डाली। किन्तु इस्लाम खां सन् १६१२ में फौजी तथा राजनीतिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर अपनी राजधानी राजमहल से हटाकर ढाका ले गया। फिर भी बाद में शाह शूजा की राजधानी राजमहल में हो जाने के कारण अंग्रेजों ने डा० गैब्रियेल बोटन को वहां का प्रशासकीय प्रतिनिधि नियुक्त किया, जिसका राजकुमार के ऊपर पर्याप्त प्रभाव था। लेकिन शाह शूजा के अधःपतन के बाद अंग्रेज व्यापारियों की परेशानी बढ़ गई तथा उनकी नावें, नये गवर्नर मीर जमला के आदेश से रोकी जाने लगी। अन्ततोगत्वा सन् १६७६ तक राजमहल में अंग्रेज व्यापारियों का अभिकर्तृत्व राजमहल में कुछ जम-सा गया। इसी तरह क्रमशः विभिन्न परिस्थितियों से

गुजरता हुआ, सन् १७४२ में राजमहल मराठों के कब्जे में आया और १७६३ ई० में उधुवा नाला में मीर कासिम अली का मेजर एडम्स से परास्त होने के बाद से अंग्रेजों का संथाल परगने से सीधा संपर्क हो गया। और जैसा कि ओमेली ने लिखा है प्रथमतः ब्रिटिश शासन पद्धति का राजमहल हिल्स के पहाड़ी जातियों को सुविधा प्रदान करना ही प्रधान उद्देश्य था।

प्रारंभिक अंग्रेज शासक

कप्तान ब्रुक, कप्तान ब्राउन, औगस्ट क्लीव लैंड आदि कुछ आरम्भ के ऐसे प्रशासक थे, जिन्होंने ब्रिटिश सत्ता को इस क्षेत्र में सुदृढ़ करने की कोशिश की। खास कर प्रारम्भ में क्लीवलैंड जो २९ वर्ष की ही उम्र में १३ जनवरी, १७८४ ई० में मृत्यु का शिकार हुआ, पहाड़ी लोगों का विश्वास प्राप्त कर सका। यहां तक कि उसको पहाड़ी लोग प्रेमवश "चिलमिली साहब" कहकर पुकारने लगे। यही क्लीवलैंड ने दंड-अभियोगों के परीक्षण निमित्त जो नियम बनाया उनमें से कुछ १७९६ ई० के प्रथम विनिमय में समाविष्ट कर लिये गये। इसी तरह अन्य प्रशासक यहां के शासन क्रम में हाथ बंटाते रहे जिनमें महाशय सदरलैंड तथा उनके निम्नलिखित कुछ अभिस्ताव उल्लेखनीय हैं। सदरलैंड के अनुसार---

(१) सरकार पहाड़ी व्यक्तियों द्वारा अधिकृत क्षेत्र को एकमात्र राजकीय सम्पत्ति घोषित करे।

(२) वह समतल भूमि भी जो पहाड़ी की वाह्य श्रेणियों के किनारे पड़ती है और समीपवर्त्ती जमींदार के सम्पत्ति से पृथक् है, सरकारी सम्पत्ति है।

(३) पहाड़ियों और पहाड़ी भूभागों की सीमा सुनिश्चित किये जायं।

(४) दंड न्यायालय के क्षेत्राधिकार के साथ ही सामान्य पुलिस पद्धति का प्रयोग करते हुए चन्द नागरिक अधिकारों के समायोजन निमित्त भागलपुर के दंडाधिकारी को संक्षेपतः कार्य शक्ति प्रदान कर १७९६ ई० के प्रथम विनिमय के अनुसार पहाड़ी जातियों से सम्बद्ध न्याय-प्रशासन-दोषों का निराकरण किया जाय।

(५) सरदार, नायब तथा निम्नस्थ मांझियों के वृत्तिका-शोधन-नियम और भी ठोस बनाये जायं।

१९वीं शताब्दी का प्रारंभिक काल

उपरोक्त अनुशाखाएँ १८२३ और १८३७ ई० में सरकार द्वारा स्वीकृत कर ली गई। श्री पोन्टेट राजस्व-प्रशासन के प्रभारी बनाये गये। संथालियों को जंगल साफ करने के लिये प्रोत्साहित किया गया जिसमें उनलोगों ने अपनी पूरी अभिरुचि दिखलाई। स्पष्टतः सबों की दृष्टि में शासन सुदृढ़ और संतोषप्रद दिखाई पड़ने लगा और संथाली संतुष्ट हो गये।

किन्तु यह एक छलना मात्र था। प्रशासनिक पद्धति की अन्तर्व्यवस्था साधारण जनता के प्रति न्याय करने से असमर्थ थी, और अन्दर ही अन्दर, सरल किन्तु शीघ्र उत्तेजित होनेवाले, संथालियों के हृदय में असंतोष बढ़ रहा था, जो अन्त में संथालियों के विद्रोह (१८५५) के रूप में फूट पड़ा जिसे "हूल" भी कहते हैं।

संथाल विप्लव की पृष्ठभूमि

संथालियों पर चलते दमन चक्र को दूर करने के लिये जो कदम उठाये गये, उनके बावजूद क्रान्ति की जो लहर उठी, उसका विश्लेषण आवश्यक है। भागलपुर के तत्कालीन जिलाधीश श्री एच० जे० जेम्स को दिये गये पत्र में श्री पोंटेट ने अपने कर्त्तव्य का निरूपण निम्नलिखित तरह से किया है :—

मुझे विश्वास है कि यह मेरी धृष्टता नहीं होगी, अगर मैं अपने उन कर्त्तव्यों का निरूपण करूँ जिसे "राजस्व सदर बोर्ड" के जिलाधीश डनवर ने २५ जनवरी, १८५७ को निर्देश किया था, अर्थात्—

(१) इस जिले का विस्तृत जंगली क्षेत्र, दामिन कोह जो बहुत दिनों से पहाड़ियों की पैत्रिक सम्पत्ति मानी जाती थी, उस पर राज्यादेश (दिनांक १७ जुलाई १८२३, कंडिका ३१-३२) के अनुसार शांतिपूर्ण ढंग से अधिकार प्राप्त करना ;

(२) पहाड़ियों में कृषि के लिए अभिरुचि पैदा करना;

(३) ६ दिसम्बर, १८२७ के राज्यादेश के अनुसार मांझी, नायब, और सरदारों को जागीर दे देना;

(४) नये बसने वाले उद्योगी संथाल जिन्हें शोषक जमींदारों ने उनके जन्मस्थान वीरभूमि और सिंहभूमि से निकाल दिया था, उनकी रक्षा करना;

(५) दामिन के अन्दर सारी जमीनों को, जिन पर जमींदारों ने गुप्त रूप से अधिकार कर रखा था, पुनः प्राप्त करना;

(६) हर वर्ग के लोगों के लिए दामिन के संसाधनों को सुलभ करने के लिए और भी अधिक बाशिन्दों को घने जंगलों को साफ करने के लिये प्रोत्साहित करना, जिसमें देश की स्थिति सुदृढ़ हो;

(७) इस परती जमीन की अनुमानित उपज के सम्बन्ध में सरकार को आवश्यक रूप से अवगत कराना ; और

(८) अन्ततः इन कार्यों को संपन्न करने से सरकार को पर्याप्त राजस्व की प्राप्ति होगी एवं साथ ही यहां की जाति सभ्य तथा क्षेत्र स्वावलम्बी हो सकेगा।

महाशय पोन्टेट इन उपरोक्त ध्येयों को सामने रख कर संथालियों के उत्कर्ष में सहयोग देते रहे, जैसा कि निम्नलिखित तीन पत्रों से, जो अभिलेखागार में प्राप्त हुए हैं, पता चलता है। पत्र क्रमशः १८५०, १८५१, १८५३ ई० के हैं।

पत्र पहला

संख्या—३० ।

प्रेषक :—भागलपुर के जिलाधीश ।

प्रेषित :—श्री जी० एफ० ब्राउन,

आगम-आयुक्त, भागलपुर ।

दिनांक १८ दिसम्बर, १८५० ई० ।

महाशय,

मुझे आपका गत २० तारीख का पत्र पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । पत्रोत्तर में मैं दामिनी कोह के आगम-व्यवस्था का ब्योरा पेश कर रहा हूँ और उसके साथ-साथ महाशय पौन्टेट के (१८४९-५०) वार्षिक-विवरण का सार भी भेज रहा हूं ।

पाश्र्व भाग में मांग, संग्रह तथा बाकी करों के विवरण १८४८-४९ और १८४९-५० के उद्धरित हैं जिससे स्पष्ट होता है कि गत साल के मुकाबले में वर्त्तमान वर्ष का जमा ३,००० रु० के लगभग ज्यादा है तथा इस साल में बकाया कम है । जिन महालों पर कर लगाया जाता है, वे १,१७९ हैं । महाल सब थाने के हिसाब से पंजीयन किये हुए हैं, और वे दामिनी कोह में चार हैं । पाश्र्व भाग में थाना, महाल, जमा आदि का ब्योरा उद्धरित है ; जो १८४८-४९ का है और १,१३४ महाल पर लगाया गया है ।

	१८४८-४९ ।			१८४९-५० ।		
	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
मांग ..	४०,९४७	१	३	४३,७२४	५	५¾
संग्रह ..	३९,२५०	११	९	४२,०८०	७	३
बाकी ..	१,६९६	५	६	१,६४३	१४	२¾

थाना ।	महाल की संख्या ।	जमा की रकम ।		
		रु०	आ०	पा०
राजमहल	४००	१५,८१८	२	५¾
दिघी	२९४	१०,१९५	१०	०
कुड़रिया	१८१	८,०९४	९	०
दुमका	३०४	९,६१६	०	०
कुल ..	१,१७९	४३,७२४	५	५¾

बकाये का ४८६ रु० ७ आ० ६ पा० वसूल हुआ है और शेष महाशय पौन्टेट के अगले जाड़े में निरीक्षण के मौके पर चुकता किया जायेगा। सवाल उठ सकता है कि बकाया क्यों रहता है। मगर महाशय पौन्टेट वर्ष के किसी खास समय में मात्र एक ही बार निरीक्षण में जाते हैं और वसूली की इजाजत अपने समक्ष में ही देते हैं ताकि प्रजा खामखाह तंग नहीं किये जायें। अतः ऐसा मौका आ जाता है कि सारी रियाया से नहीं मिला जा सके हालांकि ज्यादातर लोग मिल ही जाते हैं। तब भी चन्द तरह की दिक्कतें होने के बावजूद भी, यथा किसी का बीमार रहना, किसी का मुकदमे के सिलसिले में घर से बाहर रहना आदि असुविधाओं के होने पर भी महाशय पौन्टेट धन्यवाद के पात्र हैं कि प्राप्य कर के मुकाबले में बकाया बहुत कम है।

किसान—दामुन की खेती पहाड़ियों, संथालियों, बनियों तथा कुछ धांगरों के द्वारा होती है। खेतिहरों में प्रधानतः पहाड़ी लोग हैं जो राजमहल, कुढ़ुरिया तथा दिघी क्षेत्र में सर्वत्र छिटपुट बसे हुए हैं और अब भागलपुर से कलकत्ता जाने वाली सड़क के किनारे बसते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। गंगा प्रसाद से सकड़ी जानेवाली इस सड़क के आसपास के क्षेत्र में ज्यादा मजदूरों की जरूरत है, हालांकि कुछ धांगर लोग नये बसे हैं जिनकी देखादेखी संथाली भी बस रहे हैं।

पहाड़ी जाति—महाशय पौन्टेट के ख्याल में तीन-चौथाई पहाड़ी इलाका पहाड़ियों के कब्जे में है तथा लगभग २००-३०० पहाड़ी लोग दक्खिनी कुढ़ुरिया में समतल मैदानों में खेती में लगे हुए हैं। ये पहाड़ी संथालियों के परिश्रम को देखकर खुद भी अधिक परिश्रमी हो रहे हैं तथा संथालियों को खेती करने का मौका देते हिचकिचाहट दिखलाते हैं। पहाड़ियों में यह रिवाज सा हो गया है कि जमीन स्वयं खेती करने के शर्त्त पर लेते हैं और संथालियों को किसी निश्चित रकम की अदायगी के शर्त्त पर दे देते हैं। लेकिन महाशय पौन्टेट के निरीक्षण में जहां कहीं भी ऐसा पाया जाता है, उस गांव को महाल में दर्ज कर लिया जाता है तथा संथालियों को, जो खेती करते हैं, खास लगान पर दे दिया जाता है। संथाली लोग बड़ी तन्मयता से कृषि का काम करते हैं, जंगल साफ करते हैं और अगर उन्हें आदेश हो तो पहाड़ी बाशिन्दों के दरवाजों तक की जमीन को आबाद कर सकते हैं। अतः जरूरत तथा परिस्थिति दोनों के वशीभूत होकर पहाड़ियों में भी अध्यवसाय की भावना प्रबल हो रही है।

फसल—यहां की फसल धान, मकई, तेलहन आदि हैं। रूई तथा ईख की खेती में भी सुधार हुआ है। आलू और बैंगन धीरे-धीरे संथालियों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं, हालांकि आलू में सिंचाई व्यवस्था की जैसी जरूरत होती है वैसा करना उन-लोगों को कुछ भार सा मालूम होता है। तब भी इन चार थानों में इस साल २७ मन आलू के बीज से १२५ मन आलू की उपज हुई है। और श्री पौन्टेट गोभी की उपज को भी प्रोत्साहित कर रहे हैं।

बाजार और बसौरी—श्री पौन्टेट ने जब दामिनी कोह का भार ग्रहण किया तो उसने बनियों को यहां का सारा व्यापार अपनाये हुए देखा। प्रजा वर्ग उनसे चूसे जा रहे थे और इसका निराकरण भी कुछ संभव नहीं हो रहा था क्योंकि रियाया छिन्न-भिन्न बसी थी। पौन्टेट का एक बड़ा उद्देश्य यह था कि इस क्षेत्र में जगह-ब-जगह, खासकर बड़ी सड़क के किनारे-किनारे, बाजार बसाये जायें। गत वर्ष के दो को लेकर आज तक १८ ऐसे बाजार बसाये गये हैं, तथा ये बाजार उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर हैं क्योंकि इस सड़क से लेकर मुर्शिदाबाद से भागलपुर के यात्री आदि आना पसन्द करते हैं, बनिस्बत कि, चक्करदार और कंटककीर्ण राजमहल तथा सकरी वाले सड़क

से। श्री पौन्टेट को बाजार बसाने में पहले काफी विरोध किया गया। बनियां सब सोचते थे, और सच ही सोचते थे कि इस तरह के इन्तजाम में उनका रियाया के ऊपर एकाधिपत्य और उनसे बड़ी रकम की आमदनी बिलकुल नहीं रह सकेगी। खैर, इनलोगों की इच्छा पर छोड़ दिया गया कि वे चाहे बाजार में या अपनी पुरानी दूकान में, जहां कहीं भी रह सकते हैं। किन्तु जंगल की अपनी पुरानी दूकान के लिए उनको एक बड़ी रकम देनी पड़ेगी, जो रकम "बसौरी" कहलायेगा। ऐसी परिस्थिति में बनियां लोग एक-एक कर विवश रूप में बाजार में आकर व्यापार करने लगे और "बसौरी" की सरकारी आमदनी नहीं के बराबर हो गई।

दो बहुत ही उपयोगी काम, जिनपर श्री पौन्टेट का ध्यान आकृष्ट हुआ है, सड़कों तथा तालाबों का बनवाना है, और उन्होंने गांव के लोगों को इसकी उपयोगिता समझाकर एक गांव से दूसरे गांव तक सड़क बनाने को आरूढ़ किया है जिससे बदलूगंज से कोलगोंग के दक्खिनी-पूर्वी हिस्से तक आसानी से निरीक्षण किया जा सके। यह सड़क ३५० मील लम्बी तथा चारों क्षेत्रों से गुजरने वाली होगी। इसी तरह दामुन के दूसरे बगल में उधुवा नाला से एक बहुत ही प्रसिद्ध सड़क बनाई गई है जो बगैर सरकारी खर्च के जनता के द्वारा ही बनी तथा हमेशा मरम्मत होती रहती है। ये सड़कें, जिन्हें दरअसल पथ कहा जा सकता है, खास दामुन के लिये काफी उपयोगी हैं, और अगर दामुन के बाहर सड़कों का कुछ इन्तजाम रहता, तो ये और भी विशेष उपयोगी सिद्ध होतीं। श्री पौन्टेट ३ सड़कों का प्रधानतया उल्लेख करते हैं :—

(१) बदलूगंज से कोलगोंग जानेवाली, (२) धुमसारी से भागलपुर को जानेवाली, और (३) दामुन के पूर्वी अम्बार से जंगीपुर को जानेवाली। यहां के नौतरण-कोष-समिति (फेरी फंड कमिटी) से कुछ आशा करना व्यर्थ है क्योंकि उसकी वित्तीय परिस्थिति ही ऐसी नहीं है। तब सरकार की सहायता तथा क्षेत्रीय जमींदारों का सहयोग का भरोसा किया जा सकता है।

तालाब—यहां के प्रजावर्ग को जलाभाव प्रचुर परिमाण में है, लेकिन वे जलाशय खुदवा नहीं सकते। यत्र-तत्र कहीं तालाब है, लेकिन बहुत बुरी हालत में, जैसा कि एक मुदुपारे में देखा गया कि उसकी सफाई अत्यावश्यक थी। अतः अगर सरकार कुछ रकम तालाबों की सफाई तथा नये तालाबों की खुदाई के लिये हर वर्ष खर्च करे, तो सरकारी आय की काफी वृद्धि होगी।

आबकारी—आबकारी के एकाधिकार को खत्म करने के लिये श्री पौन्टेट को आबकारी महाल का भी भार ग्रहण करने को कहा गया। उसने ४ थानों में १८५०-५१ के लिये ४,२१६ रु० के जमा पर महाल निश्चित किया है, जिससे कि इस साल दामिनी-कोह में सरकारी लगान ४७,६४० रु० के करीब बढ़ जायगा और आबकारी आय भी निस्संदेह प्रतिवर्ष क्रमशः बढ़ती रहेगी।

इस साल दो गिरोह के लोगों ने कोयला निकालने की कोशिश की—श्री डन्कन ने हुर्रा के पास कुछ जमीन पट्टे पर ली तथा श्री स्वीडलैंड को मूतीजुमा में आजमाइश के तौर पर कोयला खनने का मौका दिया गया। दोनों ही क्षेत्रों में कोयले पाये गये लेकिन बहुत पतली परत में, और दोनों गिरोह अपने काम से निरुत्साह हो गये, श्री पौन्टेट के मतानुसार दोनों गिरोहों में अनुभव का अभाव था तथा विशेष पूंजी भी।

वे, नहीं लगाना चाहते थे । कोयले जो निकले, अच्छे किस्म के थे। नदी से बहुत दूर दामुन के दक्खिनी पश्चिमी हिस्से में एक और जगह कोयला पाया जाता है ।

सीमा—श्री पौन्टेट के गत वर्ष के विवरण में सरकार और जमींदार के बीच, नये खेती में आये जमीन की सीमा पर कुछ विवाद का जिक्र आया है। और जैसा कि श्री वार्ड, आयुक्त, का प्रस्ताव था, परिबन्ध एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक सीधी रेखा के रूप में जाती है, लेकिन खम्भे जो गड़े हैं इतनी दूरी पर है कि कोई भी पक्ष के आदमी अनजान में ही एक दूसरे के क्षेत्र को अपना सकते हैं। इसके पहले जंगल होने के वजह से विवाद का कोई खास प्रश्न नहीं था, लेकिन अब, क्योंकि उत्तरोत्तर खेती की जमीन बढ़ रही है, विवाद की गुंजाइश भी विशेष होती जा रही है अतः अब सीमा निश्चित किया जाना परमावश्यक हो गया है । मैंने ऐसे विवादग्रस्त जगहों का निरीक्षण किया तथा मेरा निष्कर्ष है कि किसी पेशेवर अमीन के द्वारा एक खंभे से दूसरे खम्भे तक सीधी रेखा खींचकर उसे या तो सड़क या गढ़े में परिणत कर दिया जाय, जिसमें कोई खास खर्च भी नहीं पड़ेगा । बल्कि कितने जगहों में लोग बिना किसी पारितोषित के ही यह काम कर लेंगे ।

अब मुझे केवल श्री पौन्टेट के १८४९-५० के पर्यटन का सार प्रस्तुत करना है, जिसमें कुछ विलम्ब होने के लिये आपका ध्यान इस बात पर आकर्षित करना चाहता हूँ कि इसके लिये मुझे उप-समाहर्त्ता से कुछ और खबर पानी थी, जो मुझे कुछ दिन पहले प्राप्त हुई ।

पर्यटन सार—श्री पौन्टेट १९ अक्टूबर को राजमहल गये और वहां १५ नवम्बर तक रहे । वहां ३० ग्रामों का बन्दोवस्त किया, जिसमें करीब ९०० रु० की आमदनी बढ़ी । जाड़े के दिनों में वे दामिनी-कोह दो बार गये और २६ परिविन्ध-विवाद को तय किया, पहाड़ियों द्वारा दायर किये हुए २४ मुकदमों की सुनवाई और फैसला किया । उन्होंने १८२७ के पहले अनियम के आधार पर १२ अभियोगों का निर्णय किया, जिला-समाहर्त्ता के साथ विवादग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण किया, दो हाटों को बसाया, २२८ ग्रामों का बन्दोवस्त किया, ४५ नये गांवों का कर निर्धारण किया, और इनके अलावा कितने विवादों का तत्काल ही फैसला कर दिया । इस तरह लगान करीब २,७७७ रु० बढ़ गया । उसने कुल ४३,७२४ रु० प्राप्य कर में से ४२,०८० रु० वसूल किया, और उसे जिलाधीश के कार्यालय में भेज दिया, आबकारी विभाग की जांच की और चारों थानों में ४,२१६ रु० का जमा स्थिर किया । और इस तरह पौन्टेट के वार्षिक विवरण से प्रगट होता है कि वह हमेशा घूम-घूम कर काम करता रहा । यहां तक कि दो-तीन दिनों से अधिक कहीं भी नहीं ठहरा । उसकी जिम्मेवारी कुछ इस किस्म की तथा ऐसे विषयों की है और वह अपनी जानकारी के आधार पर ऐसा काम करता है जिसका स्पष्ट खाका खींचने से उसके प्रति पूर्ण न्याय नहीं हो सकेगा । उसके कार्यों के ऊपर कुछ भी निर्णय इसी आधार पर दिया जा सकता है कि लगान में क्या वृद्धि हुई है, खेतो के पैमाने में क्या प्रगति हुई है, आदि, आदि.....। उसके कार्यों की प्रशंसा जरूर उच्च अधिकारियों द्वारा की गई है और उसकी तनख्वाह को बढ़ाने की सिफारिश भी आई है, जो विषय फिर उपयुक्त क्रम में सरकार के यहां पेश किया जायेगा ।

मैं हूँ—

दिनांक २८ फरवरी, १८५१ ।

जी० लोच, जिलाधीश,
आगम-समिति, लोवर प्रोविन्सेज,
फोर्ट विलियम ।

पत्र दूसरा

पत्र संख्या—१२४ ।

प्रेषक :—सचिव, आगम-समिति
लोवर प्रोविन्सेज ।

प्रषित :—श्री जे० पी० ग्रान्ट,
सचिव, बंगाल सरकार, कर-विभाग ।

मेरे २१ तारीख के पत्र-संख्या ११४, की अन्तिम कंडिका के प्रसंग में आगम-समिति के निर्देश से, में भागलपुर के आयुक्त के पत्र की एक प्रति जिसकी संख्या २५७६ है और जो गत ७ अक्टूबर को प्रेषित किया गया है, भेज रहा हूँ । पत्र तथा उसके साथ के अनुबन्ध भागलपुर जिले के दामिनीकोह के पहाड़ी इलाके की आगम व्यवस्था का निरूपन करता है ।

इस क्षेत्र में खेती पहाड़ी लोगों से की जाती है, जिनमें संथाली अध्यवसायी होते हैं तथा धागरों और बनियों को भी उनसे प्रेरणा मिलती है । यहां की फसल धान, मकई और तेलहन है, तथा कुछ-कुछ रुई और गन्ने की खेती भी होती है ।

वे महाल अर्थात् भू-खंड जिनका रैयतों को पट्टा दिया गया था, गिनती में ११७९ थे, जिनमें ११६७ को सीधा रैयतों के साथ बन्दोवस्त किया गया था और १२ या तो खास बन्दोवस्ती में थे या मौखिक रूप में बन्दोवस्त किये गये थे । इस साल का प्राप्य कर ४५,४२१ (जिसमें वरवक्त प्राप्य कर ४३७२४ था) था जिसमें ४३,७७७ रु० वसूल हुए हैं जो सैकड़े ९६¾ होते हैं । बाकी में से भी ४८६ रु० प्राप्त हुए हैं तथा केवल १,१५७ रु० बाकी रह गये हैं, जो श्री पौन्टेट के आगामी निरीक्षण के समय चुकता होंगे । जैसा कि कमिश्नर साहब का अवलोकन है, श्री पौन्टेट हरेक वर्ष के मई के अन्त तक कर की वसूली करते हैं जिस वक्त कर चुकाने का साधन अर्थात् अनाज इत्यादि किसानों के पास होता है और पौन्टेट साहब की मौजूदगी में उन पर अत्याचार भी नहीं हो पाता है ।

इस साल श्री पौन्टेट ने ४५ नये पट्टे मंजूर किये और २४७ ऐसे महालों की पुनः बन्दोवस्ती की जिनकी अवधि खतम हो गई थी और जिसका जमा कुल ९,३८७ रु० हुआ । इस तरह अनुमानतः २,७७७ रु० की आमदनी बढ़ी । सभी बन्दोवस्ती, मात्र वर्त्तमान साल वाले को छोड़ कर, जिलाधीश के द्वारा संदृढ़ की गई ।

आबकारी महाल भी जिलाधीश ने पौन्टेट को सुपुर्द कर दिया है, तथा वर्त्तमान वर्ष की (१८५०-५१) बन्दोवस्ती उन्होंने ही ४,२१६ रु० का जमा पर किया है ।

गत कई वर्षों से दामिनी कोह श्री पौन्टेट के प्रबन्ध में था और उन्होंने काफी सफलता पूर्वक अधिकाधिक भूमि को खेती करने के लायक बनवाया, जिसका प्रमाण बढ़ते हुए भू-आगम हैं जो आबकारी कर के अलावे ६,६८२ रु० से ४३,७२४ रु० हो गये हैं । उसने बाजार बसाया जो सड़क के किनारे स्थित होने के कारण दिनानुदिन प्रगति के पथ पर है और मुर्शिदाबाद से भागलपुर तक के यात्रियों का ध्यान आकर्षित कर रहा

है। श्री पौन्टेट ने ग्रामीणों को एक गांव से दूसरे गांवों के लिए पथ भी तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया है। दामिनी कोह के बाहर की सड़कें अगर अच्छी तरह बनायी जायं तो देश में यातायात की वृद्धि अवश्यम्भावी है। इसके लिये अगर सरकार कुछ कोष प्रदान करे तो यहां के जमींदारों को भी ऐसा करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है। दामिनी कोह में जलाभाव काफी मात्रा में है लेकिन इसका निराकरण भी कुछ सरल नहीं है। यहां के जिलाधीश का विचार है कि सरकार अगर कुछ ही मात्रा में नियमित वार्षिक खर्च की व्यवस्था करे, तो कुछ पोखरों की सफाई और नये तालाबों की खुदाई आदि हो सके और प्रजा वर्ग इससे लाभान्वित हों। समिति ने श्री पौन्टेट से सड़कों और तालाबों पर इस तरह के अनुमानित खर्च का ब्यौरा मांगा है।

अन्त में श्री पौन्टेट के सफलतापूर्ण कार्य-कलापों तथा बुद्धिमतापूर्ण व्यवस्थाओं का जिक्र करते हुए जिलाधीश श्री लोच लिखते हैं कि श्री पौन्टेट के कार्यों का अनुमान उसके कार्यों से नहीं बल्कि उसके कार्यों के फलस्वरूप बढ़ते हुए भू-आगम, कृषि और शान्ति तथा निर्भीक वातावरण से ही हो सकता है। अतः कमिश्नर साहब के साथ-साथ जिलाधीश की भी सिफारिश है कि उसकी तनख्वाह बढ़ायी जाय।

आपका विश्वासपात्र,

सचिव।

पत्र तीसरा

संख्या—७६।

प्रेषित :—सचिव, आगम-समित।

महाशय,

माननीय बंगाल के गवर्नर के आदेश से मुझे आपको सूचित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ कि आपका पत्र क्रमांक—३७१, दिनांक गत ८ अक्टूबर, जिसमें दामिनी कोह के आगम-व्यवस्था का ब्यौरा उल्लिखित है, मिला, और निम्न आशय का पत्रोत्तर भेज रहा हूँ।

सरकारी-स्टेटों की संख्या गत वर्ष से ४८ अधिक अर्थात् १,२५६ हैं, जिनमें १२५० का बन्दोवस्त हो गया है और ६ की खास व्यवस्था हो रही है। इस वर्ष का प्राप्य-कर ५०,१६० रुपये (गत साल का ४७,६७५ था) गत वर्ष से २,४९५ रुपये अधिक हैं। गत वर्ष के १,७३७ रुपये बकाये को लेकर वर्त्तमान वर्ष के कुल प्राप्य-कर ५१,८९७ रुपयों में ४९,३५१ रुपये की बसूली सैकड़े ९५ के करीब है। बकाये के २,५४६ रुपये सिर्फ इसी साल के हैं और कहा गया है कि वे शीघ्र ही वसूल हो जायेंगे। संग्रह खर्च १ प्रतिशत है। ये सब परिणाम बड़े ही अनुकूल हैं।

आबकारी-कर संग्रह भी सन्तोषप्रद है। इसका जमा गत साल के ६,०९० रुपये के बदले ६,६३९ रुपये हैं जो १८५०-५१ की रकम से ५४९ अधिक है।

कमिश्नर साहब का अनुरोध है कि दामिनी कोह के तालाब और कुवों के लिये गत २८ अक्टूबर को जो ३०० रुपये की स्वीकृति दी गई थी उसमें २०० रुपये और बढ़ा दिये जायं और १०० रुपये कृषि में प्रोत्साहन के तौर पर खर्च किये जायं। इस रकम की स्वीकृति सरकार देती है।

मोरेली नदी के ऊपर निलम्बित सेतु का निर्माण पूरा होने का उल्लेख किया गया है तथा कहा गया है कि राजमहल से भागलपुर की यात्रा अब १० मील कम को हो गयी है जिससे डाक खर्च में भी बचत हुई है। फिर भी पहिये वाली गाड़ियों तथा पालकी से डाक ढोने के लिये अत्यन्त ढालुवे सड़कों का जगह-व-जगह ठीक किया जाना भी श्री पौन्टेट के नजरों में आवश्यक है, और उसके लिये भी गवर्नर साहब का अनुमोदन मिलता है कि श्री पौन्टेट नवम्बर से फरवरी तक के लिये "दार्जिलिंग सैफर्स और माइनर्स" से दो आदमी बहाल कर सकते हैं।

इस प्रस्ताव में पेश किया गया है कि चारों थानों में नायक सिजवाल (जो कुछ तो पुलिस हैं और कुछ कर विभाग में काम करते हैं) को आठ आना महीना अर्थात् ६ रुपये सालाना दिया जाय, क्योंकि फुटकर कामों के लिये उनलोगों को रक्खा जाता है। सरकार इसके लिये आदेश नहीं देती है कि ऐसे नियमित खर्च बढ़ाये जायें, भले ही इस परिस्थिति में अधीक्षक, लेखन सामग्री से आदेश लिया जा सकता है।

यह भी कहा गया है कि चारों पहाड़ी थानाओं के मुहर्रिर और चपरासी के तनख्वाह क्रमशः ७ रु० से १० रु० और ३ रु० से ४ रु० कर दिये जायं, क्योंकि उनके काम कुछ कठिन हैं और इतने कम रुपये पर लायक आदमी नहीं मिलते हैं। लेकिन सरकार इसे अवश्यक नहीं समझती है।

श्री पौन्टेट के साथ दवाइयों की व्यवस्था समुचित नहीं रहने के बारे में भी उल्लेख हैं जिसके लिये चिकित्सा विभाग को लिखा जा रहा है।

अन्ततः गवर्नर साहब आगम-समिति के निर्णय से सहमत हैं कि श्री पौन्टेट चालू वर्ष में और वर्गों को तरह ही पूर्ण मनोयोग तथा सफलतापूर्वक कार्य संपादन किये हैं।

मैं——

२४ जनवरी

किन्तु उपरोक्त सारी सुविधायें संथालियों को संतुष्ट नहीं कर सकीं। ऐसा कहा जाता है कि विद्रोहाग्नि में विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियां आहुति का काम कर रही थीं, जैसा कि संथालियों के स्वयं स्पष्टीकरण से पता चलता है कि "असत्य का प्रचलन, अंग्रेजों की उपेक्षा नीति, महाजनों की स्वेच्छाचारिता, कार्यकर्त्ताओं में भ्रष्टाचार, आरक्षियों की नृशंसता आदि कुछ ऐसे तत्व काम कर रहे थे जिससे निरन्तर वहां के वासिन्दों के अन्दर असंतोष और घृणा के भाव भर रहे थे। अंगरेज अफसरों का अभाव तथा बंगाली और दूसरे 'दिक्कू' अर्थात् दूसरे जिलों या प्रान्तों के आदमियों का सारा व्यापार हथियाये रहना ही संथालियों की खास शिकायतें थीं। यह जिला पहले भागलपुर और वीरभूमि में विभक्त था और आवासी दंडाधिकारी केवल देवघर में ही रहते थे। दामिनी कोह का राजस्व-प्रशासन एक अधीक्षक के अधीन था, जिन्हें सहायतार्थ चार नायब सिजावाल प्राप्त थे तथा जो भूमि सम्बन्धी विवादों को मिटाने और कर उगाहने के

उद्देश्य से घूमा करते थे । अधीक्षक ही एकमात्र अंग्रेज पदाधिकारी था जो दामिन इलाकों का निरीक्षण किया करता था, पर उसे दीवानी और फौजदारी मुकदमों को देखने का अधिकार नहीं था । अतः संथालियों को देवघर और भागलपुर के न्यायालयों में ही शरण लेनी पड़ती थी । और इस तरह न्याय पाना कुछ कठिन था किन्तु बंगाली महाजन उनके सिर पर सवार थे । अदूरदर्शी तथा अमितव्ययी संथाली शीघ्र ही ऋण-ग्रस्त हो जाते थे और एक बार ग्रसित होने पर इस शिकंजे से निकलने की संभावना ही उनलोगों के लिये नहीं रहती थी । अगर महाजन द्वारा नालिश किया जाता था तो संथालियों के पास उस नालिश के विरुद्ध में केवल रस्से की बंधी हुई गांठे पायी जा सकती थी, जिसकी गांठें रुपये की द्योतक थी तथा गांठों के बीच की जगह साल का प्रतिनिधित्व करती थी । दूसरी ओर सूदखोरों के पास सुव्यवस्थित बही-खाते होते और समय पड़ने पर वे लोग जाली दस्तावेज तथा रेहननामे या बेचीनामे भी पेश करते थे । बहुधा उन्हें अपने मूलधन एवं ब्याज की वसूली के लिये न्यायालय नहीं जाना पड़ता था । साधारणतः वे अपने कारिन्दों को भेजकर कर्जदारों के माल-मवेशी भी भगा ले जाते थे । भीरु तथा भोले संथालियों को इन धनवानों के दमन-चक्र से मुक्ति पाना असंभव था । वे नालिश नहीं कर सकते थे क्योंकि उनकी जुर्रत ही क्या थी, केवल थोड़े से माल-मवेशी आदि । इतनी दिक्कत को झेलकर भी अगर वे नालिश करते तो उसकी जाँच फिर किसी पुलिस को सुपुर्द किया जाता था जो महाजनों के हाथ के कठपुतले थे । इस तरह दामिनी कोह में सरकार न तो कार्यपालिका और न न्याया-लयों के द्वारा ही अपने स्पष्ट रूप में प्रकट हो सकी । दूरस्थ न्यायालय जन-समूह के पहुँच के बाहर थे तथा उनका आदेश भ्रष्ट अमलों तथा चपरासियों द्वारा संपादित होता था । दारोगा या नायक सजावाल ही कार्यपालिका का प्रतिनिधित्व करते थे जो अत्यन्त खुदगर्ज होने के नाते महाजनों के ही हथकंडे थे । अतः संथाली अपने को केवल उपेक्षित ही नहीं पाते थे, बल्कि अपने ही पड़ोसी पहाड़ियों के साथ सरकारी भेदनीति तथा उनके लिये अलग आरक्षी नियम तथा साधारण न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर होने से संथालियों को क्षोभ होता था ।" (जिला विवरणिका, संथाल परगना, ओ मेली द्वारा लिखित तथा श्री एस० सी० मुखर्जी द्वारा १९३८ में पुन-रीक्षित) ।

उस समय दामिनी कोह क्षेत्र में संथालियों का आप्रवासन बड़े पैमाने पर चालू था जो लगातार ५ या ६ दशाब्दियां पहले से ही उड़ीसा, धालभूमि, बांकुरा और वीरभूमि आदि क्षेत्रों से जारी था । बुचैनन हैमिलटन ने भागलपुर जिले के अपने १८१०-११ के विवरणों में इसका दिग्दर्शन कराया है । भागलपुर के जिलाधीश के अनुसार १८३६ ई० तक दामिनी कोह में करीब ४२७ ग्रामों की स्थापना हो चुकी थी । १८५१ में शेरविल ने दामिनी कोह में संथालियों की बहुत बस्तियों को पाया और उसकी पुस्तक "मुर्शिदाबाद, वीरभूमि और राजमहल पहाड़ियों के भ्रमण" के अनुसार "जटिल समाज के विषाक्त वातावरण से दूर पहाड़ी घाटी के अन्तर्गत प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगन में संथाली लोग अपना सीधा सादा जीवन व्यतीत करते थे । वे लोग साधारण तथा अनुशासित वर्ग के थे । उनके शासकों को कर-संग्रह तथा मर्यादित जीवन-यापन के अतिरिक्त कुछ नहीं करना था ।"

प्रशासन के कच्चे कदम

दुर्भाग्यवश शासकगण उपरोक्त आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सके । वे संथालियों की प्रशासन-पद्धति, समाज एवं संस्कृति की उपेक्षा कर, शासक तथा शासित के स्वार्थों में सामंजस्य लाने में असमर्थ रहे । उनका संथालियों से संपर्क सिर्फ उनसे अपने मन

के मुताबिक कार्य लेना था, उनके साथ न तो काम करना और न उनकी विचारधाराओं को समुन्नत करने के लिये प्रोत्साहन देना ही था। उनका ध्येय कुछ ऐसा था कि संथालियों को क्रमिक सभ्य बनाया जाय। लेकिन सभ्यता की परिभाषा उनलोगों की अपनी थी जो संथालियों के जीवन-क्रम तथा उनकी विचारधाराओं का विश्लेषण अपने मापदंड से करती थी न कि संथालियों के मापदंड से। और यही कारण था कि अनिच्छित 'दिक्कू' लोग भी यहां प्रवेश कर पाये थे जो शासकों की शुभेच्छा का परिणाम था, भले ही फल इसके विपरीत ही हुआ। साधारणतया ब्रिटिश शासक आदि से ही संथालियों में उनकी भावनाओं की अवहेलना करते हुए समता लाना चाहते थे। वे उनकी धार्मिक परम्पराओं को अन्धविश्वास कहते तथा उनकी समाज व्यवस्था को समुन्नत करना चाहते थे। अपने विचारों को अक्षरतः अनुकरणीय मानते थे। यदि उन शासकों के हृदय में संथालियों के विचारों के प्रति कुछ भी अनुग्राही भावना रहती, तो संथाली धर्मयुद्ध में रत होने के बजाय अपनी सामाजिक स्थिति को ही सुधारने में प्रयत्नशील रहते। वस्तुतः जो जितना ही संथाल परगना और छोटा नागपुर के भिन्न-भिन्न भागों के आदिवासियों के राजद्रोह का अध्ययन करेंगे, उन्हें हर जगह इसके कारण का एक ही मूल स्रोत मिलेगा।

अनुपयुक्त तथा भ्रष्ट प्रशासनिक पद्धति

उस समय जो शासन पद्धति प्रचलित की गई, वह एक भिन्न वर्ग के लिये ही उपयुक्त थी तथा उसके लिये प्रजाओं की अभिज्ञता आवश्यक थी, जो पाना वहां असंभव था। समयानुसार सुविधायें देने की क्षमता उसमें नहीं थी क्योंकि एक दूसरे को समझाने की कोशिश ही नहीं करते थे। तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था अत्यन्त अपरिपक्व थी। संथाली, महाजनों तथा परिकल्पक वर्ग के व्यापारियों की बढ़ती आबादी से पूर्ण परेशान और विकल हो उठे थे तथा अपने ऊपर होते हुए शोषण का अनुभव भी प्रचुर मात्रा में कर रहे थे।

दामिनी कोह की शासन व्यवस्था दुर्गुणों से भरी थी। अधीक्षक के अधिकार और प्रभाव काफी होने पर भी उनके चार नायव सिजवालों के द्वारा कर संग्रह कार्य में उनकी बहुत कम चल पाती थी, और वे चारों निम्न अधिकारी लोग परगनैत, मांझी तथा संथालियों के ऊपर काफी अत्याचार करते थे। १८५६ ई० के 'कलकत्ता रिव्यू' के एक अनुच्छेद में इसकी चर्चा इस प्रकार की गई है—"जहां सरकारी स्वीकृति करीब ६ रुपये वसूलने की मिलती थी, वे करीब और ६ रुपये अपने लिये वसूलते थे तथा जहां किसी जमीन का इसके पैदावार के साथ चार आने का लगान होता था उसके लिये एक रुपये अलग से और उगाहा जाता था, अगर उस पर कोई बांस लगा हो या कोई फल के पेड़ हों।

देवघर के एकमात्र दंडाधिकारी तथा कुछ छिटपुट आरक्षी-अधिष्ठान, अत्याचार पीड़ित संथालियों को कष्ट से मुक्त नहीं कर सके। पुलिस कर्मचारियों का दुर्व्यवहार इस हद तक था कि वे संथालियों को अपने स्वार्थ का शिकार समझते थे और हमेशा अवैध रकम उनसे वसूलते रहते थे। न्याय विशेषतया उन अधीनस्थ-कर्मचारीगण के अधीन था, जिनको १८४२ के "बंगाल स्पेक्टेटर" ने अत्यन्त भ्रष्ट तथा उच्चाधिकारियों के महत्त्व को गिराने वाले के नाम से सम्बोधन किया है।

न्याय विभाग

पूर्व में संथालियों में झगड़ों का निर्णय करीब-करीब निःशुल्क और शीघ्र हो जाया करता था। उसे इसके लिये न तो मीलों की दूरी तय करनी पड़ती थी और न पैसे

खर्च करने पड़ते थे । किन्तु नई पद्धति के अनुसार उसे भागलपुर या देवघर जाकर ही मामलों की सुनवाई करानी पड़ती थी जो उसके लिये महंगी तथा दिक्कतों से पूर्ण होती थी । और अन्ततः न्याय मिले या न मिले सारी परिस्थिति मिलजुलकर उसके लिये और टेढ़ी हो जाती थी, जिसका असर उनके आर्थिक अवस्था के और भी बदतर हो जाने के रूप में प्रगट होता था ।

महाजन

इस क्षेत्र में व्याप्त महाजनों ने जो किया, उसके लिये, मात्र वे ही, दोषी नहीं ठहराये जा सकते । संथालियों में आर्थिक उन्नति लाना तो उनका उद्देश्य नही ही था अतः विशेष दोषारोपण, उनके ऊपर ही नहीं किया जा सकता कि अमितव्ययी संथाली स्वयं ऋण लेते-लेते इस परिस्थिति में पहुँच जाते जहां से छुटकारा पाना उनके लिये कठिन हो जाता था । संथाली स्वभाव से ही अपव्ययी होते हैं । यदि उन्हें पर्याप्त खाने के लिये रहे तो वे बांसूरी की टेर लगाने अथवा कोई दूसरे मनोरंजक नाच रंग में लीन होने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते हैं । उनलोगों ने बुरे दिनों के लिये कुछ बचाकर रखना सीखा ही नहीं । वे कई मादक पेय के भी आदी होते हैं । फलस्वरूप महाजनों की व्यवस्था वहां अनुमान से ठीक विपरीत फलदायिनी साबित हुई और इन सबों का अन्त अत्यन्त ही नुकसानदेह हुआ । कुछ इस तरह का चक्कर चलता रहा कि महाजनों की उन्नति होती गयी और संथाली अवनति की ओर अग्रसर होते रहे ।

परिणाम यह हुआ कि संथाली लोग सदा के लिए ऋणी बन गये । वे लोग फसल पैदा करते और उसका अधिकांश भाग महाजनों के घर उस ऋण के शोधन में चला जाता जो कई किस्त के रूप में मूलधन का कई गुना दे दिया गया था । न्यायालयों में महाजन अपने बही-खाते पेश करते और सीधे-सादे संथालियों से भी आसानी से रुपया लेने की बात स्वीकार करा लेते थे । उन्हें ऋण-राशि का स्मरण तक नहीं रहता था और इस हालत में महाजनों के पक्ष में ही न्यायालय का निर्णय पड़ जाता था ।

कमियौती पद्धति

एक दूसरी प्रचलित दुर्व्यवस्था उस समय कमियौती पद्धति की थी । इस पद्धति के अनुसार संथाली, ऋण के परिशोधन में, अपने को महाजन के हाथ बेच देते थे, जिसका मतलब होता था कि वे काम करके कर्ज की अदायगी कर देंगे, लेकिन वस्तुतः वे सूद में ही काम करते थे और अपनी पूरी जिन्दगी भर इसी तरह दास बने रहते थे, यहां तक कि उनके संतान भी इस व्यवस्था में अनजाने ही फंस जाते थे । एक ऐसे मामले का जिक्र मिलता है जिसमें पिता और पुत्र अपनी-अपनी जिन्दगी भर मात्र २५ रुपये कर्ज के लिये सूद पर कार्य करते रहे । ३० वर्षों से अधिक उन दोनों ने सेवा की थी फिर भी मूलधन ज्यों-का-त्यों पड़ा था । महाशय विलियम ली० फ्लेमिंग रोबिन्सन, आई० सी० एस० का उल्लेख है कि उन्होंने उसके पौत्र को इस पाश से विमुक्त कर दिया । उस समय रेल की पटरियाँ बिछाने तथा जंगल साफ करने वाले स्वतन्त्र मजदूरों को अच्छी मजदूरी मिलती देखकर, संथालियों में असंतोष और भी तीव्रतर हो गया ।

अरक्षण की भावना

संथाली अपनी भूमि-स्वामित्व अक्षुण्ण नहीं पाते थे । उनके द्वारा दिये गये रेहनों के जरिये कितनी भूमि उनलोगों के हाथ से निकली जा रही थी । लगान निश्चित

बिलकुल नहीं था और बकाये के लिये अशिक्षित संथालियों को कुछ अन्दाज ही नहीं रहता था। वे मानसिक चिन्ता के शिकार बने रहते। निस्सहायता की भावना उनमें ऐसी हो गई कि आदमी कौन कहे, उनके आराध्य बोंगा (प्रेत) भी उनकी नजरों में असमर्थ दिखाई पड़ने लगे। वस्तुतः उनलोगों ने चपरासियों को ही बोंगा (प्रेत) समझना तथा उनकी आराधना करना शुरू कर दिया जो उनको ठीक बोंगा के जैसे ही परेशान कर सकते थे।

श्री डब्ल्यू० जी० टेलर श्री कंड (तीन पहाड़ के नजदीक) के सहायक आयुक्त, ने १६ फरवरी, १८५६ को श्री ए० आर० टॉमसन, उपायुक्त, दुमका को पत्र लिखा कि सुलतानाबाद (महेश्वर) तथा अम्बर (पाकुर) के जमींदारों के प्रति संथालियों में घोर असंतोष हो गया था क्योंकि उनलोगों ने संथाली ग्रामों को गैर-संथाली लोगों के हाथ पट्टे कर दिये थे। उन्होंने आगे लिखा है, जमींदार या जमींदारी संभालने वाले व्यक्ति जैसे गुमास्ता, सरवराहकार, प्यादे और दूसरे महाजन तथा उनके मुस्ताजिर या दलाल, पुलिस, राजस्व और कचहरी के अमले एक साथ अत्याचार में संलग्न थे। अन्यायपूर्ण व्यवहार, भूमि का बलात् गैर-कानूनी अधिकार, हिंसात्मक कार्रवाई आदि जैसे कामों मे ही वे रत थे। विनम्र तथा डरपोक संथालियों से सूदखोरों के सूद की वृद्धि ५० से ५०० प्रतिशत हो चुकी थी। झूठ का बाजार गर्म था। जान-बूझ कर तथा अनुचित ढंग से जमींदारों के जानवर, टट्टू, खच्चर और हाथी गरीब संथालियों के पनपते फसलों में छोड़ दिये जाते थे। कई जगह सच्चरित्रता का प्रमाण भी संथालियों से माँगा जाता था।

आर्थिक आधार

संथालियों के आर्थिक ह्रास का परिणाम ही १८५५ का संथाली राजद्रोह था। समय की रुख से वहां के बुद्धिमान लोग अवगत हो गये थे जैसा कि "कलकत्ता रिव्यू" के तत्कालीन लेख में उल्लिखित हैं, संथालियों की विषमतापूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक पद्धति कुछ ऐसे उत्तेजक व्यवधानों से पूर्ण हो गयी थी जिसका विस्फोट किसी भी क्षण होने का आभास होता था। और वस्तुतः विस्फोट हुआ भी लेकिन उतना अचानक नहीं, जितना सभी अन्दाज करते थे। विभिन्न ग्रामों का परगनैत, और मांझी अक्सर मिलने लगे, हाटों तथा बाजारों में उनकी गुप्त मंत्रना होती और वहां से गुप्त आदेश प्रसारित होते थे। क्रमशः १८५५ ई० के प्रारम्भ में वीरभूम, बांकुरा और हजारीबाग से हजारों की तायदाद में संथाली आये जिनकी उपस्थिति से सभी संथालियों को और भी बल मिला। क्रान्ति की सामग्रियां प्रस्तुत थीं, बवंडर फूटना ही चाहता था, आवश्यकता केवल एक चिनगारी की ही रह गई थी, जिसकी पूर्ति भी, वरहेत से कुछ दूर दक्खिन अवस्थित भगनाडीही के संथाली शीधू, कान्हू, चांद और भैरव नाम के चार भाइयों ने कर ही दी।

चारो भाई

ये चारों भाई अति साधारण भूमिहीन वर्ग के व्यक्ति थे। किन्तु इनलोगों ने बताया कि इन्हें ईश्वरीय दूत के दर्शन हुए हैं और उनसे दिव्य संदेश की प्राप्ति हुई है। फलस्वरूप शीघ्र ही एक देवस्थान निर्मित हुआ और वहां मिट्टी की पिन्डी बनाकर उसे रथचक्र से विभूषित कर दिया गया। फिर क्या था लोगों ने वहां चढ़ावा चढ़ाना शुरू कर दिया। शीघ्र ही शाल वृक्ष की टहनियां चारों ओर घुमाई गईं, जिसका तात्पर्य लोगों को एक साथ जुट जाने के लिए आह्वान करना था।

३० जून, १८५५

जनश्रुति है कि ३० जून, १८५५ की चांदनी रात में करीब दस हजार संथाली भगनाडीहीं में एकत्र हुए और "उन्होंने सरकारी सत्ता को अस्वीकार करना अनाधिकार मानते हुए, घोषणा की कि उनके नये देवता ने उन्हें राजस्व संग्रह कर सरकार को दे देने का निर्देश किया है जो प्रतिवर्ष भैंसे के हल पर दो आना, बैल के हल पर एक आना तथा गाय के हल पर दो पैसे के हिसाब से हो, तथा ऋण के ब्याज की दरें प्रति रुपया १ पैसे के दर से दिये जायं।" (संथाल परगना की पुनरीक्षण विवरणिका)।

इससे स्पष्ट है कि उनकी मांगें सर्वथा उनकी आर्थिक दशा में सुधार के निमित्त ही थीं। दारोगों तथा महाजनों की हत्या एवं व्यापारियों तथा जमींदारों के निष्कासन के सम्बन्ध में संथालियों पर दोषारोपण का कोई भी आधार नहीं मालूम पड़ता। इस विषय में पदाधिकारियों के पास पत्र लिखे जाने का भी प्रमाण नहीं मिलता। पर इतना स्पष्ट है कि संथाली दामिन क्षेत्र को अपने अधीन कर लेना चाहते थे तथा सीधू और कान्हू ने अपने को वहां का सूबा (राज्यपाल) घोषित कर दिया था।

क्रान्ति की लहर

यह सच है कि कुछ हद तक संथालियों ने खून खराबी की। गोड्डा अनुमंडल के करहरिया थाने के दारोगा प्रताप नारायण को उनलोगों ने मार डाला, जो संथालियों को गिरफ्तार करने गये थे। भागलपुर के दंडाधिकारी श्री एच० ई० रिचार्डसन तथा श्री पौन्टेट ने जो उस वक्त राजमहल में थे, भयाकुल होकर शाहशुजा के राजमहल तथा तत्कालीन रेलवे इंजीनियर के आवास में शरण ली। घर घेर लिया गया और तब तक घिरा रहा जब तक सैन्य दल ने आकर मुक्त नहीं किया। भागलपुर के आयुक्त श्री सी० एफ० ब्राउन को ८ जुलाई को क्रान्ति फैल जाने की खबर मिली उन्होंने भागलपुर की प्रतिरक्षा तथा डाक परिवहन की आवाध्य गतिशीलता के निमित्त शीघ्र ही कदम उठाया। पहाड़ी सरदारों एवं पड़ोसी जमींदारों को अपनी पूरी ताकत से विद्रोह दमन करने के लिये कहा गया। बिहार और बंगाल कार्यपालिका पदाधिकारियों को उनकी सहायता के लिये आदेश मिला। मेजर एफ० डब्ल्यू० ब्यूरो की अध्यक्षता में, सैन्यदल जो मुख्यतः पहाड़ी घुड़सवारों का था, १० जुलाई को रवाना हुआ और पीरपैंती के समीप की लड़ाई में संथाली लोग अपने तीर धनुष और फरसों के बल पर उस सैन्यदल को पराजित करने में सफल हुए।

व्यापक विद्रोह

विभिन्न स्थानों में विद्रोह फूट पड़ा। पाकुर और उसके आसपास के गांवों में लूटपाट किया गया। महाजन और अत्याचारी जमीदार संथाली क्रोध के एकमात्र निशाना बनाये गये। कई जगहों पर भिड़न्त हुआ और कितने संथाली मारे गये तथा गिरफ्तार और दंडित हुए। दंडाधिकारी श्री टूगूड की अध्यक्षता में ७वीं राष्ट्रीय पैदल-सेना की टुकड़ी ११ जुलाई को विरहामपुर से रवाना हुई। यह टुकड़ी संथालियों का जहां-तहां पीछा करती रही। संथाली कुछ आक्रमणों से बचते राजभवन पर धावा बोलने के उद्देश्य से महेशपूर की ओर अग्रसर हुए। लेकिन वहां १५ जुलाई के सबेरे करीब ३००० विद्रोहियों ो, ७वीं राष्ट्रीय पैदल सेना की फौजी दस्ते से, अपने को आक्रान्त पाकर आश्चर्य हुआ। इस संघर्ष में सिधू, कान्हू और भैरव को गोली लगी और

अन्य २०० संथाली घायल तथा मृत्यु के शिकार हुए । ७वीं रेजिमेंट नेटिभ इन्फैन्ट्री की दूसरी टुकड़ी ने पाकुर से पश्चिम तराई नदी के किनारे बहुत से संथालियों को परास्त किया । रघुनाथपुर के बरहरवा बरहैत सड़क पर टूगुड के मातहत फौजी टुकड़ी ने संथालियों को शिकस्त दिया और विद्रोहियों के सुदृढ़ केन्द्र बरहैत पर आक्रमण किया । गानाडीही को, जहां से विद्रोह आरम्भ हुआ था, जला दिया । कुछ ही दिनों बाद ि.घु अपने ही अनुयायियों के द्वारा भागलपुर के फौजी दस्ते के हाथों सौंप दिया गया ।

अन्य जगहों में संथाल क्रान्ति

संथाली विद्रोह केवल वर्तमान संथाल परगना तक ही सीमित नहीं रहा । बल्कि इसकी चिनगारी वीरभूमि, बांकुरा और हजारीबाग में भी समान रूप से फैली । प्राचीन अंग्रेजी पत्राचार से स्पष्ट है कि इन जिले के अधिकारीवर्ग इस परिस्थिति से पूर्ण सतर्क थे और अपने जिलों को इस छूत से अलग ही रखना चाहते थे । हजारीबाग में जहां-तहां विद्रोह की चिनगारियों फूट पड़ीं । जिला अधिकारियों ने इन संथालियों का दूसरे जिलों के लिये आवागमन बिलकुल अवरुद्ध कर दिया ।

वस्तुतः हजारीबाग जिलों में विद्रोहाग्नि कुछ पहले ही फूट पड़ी थी । किन्तु जिस बर्बरता से विद्रोहियों का दमन किया गया उसका रूप बूढ़ी के उप-दंडाधिकारी श्री ट्रीडी के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है—"गत अवैधानिक लूट-पाट से सम्बन्धित कुछ संथालियों को मैंने गिरफ्तार कर लिया है । यद्यपि उनके विरुद्ध कोई प्रमाण मेरे पास नहीं है, फिर भी मैं उनलोगों को बूढ़ी स्थिति जेल में परिस्थिति सुधरने के समय तक रखना अपना फर्ज समझता हूँ । (हजारीबाग प्राचीन अभिलेख १५७८) ।" संसयास्पद स्थिति के लोगों को पकड़ने के लिये इनाम रखा गया । बहुत-सी संथाल औरतें भी विद्रोह में भाग लेने के फलस्वरूप गिरफ्तार हुईं । अंग्रेजों की बर्बरता एवं संथालियों की विवशता मिलकर अन्य जगहों की भांति हजारीबाग में भी जनान्दोलन को शमन करने का कारण बनी ।

क्रान्ति की दूसरी लहर और उसका क्रूरतापूर्ण दमन

१८५५ के सितम्बर महीने तक अधिकारीवर्ग इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि विद्रोह का पूर्णतया दमन हो गया और सरकार की ओर से यह उद्घोषणा भी कर दी गयी कि प्रमुख नेताओं और हत्यारों के सिवा जो भी विद्रोही दस दिन के भीतर आत्म-समर्पण कर देगा उसे रिहा कर दिया जायगा । किन्तु उनलोगों का यह अनुमान कि संथाली पर्याप्त संख्या में कत्ल किये जा चुके हैं, सर्वथा निराधार था । सितम्बर के अन्त तक क्रान्ति की फिर दूसरी लहर उठी । जिले के देवघर से लेकर दक्खिन पश्चिम सीमा तक के सभी क्षेत्र संथालियों के हाथ आ गये । संथाली हजारों की संख्या में आगे बढ़ने लगे । संथाल परगना का गत विवरणिका के अनुसार महीने के अन्त तक जिले के देवघर से लेकर दक्खिन पश्चिमी सीमा तक के सारे क्षेत्र उनके हाथों आ गये थे । संथालियों का ३,००० का एक जत्था एक ओर अग्रसर हुआ और ७,००० का एक दूसरी ओर । किन्तु अंग्रेजी फौजों को जाड़े के आगमन से युद्ध सफलतापूर्वक करने का मौका मिला और १० नवम्बर को फौजी कानून घोषित कर दिया गया, जिसके अनुसार सरकार या सरकारी पदाधिकारी के विरुद्ध हथियार उठाने या किसी प्रकार के विद्रोही कार्य करने वालों के लिये फौजी कचहरी में जांच का बन्दोवस्त किया गया । दोषी ठहरने पर तुरत फांसी दी जाने लगी । फौज के एक बड़े दस्ते ने देश का भ्रमण करना शुरू कर दिया जिसे बहुत कम अवरोध प्राप्त होता था । कई जगह भूख

और बोमारियों से ग्रसित संथाल बारह, चौदह हजार के जत्थे में होने पर भी अंग्रेजी फौज से लोहा लेने की हिम्मत नहीं करते थे। उपरोक्त घोषणा तथा सैनिक गश्ती ने मिलकर प्रभाव डाला। संथाली जंगलों में जा छिपे। कान्हू के साथ कुछ और भी प्रमुख नेता जामतारा के उत्तर पूर्व उपरवन्दा के पास कुंजरा ग्राम के एक सरदार घटवाल द्वारा कैद कर लिये गये। क्रमशः १८५६ ई० के ३ जनवरी तक फिर से शान्तिपूर्ण वातावरण प्रकट हुआ। भारतीय सरकार ने फौजी कानून को उठा दिया। इसके पश्चात् मात्र के कुछ उथल-पुथल हुए किन्तु आसानी से कुचल दिये गये। इस प्रकार जाड़े के अन्त तक विद्रोह का पूर्णतया दमन कर दिया गया।

नृशंसता

गत जिला विवरणिका ने संथालियों द्वारा की गयी हत्या, एवं नृशंसता का उल्लेख किया है लेकिन चित्र अतिरंजित है तथा छिटपुट कुछ उदाहरण साधारण प्रचलन के तौर पर लिये गये हैं।

यहां इसकी चर्चा अनुपयुक्त नहीं होगी कि जुलाई के बाद बंगाल सरकार तथा भागलपुर के आयुक्त श्री ब्राउन का सम्बन्ध कुछ संशयात्मक हो गया जिसके फलस्वरूप लेफ्टिनेंट गवर्नर श्री (बाद में महाशय) फ्रेडरिक जेम्स हैलिडे ने संथाली राजद्रोह को पूर्णतया दमन करने के लिये श्री ए० सी० बिडवेल को विशेष आयुक्त बना कर भेज दिया। इसी बिडवेल के द्वारा १७ अगस्त को की गयी उद्घोषणा का उल्लंघन ही नृशंसता और अत्याचार का कारण बना।

एक ओर जहां संथालियों के क्रूर कार्यों के प्रमाण मिलते हैं दूसरी ओर वहां उनके बिरले पाये जाने वाले बहादुरी के कार्यों के भी प्रमाण परिलक्षित होते हैं। संथाली वर्ग उत्तेजना और भावावेश में काम करने वाले होते हैं। यत्रतत्र उनके असावधान एवं प्रमत्त साहस के प्रमाण मिलते हैं। उनके द्वारा भाले और तीरों से बन्दूक की गोलियों का सामना करना और क्या कहा जा सकता है।

कई प्रशासकों ने भयाक्रान्त होकर, आन्दोलन दबाने के लिये, कठोरतम कदम उठाने की सलाह दी। 'फ्रेन्ड ऑफ इंडिया' पत्र के एक लेखक ने यहां तक सुझाव दिया कि क्रान्ति प्लावित भागों के समस्त संथाली पेगू (वर्मा) भेज दिये जायं। उसने पूर्ण प्रतिकार की सलाह दी। 'अदले का बदला' का सिद्धान्त अपनाना तो सरकार की मूर्खता तथा पागलपन ही कही जा सकती है। बहुसंख्यक संथालियों को कारागार में डाल दिया गया। बेड़ी लगे हुए उन्हें गलियों में घुमाया गया। औरतें भी इस क्रूरता से नहीं बच पायीं। संपूर्ण गांवों को जला डालने के भी प्रमाण मिलते हैं। फिर भी शासकों ने शासन पद्धति में परिवर्त्तन लाने की आवश्यकता महसूस की तथा संथालियों के रक्त शोषण करने वाली आर्थिक पद्धति का नाश करना भी जरूरी समझा।

संथाली हूल--एक सिंहावलोकन

कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने अपने १८५६ ई० के विवेचन नं० ४२ में संथाल हूल की पृष्ठभूमि का पुनरीक्षण किया है, जो अत्यन्त ही उत्कृष्ट अवलोकन है। कोर्ट ऑफ डायरक्टर्स के विचार में प्रशासक और खासकर श्री ब्राउन, शासन-व्यवस्था सर्वसाधारण के लिये सुविधापूर्ण नहीं बना सके। कोर्ट ने इस सिलसिले में आयुक्त, श्री ब्राउन, को दिये २९ अगस्त के एक दरखास्त का उल्लेख किया है जो दो माझियों के द्वारा पेश

किये गये थे । संथालियों ने महाजनों के विरुद्ध कड़ी शिकायत की थी और लिखा था कि महाजनों के अत्याचार के विरुद्ध उन्हें किसी तरह की सुरक्षा नहीं दी गयी थी, और महाजनों का शोषण कुछ इस हद तक बढ़ गया था कि संथालियों को उनके पंजे से बचाने के लिये उन्हें उस क्षेत्र से निकाल देना जरूरी हो गया था ।

उपरोक्त दरखास्त आयुक्त के ध्यान को, १६ अप्रील, १८५५ अर्थात् पेश करने की अवधि से आठ महीने बाद, आकर्षित किया । उन्होंने उसे जिलाधीश के पास भेजा और जिलाधीश ने दंडाधिकारी के पास बढ़ा दिया । इतने दिनों बाद दंडाधिकारी जब उन परिस्थितियों का निरीक्षण करने को तैयार हुए तो विद्रोह आरम्भ हो चुका था। ये प्रलेख बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं । अतः सविस्तार उद्धरित किए जाते हैं ।

न्याय विभाग

संख्या ४२, १८५६ ई०।

गवर्नर जेनरल ऑफ इन्डिया इन काउन्सिल

१। संथाली विद्रोह से सम्बन्धित पार्श्व भाग में दिये हुए खास विवरणों के बारे में हमलोग निम्नांकित पत्रोत्तर दे रहे हैं।

२। आपके पहले के पत्रों से आभासित होता था कि फौजी कानून की उद्घोषणा तथा समय पर पर्याप्त फौजी सिपाहियों की आयुक्ति से विद्रोह विलोपित हो गया। किंतु फिलहाल विचाराधीन विवरण से, जो विशेष आयुक्त श्री बिडवेल द्वारा विद्रोह के कारणों का संकलन के रूप में पेश किया गया है, पता चलता है कि घटनाक्रम किस तरह चलता रहा और उस क्रम को संतुलित रखने के लिये किन उपायों का अवलम्बन किया गया। उपरोक्त विवरण में स्वर्गीय गवर्नर जेनरल और काउन्सिल के सदस्यों की टिप्पणियाँ भी उल्लिखित हैं।

३। सर्वप्रथम विद्रोह के कार्य, पुलिस कार्यकर्त्ता के दुराग्रह से या रेलवे अधिकारियों के दुर्व्यवहार से हुए इसका विचार तो अब कुछ कम महत्त्व का हो गया है और हम सबों को यह देखकर बहुत खुशी हो रही है कि श्री बिडवेल उन मूल तत्वों की खोज में हैं जो पूर्व से ही संथालियों के हृदय में विद्वेष की ज्वाला प्रज्ज्वलित कर रहे हैं तथा जिसके फलस्वरूप संथाली अब सरकारी सत्ता के विरुद्ध स्पष्ट रूप से चुनौती दे रहे हैं।

४। दामिनी कोह जिला, १८२३ ई० में, सरकारी सम्पत्ति घोषित किया गया और यहां के कृषि उपयोगी जमीन पहाड़ी वासिन्दों के लिये आरक्षित कर दिये गये। फिर भी संथाली क्रमशः इस जिले में बसते गये और सन् १८३० में उनका आवास यहां सरकार द्वारा स्वीकृत हुआ तथा सरकारी कर्मचारी को जो पहाड़ी जमीन बन्दोबस्त करते थे, आदेश मिला कि संथालियों का आर्थिक शोषण नहीं हो।

५। सन् १८२३ में बंगाल सरकार ने एक अधिनियम लागू किया जिसके अनुसार भागलपुर के पहाड़ियों की एक विशेष प्रकार के न्यायालय में सुनवाई होने लगी और भागलपुर के दंडाधिकारी को संक्षिप्त अधिकार दिया गया कि वे खास तरह के दीवानी

दावे की सुनवाई कर सकते हैं। उस आनियम की धारा ३ के अनुसार वे प्राधिकृत किये गए कि पहाड़ियों के १०० रुपये तक के अभियोगों की जांच कर सकें। सदर न्यायालय इस आनियम के अनुसार केवल पहाड़ियों के अभियोगों की ही जांच करती थी।

६। अनुभवों के आधार पर जब पहाड़ी लोग जंगल साफ करने में असमर्थ पाये गये तो क्षेत्रीय अधिकारियों के लगातार अभिस्ताव पर संथालियों को पहाड़ो अंचलों में बसने के लिये प्रोत्साहित किया गया। नवम्बर, सन् १८३६ में श्री पौन्टेट दामिनी कोह के राजस्व प्रशासन के कार्य से बहाल किये गये और भागलपुर के जिलाधीश के अधीन रहते हुए उन्हें आदेश मिला कि संथालियों के लिये सुरक्षापूर्ण वातावरण बनाये जायें और अभिनव आवासियों को अबतक के अनधिकृत भूमि पर बसने के लिये उत्साहित किया जाय।

७। आनियम के परिणाम शीघ्र ही प्रस्फुटित हुए। बेसुमार संथाली जंगली भूमि को कृषि योग्य बनाने लगे। संथालियों की बस्तियाँ, दामिनी कोह में १८३६ ई० में ४२७ से बढ़कर १८५५ ई० में १,२१८ तक हो गयी। सरकारी आय प्रतिवर्ष बढ़ती गयी और लगान १८३६-३७ ई० में ६,६८२ रुपये से बढ़कर १८५४-५५ में ५८,०३३ रुपये हो गया।

८। राजस्व की उपरोक्त वृद्धि अतिरिक्त कर निर्धारित से नहीं बल्कि बढ़ती आबादी से सम्भव हुई, जो श्री विडवेल के निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है:—

> "सन् १८५१ में कप्तान शेरवेलने भूमापन के आधार पर निश्चित किया कि दामिन में संथालियों के अधीन आबाद भूमि १,६२,५६० एकड़ अर्थात् ४,९१,७४४ बीघे की थी अतः गत साल के लगान की रकम (४७,५५५ रु०) के हिसाब से इस क्षेत्र में डेढ़ आने बीघे की दर से कर निर्धारित हुआ है। यहां की जमीनें विशेषतः उपजाऊ हैं। अतः लगान का भार हल्का ही कहा जा सकता है"। श्री विडवेल लिखते हैं कि "वस्तुतः लगान की रकम उतनी ही है जो संथाली भी उचित समझते हैं और खुशी से दे देते हैं। सरकारी खजाने में जो लगान की रकम जा पाती थी, अगर उससे अधिक वसूल नहीं किया जाता तो सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध संथालियों की कोई शिकायत ही नहीं रहती। किंतु आशंका इस बात की होती है कि श्री पौन्टेट के अधीनस्थ कर्मचारी, नायब सिजवाल, लोग काफी अतिरिक्त रकम उगाहते थे और श्री पौन्टेट को ऐसा विश्वास ही नहीं होता था कि इस तरह का शोषण कार्य जारी है। किंतु विशेष आयुक्त इन सारी बातों की तह तक पहुंच चुके थे। यहां तक कि उन्हें कुछ ऐसे नायब सिजवालों का नाम बताया गया था जो यह नौकरी करते हुए विपुल सम्पत्ति बटोर चुके थे।

९। हमें अभिलेखों में इस विचार के प्रमाण नहीं मिलते हैं कि संथाल विद्रोह के मूल तत्व धार्मिक उन्मत्तावस्था मात्र में उद्भूत थे। आन्दोलन के अग्रणी लोग इसको धार्मिक रूप देकर जन साधारण में उत्तेजना तथा उत्साह का संचार किया। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं दृष्टिगत होता है। इतना हमलोगों को जरूर स्पष्ट है कि अर्थिक तत्वों के आधार पर आन्दोलन का श्रीगणेश नहीं हुआ, लेकिन जब नुकसान का नग्न सत्य सामने रखकर हिंसात्मक विद्रोह का विचार स्थिर किया गया, जो जन-साधारण के धार्मिक भावनाओं को भी उत्तेजित किया गया जिससे आन्दोलन उग्र रूप में फैले।

१०। रेलवे अधिकारियों के दुर्व्यवहार में भी आन्दोलन का बीज नहीं पाया जाता है। सम्भवतः रेलवे अधिकारियों तथा ठीकेदारों के कुछ दुराग्रहपूर्ण कार्य संथालियों को चोट पहुंचाये होंगे और विद्रोहाग्नि कुछ इससे प्रज्वलित हुई होगी और शीघ्र ही फूट पड़ी होगी। रेलवे अधिकारियों की स्त्रियों और बहनों का मार डाला जाना इन छिट-फुट दुराग्रह का परिणाम भले ही हो, लेकिन क्रांति का बीज रेलगाड़ियों के आगमन से भी बहुत पूर्व ही खोज निकाला जा सकता है।

११। संथाली अध्यवसायी, परिश्रमी, स्पष्टवादी, शान्तिप्रिय, कपटहीन, अनपढ़ तथा सरल प्रकृति के लोग होते हैं जो किसी विवाद के समायोजन के लिये सरल से सरल उपायों का अवलम्बन करना पसन्द करते हैं। अपने अधिकारियों के लिये, हमारे वर्त्तमान आनियम-संहिता के आधार पर वे लोग सफलतापूर्वक लड़ भी नहीं सकते हैं। इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी सन् १८२७ का आनियम, पहाड़ी लोगों की सुरक्षा के अलावे संथालियों के लिये किसी तरह का विचार ही नहीं करता है।

१२। अतः उपरोक्त परिस्थिति में अगर पहाड़ी क्षेत्र के बढ़ते किसानों में महाजन अपनी जगह बना सके तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी संथालियों द्वारा उत्पादित अनाजों का अगर सुव्यवस्थित बाजार होता तो उनकी तकलीफ कुछ कम होती। लेकिन महाजनों ने इन सब उलझी परिस्थितियों से काफी नजायज फायदा उठाया। इन दोनों वर्गों के लोगों का आपसी सम्पर्क कुछ ऐसा हो गया था कि महाजन खुलेआम बेइमानी के तरीके अपना कर मनमाना वसूल करते और संथालियों के ऊपर इस अत्याचार के विरुद्ध कोई भी सुनने वाला नहीं था।

१३। आरम्भ में श्री पौन्टेट के विवरण से महाजनों के असह्य वर्त्ताव का आभास मिलता है। साधारणतः महाजन और संथाली के बीच कुछ रुपयों के आदान-प्रदान से सम्पर्क शुरू होता था। महाजन कर्ज के तौर पर दिये गये रुपये का ऐसा बही-खाता रखते थे जो संथाली पूर्णरूपेण समझ नहीं सकें तथा वे खाते अनेकों बार की अदायगी के बाद भी मूलधन से कभी कम रकम व्यक्त ही नहीं करते थे। संथाली जब अन्दाज से पूरे कर्ज का भुगतान हो जाने का अनुमान कर आगे ने से इन्कार करते तो महाजन न्यायालय की दुहाई देते थे और उनके सुव्यवस्थित तथा बेइमानी से दर्ज किये हुए बही-खाते के आधार पर न्याय भी उनके ही पक्ष में होता था। बुद्धिमान बंगाली से सीधे-सादे संथाली कहां तक विवाद कर सकते? और इस तरह संथाली क्रमशः विनाश की ओर अग्रसर होते जाते थे।

१४। १८३८ ई० में महाजनों के अत्याचार के फलस्वरूप तीन ग्रामों के संथाली लोग भाग गये। आगे कई वर्षों, अर्थात् १८४५ तक, लगातार परिवेदन होता रहा कि संथालियों से अत्यन्त कड़े ब्याज की दरें ली जाती हैं, महाजनों के मवेशी उनकी फसलों को रौंदते हैं और महाजन उनकी भूमि पर भी हस्तक्षेप करते हैं। इन सब अत्याचारों की शिकायत जिला अधिकारियों के पास की जाती थी किन्तु चलन कुछ ऐसा था कि संथालियों को न्याय कहीं नहीं प्राप्त होता था और अन्ततः उन्हें अनुभव करना पड़ता था कि उनकी तकलीफों का अन्त नहीं है और वे व्यर्थ ही न्याय के लिये भटकते हैं।

१५। श्री पौन्टेट ने निश्चय ही परिस्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया किंतु वे पूर्ण सफल नहीं हो सके। वे महाजनों के शोषण से अवगत थे और उनके बही-खाते को देखकर ही समझ चुके थे कि महाजन लोग पचास तिशत ब्याज में लेते थे।

नालिश होने पर वे साधारणतः महाजनों को बुलाकर संथालियों के ऊपर अत्याचार बन्द कर ` का आदेश देते थे।

१६। नायब सिजवाल के विरुद्ध अक्सर मामले पेश किये जाते थे, जिसमें एक महेश दत्त के वि द्ध किया गया था जिसके अत्याचारों के लिये अर्ज किया गया था कि स्व ` जिलाधीश जांच करें। जिलाधीश ने उक्त परिवाद को श्री पौन्टेट के यहां विचारार्थ भेज दिया, जिन्होंने स्व ` शीघ्रतापू `क जांच करने के बदले उसपर आदेश दिया कि वह दर्खास्त, जब वे देहातों में वहां रहें, तब फिर पेश किया जाय। समय इस बीच में गुजरता गया। वस्तुतः जब उसकी जांच आरम्भ हुई तो परिवादी ने उन शिकायतों के बारे में अपनी जानकारी ही नहीं कबूल की। स बीच में किसी तरह परिवादी को शान्त कर दिया गया था। स्तुत घटनाक्रम सुव्यवस्थित रूप में सामने आता है, जब विद्रोह का प्रारम्भ उसी महेश दत्त को, जो दारोगा हो चुका था, खून करके होता दिखाई पड़ता है।

१७। बहुत-से संथालियों के मामलों के बारे में जनश्रुति है कि वे सूची से लिये निकाल दिये जाते थे कि उन मामलों के विरुद्ध चपरासियों का तथा गवाहियों का खर्चा जमा नहीं आ था।

१८। सन् १८५४ के मई महीने में दामिन क्षेत्र के महाजनों के यहां संथालियों द्वारा छः डाके पड़े। इन डाका-कांडों के आयोजक सब पकड़े गये और उनलोगों ने दोष कबूल करते हुए बताया कि बंगाली महाजनों ने उन्हें भिखारी बना दिया है। इस सब मामलों के बारे में दंडाधिकारी श्री हेउड ने डिवीजन के आयुक्त को जून, १८५४ को लिखा कि यह एक गूढ़ विषय बन गया है कि वे संथाली, जो साधारणतः शान्तिप्रिय स्वभाव के होते हैं, डकैतियों में संलग्न हो जाते हैं। श्री हेउड आगे लिखते ह कि "मैं अज करूंगा कि शीघ्रातिशीघ्र संथालियों के इस असंतोष और उत्तेजना के भावों का निराकरण किया जाय जो तभी हो सकता है जब उन्हें पहाड़ी लोगों के समान कानूनी आश्रय मिले और उनके भी १०० रु० से कम के मामलों को सीधा दंडाधिकारी ही निर्णय कर दें। दस्यु-दल के लोगों को पकड़कर डकैतियां रोकी जा सकती हैं लेकिन मेरे विचार से विवेकहीन बंगाली और विनम्र संथालियों के क्रमिक दूषित होते हुए सम्पर्क के अन्तिम परिणाम को सोचकर इसपर निगरानी रखना जरूरी होगा"। फिर वे ही दंडाधिकारी ३० अगस्त १८५४ को लिखते हैं कि "दस्यु-दल के लोगों की तायदाद हजारों की हो गयी है"। अतः अबतक के विवरणों का निष्कर्ष निकलता है है कि डकैतियां, मात्र दस्यु वृत्ति वाले लोगों के विचार से नहीं, बल्कि सारी संथाल जाति के लोगों की इच्छा, परामर्श तथा साहस के बल पर की जाती हैं।

१९। अतः आयुक्त के मतानुसार सारे संथालियों के साथ वहीं नियम लागू होना उचित समझा गया जो पहाड़ी जातियों के लिये प्रचलित थे और श्री पौन्टेट को दामिना कोह क्षेत्र के लिये उप-समाहर्त्ता के साथ-साथ मुन्सिफ का भार भी दिया जाना उचित समझा गया, जिन अभिस्तावों में दूसरे को लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के द्वारा उपयुक्त समझा गया।

२२। श्री पौन्टेट मुन्सिफ नियुक्त किये गये। उन्हें ३०० रुपये तक के परिवाद के निर्णय करने का अधिकार मिला। संथाली अपने एक विश्वासपात्र अधिकारी के हाथों ऐसे अधिकार को देखकर बहुत आनन्दित हुए। किंतु श्री पौन्टेट का न्यायालय न्यायाधि-कर्त्ता का ही न्यायालय तो था जिसकी पुनः सुनवाई किसी उच्च न्यायालय में होती थी,

तथा जहां पहुंचते-पहुंचते संथाली स्वतः दम तोड़ देते थे क्योंकि वहां तक लड़ने के लिये आर्थिक अवलम्ब उनके पास था ही नहीं। न्याय इसीलिये स्वतः महाजनों के पक्ष में पड़ता था। हमलोगों को (कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स) विश्वास है कि कुछ भी ध्यान से अगर परिस्थिति समझी जाती तो पहाड़ियों के नियम तथा कानून, संथालियों में भी प्रचलित करने का अधिकार यहां दामिनी क्षेत्र के अधीक्षकों को दिया जाना जरूरी समझा जाता।

२३। ३ नवम्बर १८५४ को श्री पौन्टेट न्यायाधिकर्त्ता नियुक्त किये गये लेकिन उन्होंने २० मार्च १८५५ तक इस कार्यभार को ग्रहण नहीं किया जिसका उपयुक्त तर्क हमलोगों (कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स) को यहां कागजों में नहीं मिला है। ऐसा लिखा गया है कि वे इच्छापूर्वक इस बात को टालते गये, लेकिन इसका भी प्रमाण प्राप्त नहीं है कि उन्हें उनकी बहाली की खबर निरीक्षण के लिये पहाड़ी क्षेत्रों में जाने के पहले दी गयी।

२४। सन् १८५५ के प्रारम्भ में महाजनों के विरुद्ध बढ़ते हुए परिवादों ने जिलाधीश का ध्यान आकर्षित किया तथा उन्होंने महाजनों को गांव छोड़कर हाट और बाजार में बसने के लिये वाध्य किया, जो कुछ गैर-कानूनी कहा जा सकता है।

२५। अब हमलोग (कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स) क्षेत्रीय अधिकारियों के अंतिम कानूनी कार्यवाही के ऊपर, जो विद्रोह होने से पूर्व ही कार्यान्वित की गई, विचार करते हैं।

२६। २९ अगस्त १८५४ को दो संथाल मांझियों के द्वारा आयुक्त, श्री ब्राउन, के पास दर्खास्त पेश किया गया। यह दर्खास्त पहाड़ी भागों में बसे हुए संथालियों के ऊपर महाजनों के अत्याचार का निरूपण करता है। इसे आयुक्त के पास अनुस्मारक के रूप में पेश किया गया था कि लगातार अधिकारियों को ध्यान दिलाते रहने पर भी उनका कुछ निराकरण नहीं हो सका और अनन्तः आवेदन किया गया था कि अगर कानूनी रक्षा उनको नहीं मिली तो उन्हें वहां से भाग जाने के अलावे कोई रास्ता नहीं रहेगा। उनके द्वारा जिज्ञासा की गई है कि अगर सरकारी सुरक्षा उन्हें प्राप्त न हो तो वे क्या करें। दर्खास्त में उपसंहार के तौर पर लिखा गया है कि सरकार के अलावे उनकी रक्षा और कोई कर भी नहीं सकता है। अतः सरकार परिस्थितियों का अध्ययन करके महाजनों को दामिन क्षेत्र से निष्कासित करे जिससे संथालियों का कष्ट दूर हो"।

२७। विद्रोह आरम्भ होने के दस महीने पहले यह अर्जी दी गई और इस अर्जी से निश्चित आभास मिलता है कि संथाली अभी तक सरकार से आशान्वित थे कि यह तकलीफों को दूर करने के लिये कोई निश्चत कदम उठायेगी और उनका विक्षोभ दूर होगा। आयुक्त का आदेश इस दर्खास्त पर १९वीं अप्रील १८५५ का है जो आठ महीने दर्खास्त पेश करने की अवधि के बाद होता है। आयुक्त इस अर्जी को जिलाधीश के पास उचित कार्रवाई के लिये भेज देते हैं और जिलाधीश उसे दंडाधिकारी के पास, और इस तरह इधर चक्कर में फंसकर जब उचित कार्रवाई किये जाने की बात अधिकारियों द्वारा सोची जा रही थी तो सारा रंग ही बदल गया। संथालियों ने खुले आम विद्रोह शुरू कर दिया था। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि असीम अत्याचार विद्रोहाग्नि प्रज्वलित भले ही किये हों, आयुक्त तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारीवर्ग की प्रबल निष्क्रियता ही प्रधानतः आन्दोलन का कारण रही है।

२८। भागलपुर प्रमण्डल से आयुक्त श्री ब्राउन के हटा दिये जाने के कारण उनसे क्षेत्रीय सरकार ने बिना ठोस कारण के ही उनकी उपेक्षापूर्ण कर्त्तव्य पालन के लिये

जवाब नहीं मांगा है। हमलोगों (कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स) की विवेचना में श्री ब्राउन पहाड़ी इलाकों के संथालियों की परिस्थितियों को क्षमतापूर्वक सम्हालते हुए नहीं पाये जाते हैं। प्रमण्डल के वर्षों से आयुक्त जैसे अधिकारपूर्ण अधिकारी होते हुए तथा करीब ३० वर्षों तक भागलपुर जिला में रेजीडेन्ट के पद पर होते हुए, श्री ब्राउन से सरकार आशा करती थी कि वे सारी परिस्थितियों से विशेष अवगत होंगे। संथालियों की शिकायतें उनके सामने आयीं, लेकिन उसपर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप, और विशेषतः इसी के फलस्वरूप क्रांति की चिनगारियां फूट ही पड़ीं।

२९। श्री पौन्टेट की शासन व्यवस्था श्री विडवेल जिलाधीश, आयुक्त तथा बोर्ड, सबों के द्वारा उपयुक्त मानी जाती है। वे संथालियों से पूर्ण परिचित थे। उनके उत्कर्ष की इच्छा रखते थे और जैसा कि कप्तान शेरविल और श्री टेलर ने साबित किया संथालियों के आदरणीय हो गये थे लेकिन उनके अधिकार और साधन कुछ संकुचित थे जिससे कि संथालियों का दुःख दूर हो।

३०। श्री बिडवेल की इन सारी तथ्यों की खोज से हमलोग (कोर्ट औफ डाइरेक्टर्स) काफी संतुष्ट हैं।

३१। अब हमलोग (कोर्ट औफ डाइरेक्टर्स) गत १३वीं फरवरी तथा १२वीं मार्च में दिये गये पत्रोत्तर के बाद के दिन से संथालियों की गतिविधि का संक्षिप्त निरूपण करते हैं।

३२। मेजर जेनरल लोवायड के आदेश से गत नवम्बर और दिसम्बर महीने में कई फौजी दस्तों का गंगा से मोर तक की सम्मिलित चढ़ाई के फलस्वरूप संथाली बिल्कुल बेकार और कमजोर हो गये और उनमें से बहुतों ने मोर नदी के पार भागकर शरण ली। विद्रोही जत्थे छिन्न-भिन्न हो गये तथा कुछ नेतागण पकड़ लिये गये, जिन सारी हालतों को दृष्टिगत रखते हुए गत् ५वीं जनवरी को बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने आन्दोलन का पूर्ण दमन समझ कर फौजी कानून उठा लिया। फिर भी संथालियों में समय-समय पर बेचैनी और व्याकुलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं।

३३। छिटफुट ताजे आन्दोलन के समाचार भी प्रसारित होते रहे हैं लेकिन सभी अतिशयोक्तियों से परिपूर्ण। यहां तक कि भागलपुर जिले के अन्तर्गत बौंसी थाने का विद्रोह समाचार तो बिल्कुल निराधार ही निकला।

३४। जयपुर तथा पिन्डारी गांवों का लूट, संग्रामपुर कारखाने का जलाया जाना, श्री कुण्ड के आसपास पांच महाजनों का खून, ये संथाल परगने के कांड तथा हजारी-बाग जिले की खून-खराबियों का पूर्ण सफलतापूर्वक बर्बरतापूर्ण उपायों से दमन किया गया। इसमें भाग लेने वालों को उचित दण्ड दिया गया।

३५। द्वितीय इरेगुलर कैवेलरी के नायब रसलदार, गुमान सिंह का एक दफादार और १० सवारों को लेकर एक कुनवी बस्ती को लूटने वाले जत्थे के ऊपर आकस्मिक आक्रमण तथा उसके फलस्वरूप उस जत्थे के दो सौ नब्बे आदमियों का आत्मसमर्पण, गुमान सिंह के लिये सराहनीय कार्य कहा जा सकता है।

३६। संग्रामपुर के नीलहे कारखाने को जलाने वाले झुण्ड की तायदाद प्रथमतः २,००० से ६,००० की बतायी गई थी। किंतु कप्तान फागन के अनुमान से, जिसने

उनके साथ संघर्ष किया तथा उन्हें छिन्न भिन्न किया, वे लोग कहीं भी दो सौ से अधिक नहीं थे। यह देखते हुए काफी संतोष होता है कि कुछ आवासी उत्तेजना तथा साहस देनेवाले लोगों को भी सजा मिली।

३७। गत मार्च महीने में दो सतीत्व नाशन के कार्य किये गये, किंतु संथाली अब शांतिपूर्ण वातावरण के लिये लालायित दिखाई पड़ते हैं तथा सड़कों और सरकारी कामों में हाथ बंटाना चाहते हैं।

३८। क्षेत्रीय सरकारी अधिकारियों के द्वारा संथालियों का निशस्त्रीकरण, उनकी सड़कों आदि पर नियुक्ति और आयुक्त के उद्घोषणा के अनुसार उनसे वर्त्तमान साल का लगान क्रमशः आगे के चार सालों में किस्तों में वसूल आदि बन्दोबस्तों के कार्यान्वयन से हमलोग पूर्ण सहमत हैं।

३९। हमलोगों ने पहले ही सूचित कर दिया है कि राजमहल के पहाड़ी क्षेत्र और उसके आस-पास के इलाकों में फौजी पुलिस का इन्तजाम किया जाय। इस फौज का अधिनायकत्व कप्तान टी० रेट्रे के ऊपर सौंपा गया है जो पंजाब जाकर ऐसे रंगरूटों की नियुक्ति में संलग्न हो गये हैं।

४०। हमलोग यह देखकर काफी अफसोस प्रकट करते हैं कि बूढ़ी के उप-दंडाधिकारी श्री ट्रीडी ने लेफ्टिनेन्ट राइन और रामगढ़ इरेगुलर कैवेलरी के १५ सवारों को लेकर खुरुक्डी के पास करीब १५० संथालियों के एक जत्थे के ऊपर आक्रमण किया और सफल हुए। हमलोग आशा करते हैं कि हजारीबाग मण्डल के किसी भी विद्रोही जत्थे को छिन्न-भिन्न करने के लिये जिन उपायों का अवलम्बन किया जाय, उनकी सफलता से हमलोग अवगत कराये जायें।

४१। आपका पत्र दिनांक १७वीं मई, पत्र ७—और १३—१८५६ के उत्तर में हमलोगों के कुछ निराधार अनुमान स्पष्टीकरण के रूप में आया है जिसमें कहा गया है कि प्रारम्भिक विद्रोहों का दमन, हमारे पास साधन नहीं थे, इसलिये नहीं, बल्कि साधनों के उपयोग सुव्यवस्थित रूप से नहीं हो सकने के कारण, पूरा-पूरा नहीं हो सका, इससे हमलोग संतुष्ट हैं।

हमलोग,

लन्दन : (ह०) डब्ल्यू० एच० हाइक्स,

१ अक्टूबर, १८५६। रौस डी० मैंगल्स एवं दूसरे संचालकगण।

शासन व्यवस्था में परिवर्त्तन

संथाली क्षेत्र को सफल प्रशासनिक नियंत्रण में लाने के लिये इसे विभाजित कर दिया गया और इसके कुछ विशेष नियम निर्मित्त हुए। संथाली क्षेत्र को भागलपुर और बीरभूम से अलग कर एक भिन्न जिला बना दिया गया, जिसमें दुमका, गोड्डा, देवघर और राजमहल नाम के चार अनुमण्डल कायम हुए, जहां एक उपायुक्त एवं चार सहायक उपायुक्तों को दीवानी तथा फौजदारी अधिकारों के साथ नियुक्त किया गया। १८५६ के पुलिस नियम का अनुशरण किया गया जिसमें ग्रामों के मुखिया प्रथा को चलाया गया तथा ग्राम अधिकारियों का देखभाल के लिये पुलिस शक्तियां प्रदान की गयीं। अधिनियम

३७ निर्मित्त कर इस क्षेत्र को साधारण नियमों तथा विनियमों से पृथक कर दिया गया। भागलपुर के आयुक्त को इस नव-निर्मित्त संथाल परगने की निगरानी रखने के लिये खास आदेश मिला।

जिला के प्रथम उपायुक्त श्री (बाद में महाशय) आस्ले इडेन ने पुलिस नियमों को तैयार किया और ये नियम भागलपुर के आयुक्त श्री (बाद में महाशय) जौर्ज यूल के नाम पर "यूल के नियम" कहकर प्रचलित किये गये। इनका उद्देश्य था ग्राम के मांझी, जो संथाली ग्राम के मुखिया थे, उन्हें पुलिस शक्तियां प्रदान करना, जिनका प्रयोग वे अपने गांव में, गांव के चौकीदार की सहायता से कर सकें। मुख्य पुलिस शक्तियां एवं पर्य्यवेक्षण के अधिकार परगनैत को दिये गये, और वे, देशमांझी, चौकीदार और गौरैत की सहायता से काम करते थे। पहाड़ियों में इसी प्रकार के अधिकार सरदार की देखरेख में मांझियों को दिये गये, जिन्हें अपने नायबों की सहायता प्राप्त थी। प्रत्येक गैर-संथाली ग्रामों में चुनाव द्वारा एक-एक सरकारी मंडल कायम किया गया, जिसे ग्राम मुखिया की पुलिस शक्तियां प्रदान की गयीं।

नूतन विनियमन-पद्धति (Non-regulation system) प्रमुखतः शासक और शासितों में सीधा सम्पर्क स्थापित करना अपना उद्देश्य रखती थी। अब शिकायतें, मौखिक रूप से, अमले की गैरहाजिरी में ही, अधिकारियों के पास की जा सकती थीं। सभी फौजदारी कार्यों का सम्पादन स्वयं संथालियों से होता था जो दोषी को गवाह के साथ स्वतः ही न्यायालय में पेश कर देते थे।

सन् १८५७ का आन्दोलन और संथाली जाति

उपरोक्त विनियमन-पद्धति पूर्णरूपेण फलीभूत हुआ भी नहीं था कि १८५७ ई० का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। संथाल परगना की गत जिला विवरणिका के अनुसार संथालियों का समष्टि रूप से क्रांति में हाथ नहीं बंटाना, उस परिणाम का द्योतक है, कि संथालियों में, आयुक्त तथा उपायुक्त क्रमशः श्री (बाद में महाशय) आस्ले इडेन और श्री जार्ज यूल के द्वारा प्रचलित किये विनियमन-पद्धति के प्रति, संतोष एवं विश्वास के भाव थे। गत आन्दोलन में ही संथालियों को जान-माल की काफी क्षति उठानी पड़ी थी। सैकड़ों अभी भी कारागार में बन्द थे तथा गांव-के-गांव जलाये जा चुके थे। अतः इन सबों की यादगारी उनमें इतनी ताजी थी कि कोई आश्चर्य नहीं कि वे इन्हीं कारणों से सामूहिक रूप में क्रांति में भाग नहीं लिये। लेकिन ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि वे १८५५ के आन्दोलन के बाद से प्रचलित शासन पद्धति से बिल्कुल संतुष्ट थे, और इसलिये विद्रोह से बिल्कुल अलग रहे। शासन पद्धति, अतिसय सुधारों के बाद भी, संथालियों के मनोनुकूल नहीं हो सका, क्योंकि इसमें कुछ क्षेत्रीय सुविधाओं के अलावे कोई खास फर्क नहीं था। नूतन व्यवस्था के मुख्य उद्देश्य क्रमशः इस तरह के थे :— (१) नयी व्यवस्था के अनुसार अधिवक्ता, वकील अथवा मुख्तार या कोई मध्यस्थ व्यक्ति, कोई भी पदाधिकारी तथा जन-साधारण के बीच नहीं रह सकते थे, (२) जन-साधारण के साथ सीधा सम्पर्क रखा गया, (३) नियमित पुलिस नहीं रखी गई, (४) स्थानीय नियमों को मान्यता मिली, किंतु उनका प्रावैधिक प्रयोग स्वीकृत नहीं हुआ। फौजदारी न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में ये नियम ही १८६२ ई० में भारतीय दण्ड-संहिता के पुरःस्थापन होने तक प्रचलित रहे। १८६३ ई० में बंगाल के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर शेसिल वीडन ने यह इच्छा की कि संथाल परगने में यथाशीघ्र सारे बंगाल की शासन व्यवस्था लागू की जाये। इसी वर्ष तत्कालीन महाधिवक्ता ने यह निर्णय

किया कि १८५८ ई० के अधिनियम ३७, खंड १, धारा १, "कि कोई भी नियम जो परिषद् में भारत के महाराज्यपाल द्वारा पास किया जायगा वह इस जिले में तबतक लागू नहीं होगा जबतक खासकर इस जिले के लिये नहीं बनाया जाय" जैसे कानून की घोषणा अनाधिकारपूर्ण है। सरकार भी इस विचार से सहमत हुई और सभी स्थानीय अधिकारियों को १८५५ के बाद के सभी स्वीकृत साधारण अधिनियमों को लागू करने का आदेश दे दिया गया। अन्य अधिनियमों के साथ-साथ १८५९ का १०वां अधिनियम भी इस मंडल में पुरःस्थापित किया गया। फलस्वरूप कर-नियम (रेन्ट लॉ) नागरिक प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसिड्योर कोड) मुद्रांक अधिनियम (स्टैम्प ऐक्ट) एवं अन्य नियमादि भी इस मंडल में लागू हो गये। इनके प्रचलन से इस मंडल के जन-साधारण को हानि ही हुई। उनके लगान बढ़ गये, उनके मुखियों को कुछ भी अधिकार नहीं रहा और बुद्धिमान तथा सामर्थ्यवान लोगों के द्वारा जमीन से भी वे लोग बेदखल किये जाते और नागरिक प्रक्रिया संहिता (१८५९ के अधिनियम ८) के उपबन्धान्तर्गत ऋण के लिये अत्यधिक सूद लेने की छूट देकर तो उनलोगों की कमर ही तोड़ दी गई।

संथालियों की अनवरुद्ध उदासीनता

सन् १८५७ के आन्दोलन की चर्चा से पहले यह बताना अनावश्यक नहीं होगा कि परिवर्तित पद्धति के परिणामस्वरूप, संथालियों की उदासीनता, १८७१ ई० के आन्दोलन तक, अपनी चरम सीमा को पहुंच चुकी थी। श्री वोल्टेन के शब्दों में, १८७१ ई० में संथाल प्रगनान्तर्गत दुमका, गोड्डा तथा दामिन के संथालियों में असाधारण घबराहट के चिन्ह विद्यामान थे। बड़ी-बड़ी सभाओं का आयोजन होने लगा। अधिकारियों के पास जन-समूह की ओर से कुछ परगने के जमींदारों के विरुद्ध शिकायतें की जाने लगीं। संथालियों की उन्मत्तावस्था को देखकर जिले के बंगालियों में स्वभावतः पूर्ण घबराहट छा गयी, क्योंकि १८५५ के नृशंसतापूर्ण कांड अभी तक उनके दिल और दिमाग में बिल्कुल ताजे ही थे, अतः जहां-तहां भगदड़ शुरू हो गया। कुछ ही दिनों में दुमका में चीजों के भाव ५० प्रतिशत बढ़ गये। विश्लेषण किये जाने पर पता चला कि संथालियों की शिकायतें ठोस आधार पर हैं और भारत सरकार तब इस निर्णय पर पहुंची कि विधान-सभा के कुछ अधिनियमों का अनावश्यक लागू किया जाना ही सारी उत्पातों की जड़ है। वहां और भी सीधे-सादे प्रशासनिक नियमों की जरूरत है। बंगाल के अन्य भागों की व्यवस्था वहां के लिये अनुपयुक्त साबित हुई। अतः बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने संथाल परगने को, १८७० में बृटिश संसद द्वारा पास किये गये ३३वें अधिनियम के अन्तर्गत लाने की सिफारिश की और सरकार को उन क्षेत्रों के लिये विशेष विनियम बनाने के लिये अधिकार दिया गया जो भारत राज्य के सचिव की आज्ञा से ३३वें अधिनियम के अन्तर्गत लाया जा सकता था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि यह कदम जो उपर्युक्त नियमावली के अनुकूल था, सरकारी कार्यों को एक वैधानिक स्तर पर स्थापित कर सकेगा, जो पूर्ण- पेण आक्षेपहीन होगा, तथा जो सर्वोत्तम ढंग से सरकार को, मंडल के कानून और साधारण शासन के पथ में समय-समय पर आये हुए और आनेवाले अनावश्यक व्यवधानों की बुराइयों के लिये सही उपाय प्रस्तुत करेगा। भारत सरकार द्वारा यह सुझाव स्वीकृत किया गया। भारत राज्य के सचिव ने (सेक्रेटरी आफ स्टेट फॉर इंडिया) एक अधिसूचना के द्वारा संथाल परगना को ३३वें अधिनियम के खंड १ (सेक्शन १ आफ ऐक्ट ३३ विक० कैप० ३) के अन्तर्गत घोषित किया। इन सारी बातों के आधार पर १८७२ ई० के विनियम बनाये गये और बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को जमीन बन्दोबस्त करने, बेदखल मांझी और दूसरे लोगों की खोई सम्पत्ति लौटाने, कर निर्धारित करने एवं प्रचलित रश्म-रिवाजों को अभिलिखित करने के लिये

अधिकारियों की नियुक्ति के अधिकार दिये गये। ऋण व्याज को नियंत्रित करने के लिये व्यवहार नियम (यूजुअरी लॉ) बना। स्थानीय सरकार को समय-समय पर जिले के लोगों की मांगों के आधार पर किसी भी नियम को प्रचलित करने या प्रभावहीन करने का अधिकार दिया गया। १८७२ ई० में संथाल परगना, राजस्व अविनियम मंडल (रेवेन्यू नॉन-रेगुलेशन डिस्ट्रिक्ट) के रूप में परिवर्तित किया गया, जिसका मुख्यालय दुमका में रखा गया।

१८५७ का आन्दोलन, १२वीं जून

देवघर के समीपस्थ रोहिणी नामक ग्राम से १८५७ की क्रांति की चिनगारी फैली। आन्दोलन मेरठ से प्रारम्भ होने के एक ही महीना बाद १२ जून को रोहिणी की पांचवीं इरेगुलर कैवेलरी ने आज्ञा पालन करने से इन्कार कर दिया। तीन फौजी अधिकारी, कमान्डेन्ट मेजर मैकडोनाल्ड, एडजुटेन्ट सर नोर्मन लेश्ली और डाक्टर ग्रान्ट, मिलकर मेजर मैकडोनाल्ड के बंगले के बाहरी भाग में चाय पी रहे थे कि अकस्मात घुड़सवारों के दल के तीन आदमी उनपर झपट पड़े और सर नौर्मन लेश्ली को तो उसी समय काटकर खत्म कर दिया, बाकी दोनों अधिकारियों को भी काफी घाव लगे। किन्तु जिन लोगों पर संदेह हुआ, वे शीघ्र ही पकड़े गये। फौजी कानून के मुताबिक उनकी सुनवाई हुई और उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया। उक्त फांसी की सजा बहुत-कुछ बर्बरतापूर्ण ढंग से दी गई, यहां तक कि घायल मेजर मैकडोनाल्ड ने स्वयं फांसी के सारे बन्दोबस्तों का निरीक्षण किया।

फौज के लोगों में घोर असंतोष ही इस गदर का कारण था। इस समय तक बृटिश सरकार से सिपाहियों का सीधा सम्पर्क नहीं था। पंचम इरेगुलर कैवेलरी में खासकर देहात के आदमी लिये गये थे और इस वक्त तक उन ग्रामिणों के ऊपर घोर असंतोष छा गया था। बिहार आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र हो गया था। जगदीशपुर के बाबू कुंवर सिंह का नाम बाद में चलकर क्रमशः उपख्यात बन चुका था। क्रांति की आग सर्वप्रथम १२ जून, १८५७ की संध्या को भड़क उठी।

मेजर मैकडोनाल्ड ने अति क्रूर होने का परिचय दिया, जो उसके अपने ही शब्दों से स्पष्ट होते हैं:—"कैदियों में से एक उच्च जाति का प्रभावशाली व्यक्ति था। उसे एक निम्न जाति के आदमी द्वारा मरवा कर मैंने उसका अपमान करने का निश्चय किया। सच तो यह है कि मुझे कभी भी यह उम्मीद नहीं थी कि मैं जीते जी फांसी देकर वापस लौटूंगा। लेकिन फिर भी मैंने क्रूरतापूर्ण फांसी के प्रभाव को सोचते हुए फांसी का सारा इन्तजाम स्वयं पूरा करवाया, यहां तक कि रस्से का बांधा जाना भी स्वयं देखा। दो अपराधी आश्चर्य और भय से स्तम्भित हो गये। उन्हें उम्मीद ही नहीं थी कि बिना सरकारी आदेश के मैं उन्हें फांसी पर चढ़ाने का साहस करूंगा। तीसरा अपराधी पुरोहित तथा अपने साथियों को मदद के लिये आह्वान किया और बोला कि उसे फांसी नहीं होगी। यह एक अत्यन्त भयानक मुहुर्त था। मात्र क्षणों की असावधानी, मेरी धज्जियां उड़ाने का कारण हो सकती थी। मैंने एक पिस्तौल उठाया तथा उस आदमी के कानों तक सटाकर निश्चित मुद्रा में उससे बोला, "तुम्हारे मुंह के दूसरे शब्द निकलते ही तुम्हारा सर टुकड़े-टुकड़े होकर भूमि पर बिखर जायगा। वह डर से कांप गया और जीभ थाम्ह ली। हाथी आया, और उस आदमी को उसकी पीठ पर बैठाया गया, रस्से ठीक किये गये, हाथी को बढ़ाया गया और वह आदमी फांसी के रस्से में झूलता रह गया। क्रमशः दूसरों की भी यही गति हुई और कुछ समय बाद मैंने दस्ते के आदमियों को जब अपने शिविर जाने का आदेश दिया तथा अपना सिर सही जगह पर अनुभव किया तो मुझे विश्वास ही नहीं होता था।"

भागलपुर में पंचम अस्थायी (Fifth Irregular) सेना का बृटिश सरकार के विरुद्ध सिर उठाने तथा उनका रोहिणी जा कर उनकी एक टुकड़ी से मिलने के समय तक, संथाल परगने में कोई उथल-पुथल नहीं हुई। किन्तु अगस्त महीने के मध्य में अर्थात् १६वीं अगस्त को रोहिणी की सम्मिलित फौजी टुकड़ियां, ३२वीं राष्ट्रीय पैदल सेना (32nd Native Infantry) के प्रधान दफ्तर, बौंसी की ओर बढ़ी, परन्तु वहां उन्हें कोई सहयोग नहीं मिला। बौंसी के सेनापति बर्नी को आधे घण्टे पहले ही खबर मिली थी और बागी टुकड़ियों की गतिविधि इसी तरह देवघर के भी सैनिक अधिकारियों के पास भेज दी गई थी। खबर देने वाला आदमी ३० घण्टे में ८० मील की दूरी तय कर अपना कर्त्तव्य पालन किया था। इस सिलसिले में एक श्यामलानन्द नाम के व्यक्ति ने दुमका सरकारी खजाने के ४,००० रुपये लूट-पाट से सुरक्षित रखकर सूरी भेज दिया तथा कैदियों को भी सूरी भेजने की व्यवस्था कर दी।

कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के ११ नवम्बर के चालीसवें दरवार से राजनीतिक समाचारों का, जो गवर्नर जेनरल इन काउन्सिल को भेजा गया, उल्लेख है कि मुंगेर जिला के जमींदार श्री जयमंगल सिह को खिल्लत और सनद मिली जो उसके संथाली विद्रोह में सरकार को सहायता प्रदान करने के फलस्वरूप दी गई थी। ऐसा प्रगट होता है कि उसे "राजा बहादुर" की पदवी दी गई थी।

बाद की घटनाओं का विवरण संथाल परगने की गत विवरणिका में पाई जाती है, जिसका सारांश निम्नलिखित है:—

"इसके बाद ९वीं अक्टूबर तक कुछ-कुछ साधारणतया शान्त वातावरण के पश्चात् एकाएक जैसे तूफान आ गया। ३२वीं नेटिव इन्फैंट्री देवघर में उन्मत्त हो उठी। उन्होंने अपने सेनापति लेफ्टिनेंट कूपर तथा सहायक आयुक्त श्री रोलैण्ड का खून कर दिया, बाजार में लूट-पाट मचायी गयी और तब से रोहिणी होते हुए पांचवी अस्थायी (Fifth Irregular) सेना का अनुसरण करते हुए वे आगे बढ़े। लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर फ्रेड्रिक हैलिडे ने लिखा है कि "गदर में संलग्न सिपाहियों की अनगिनत, अभद्र तथा अमानुषिक व्यवहारों का कुछ विवरण आवश्यक है। लेफ्टिनेंट कूपर रैंनी तथा श्री रोलेन्ड सभी स्वर्गीय एकाएक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, जब इकट्ठे इन लोगों को एक ही बंगले में घेर लिया गया। लेफ्टिनेंट कूपर अपने आदमियों पर पूरा भरोसा रखते थे, उनसे काफी मेल-जोल रखते थे तथा प्रगट रूप से उनका विश्वास प्राप्त कर चुके थे। श्री रोलैण्ड उन लोगों के लिये बिलकुल अजनवी थे, जबकि लेफ्टिनेंट रैनी सबों की जानकारी रखते हुए भी उनसे सीमित वर्ताव ही रक्खा करते थे। फिर भी लेफ्टिनेंट रैनी को ही उनलोगों ने बचा दिया और उसे निर्विघ्न बाहर निकाल दिया। लेफ्टिनेंट कूपर, जो काफी हमदर्दी से पेश आते थे और श्री रोलैण्ड जो उनके लिये बिलकुल अजनवी थे, दोनों को निर्दयतापूर्वक मार डाला गया।"

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण परिस्थिति को पूरा प्रकाशित नहीं कर सकता है। राष्ट्रीय अभिलेखागार में अन्य बहुत से प्रलेख पाये जाते हैं जो उस समय का स्पष्ट रूप प्रकाश में लाते हैं। १६वीं अक्टूबर १८५७ के सैनिक संमन्यणा (Military Consultation) संख्या ४३९ में पाया जाता है कि १२ अक्टूबर १८५७ को कर्नेल कैम्पवेल ने बूढ़ी से तार द्वारा संवाद भेजा कि संथाली दस्ता ट्रन्क रोड के आस-पास था। कर्नेल वर्कले ने ४ अक्टूबर १८५७ को डुमरी से सूचित किया कि संथाल अनेक गांवों को

लूट-खसोट रहे थे जो ग्रैण्ड ट्रन्क रोड के आस-पास थे तथा वहां के डाकों का आवागमन अवरुद्ध किये हुए थे । उसने यह भी खबर भेजी कि सड़क से एक मील करीब दूर एक गांव में उसने बागियों को आक्रमण करके अचम्भित कर दिया तथा उनके २० आदमियों को कैद कर लिया।

दूसरे जिले के अधिकारी वर्ग सावधान हो गये। ११वीं सितम्बर १८५७ की ३६०वीं समन्त्रणा, बंगाल सरकार के सचिव का भारत सरकार के सचिव के नाम से पत्र के रूप में प्रेषित है जो १९वीं अगस्त १८५७ को लिया गया है। पत्र उल्लेख करता है कि मिदनापुर के जिलाधीश को उस जिले के संथालों तथा चतारों के आन्दोलन करने पर किस तरह परिस्थिति सम्हालेंगे, इसका आदेश दिया गया है। उक्त जिलाधीश का पत्र दिनांक १८वीं अगस्त १८५७, जो एक समावरण के रूप में हैं, संकेत करता है कि रायपुर (पुरुलिया) की रानी ने खबर दी है कि वहां चवारों की एक बड़ी सभा हुई और उनमें आसन्न विद्रोह के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। श्री टेरी ने समाचार भेजा कि बगरी परगना के उत्तरी-पच्छिमी क्षेत्र के संथाली लोग बागी हो गये हैं तथा चारो ओर लूट-पाट मची हुई है। छोटानागपुर एजेंसी के पहाड़ी तथा गरवेत्ता मंडल के संथाल लोगों में आन्दोलन का असर खास तौर पर हुआ है। यह निर्णय किया गया कि जरूरत पड़ने पर शेखवती बटालियन (Shekhwati Battalion) की एक टुकड़ी गरवेत्ता भेजी जाय।

२३ अक्टूबर १८५७ ई० के १३३वीं सैनिक संमन्त्रणा में एक पत्र मिलता है जो डुमरी कैम्प से ४ अक्टूबर १८५७ को कर्नल बर्कले द्वारा प्रेषित है तथा बताता है कि पाना, नुग्गी तथा ग्रैण्ड ट्रंक रोड के आस-पास के ग्रामों को लूटा गया और डाक व्यवस्था में भी हस्तक्षेप किया गया। वर्कले ने लिखा है कि सुरक्षा के ख्याल से उसने फौजों को लेकर ग्रामों का चक्कर लगाया और मात्र अनुमान के आधार पर ३५ संथालों, डकैतों तथा बदमाशों को पकड़ कर बागोदा के दारोगा की हिरासत में दे दिया, यहां तक कि एक आदमी को भागते देख कर गोली से मार दिया।

यद्यपि संथाल परगना का १८५७ का आन्दोलन कुछ हद तक सैन्य विद्रोह तक ही सीमित रहा, फिर भी यह सोचना गलत होगा कि ग्रामीण क्षेत्र इससे प्रभावित नहीं थे। उनलोगों को भी अधिकारियों के प्रति गहरा विक्षोभ था, और विद्रोहियों के प्रति मंगल कामना थी कि विद्रोह सफल हो। बहुत करीब ही गुजरे हुए बर्बरतापूर्ण विद्रोह दमन के याद ताजे रहने के कारण सामूहिक रूप से लोग क्रान्ति में भाग लेने का साहस नहीं कर सके।

२९वीं मई १८५८ का विदेशी गुप्त विभाग (Foreign Secret Department) के संमन्त्रणा में २३ अप्रील १८५८ को आजमगढ़ के जिलाधीश का सेनापति एफ०बी० गौविन्स के नाम लिखे हुए एक पत्र का संकेत मिलता है जिसमें सर ई० लुगार्ड की फौज का आजमगढ़ (यू०पी०) पहुंचने के समय से लेकर कुंवर सिंह का गंगा पार कर भागने तक के घटना क्रम का निरूपण किया गया है। अन्तिम कण्डिका से पहले उल्लेख है कि वे (सर ई० लुगार्ड) अफवाह सुनते थे कि अमर सिंह विद्रोह के लिये कमर कसे हुए संथालियों से सम्पर्क कर रहे हैं। उन्होंने लिखा "उक्त अफवाह का ठोस

आधार तो नहीं पाया जाता है लेकिन कुछ उथल-पुथल की उम्मीद जरूर की जा सकती है।"

१९५६ ई० में "बंगाल पास्ट ऐण्ड प्रेजेंट" संख्या १४० के लेखक श्री हर प्रसाद चटर्जी उद्धृत करते हैं—"गदर प्रारंभ हो जाने पर बहुत हाल ही संथाल परगना में पुनः शान्ति स्थापित होने के बावजूद भी वातावरण कुछ विषाक्त हो गया। जुलाई, १८५५ में संथाली अपने जिले में रेलगाड़ियों की व्यवस्था, महाजनों का स्वेच्छाचार, अमलों की नीचता, तथा पुलिस की अत्याचार, इत्यादि के असह्य हो जाने पर संगीन आन्दोलन शुरू कर दिये। उनकी औरतों पर भी, जनश्रुति के अनुसार, अत्याचार का आभास मिलता है। संथालियों के मतानुसार अंग्रेजों की उपेक्षापूर्ण नीति से ही बंगालियों, कर वसूल करने वालों, महाजनों तथा बंगाली जमींदारों के द्वारा उन पर अन्याय किया जाता था। धर्मोन्माद तथा असत्य अत्याचार की उपरोक्त भावनाओं का सम्मिश्रण हो गया। उनके एक नेता ने घोषित भी कर दिया कि उसने ईश्वर के अवतार को नीचे की ओर रथचक्र के रूप में उतरते हुए देखा और उससे उसके सिर पर दो कागज के टुकड़े गिरे जिसमें आदेश दिया गया था कि अत्याचारी वर्ग का निष्कासन किया जाय। बस क्या था, विद्रोहाग्नि भड़क उठी, लेकिन तत्काल ही १८५५ के अन्त तक जेनरल लोवायड के प्रयास से दबा दी गई। संथाल परगने में सिपाही गदर ठीक उपरोक्त संथाली आन्दोलन के दबते दबते ही अपना असर दिखाने लगा। लेकिन संथाली अब निर्भीक सहयोग देने का साहस अपने में नहीं पा रहे थे। बंगाल सरकार के सचिव को संथाल परगना के कार्यों के संबंध में दिये गये एक पत्र में उल्लेख है कि 'जहां तक संथालियों का संबंध है मेरा अपना विचार है कि उन पर संदेह अनावश्यक है। उनकी इच्छा अपने फसल के लिये उपयुक्त मौसम पाने मात्र के सिवाय कुछ भी नहीं हैं। रानीगंज, पचेली तथा हजारीबाग के संथालियों से पूर्ण अवगत नहीं होने के कारण वहां की स्थिति के बारे में तो नहीं किन्तु संथाल परगने की स्थिति के बारे में कहा जा सकता है कि यहां संथालियों से विद्रोह की आशंका नहीं है'। फिर भी संथाल परगने के पूरे क्षेत्रों में शान्ति कायम नहीं रह सकी। पांचवीं इरेगुलर कैवेलरी के कारनामों से जिले में तहलका मचा हुआ था। उनके कार्यों पर टिप्पणी देते हुए संथाल परगने के आयुक्त ने १६ जुलाई १८५७ को बंगाल सरकार के सचिव को लिखा कि १२ तारीख के साढ़े बारह बजे रात को जब मेजर मैक्डोनाल्ड, सर नौर्मन लेस्ली और पांचवीं इरेगुलर कैवेलरी के डा० ग्रांट संथाल परगना के रोहिणी ग्राम की पड़ाव में एक बंगले पर बैठे हुए थे कि अचानक तीन व्यक्तियों ने नंगी तलवारों से उनपर धावा बोल दिया। सर लेस्ली प्रथम अघात में ही गिर गये और शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई। मेजर मैक्डोनाल्ड और डा० ग्रांट घायल होकर भाग निकले। ये ती ों व्यक्ति पांचवीं इरेगुलर कैवेलरी में से ही थे तथा तीनों को पकड़ लिया गया और फांसी दे दी गई। उक्त घटनाक्रम ही कुछ ऐसा था जिससे सम्मिलित आयोजन का आभास होता था। फिर भी कुछ दिनों तक वातावरण शान्त रहा, लेकिन एकाएक भागलपुर की पांचवीं "इरेगुलर कैवेलरी" के बागी होने की खबर से जैसे बवंडर आ गया। बागी सिपाही रोहिणी की ओर बढ़े और वहां के बागियों से मिल गये। वहां कुछ धनवान व्यक्तियों से १२,००० रुपये निराधार वसूल करके वे ३२ वीं नेटिव इन्फैन्ट्री की प्रधान छावनियां देवघर तथा बौंसी की ओर बढ़े। किन्तु ३२वीं नेटिव इन्फैन्ट्री के लोगों ने अधिक वेतन तथा पदोन्नति का लोभ दिये जाने पर भी बृटिश सरकार के प्रति वफादारी दिखलाई तथा बागियों की इन जगहों पर एक भी न ीं चली। इसके अलावे बागी सिपाहियों की गतिविधि और उनके आगमन की पूर्व सूचना यहां के सैनिक अधिकारियों को मिल चुकी थी और ये लोग किसी भी परिस्थिति का सामना करने को तैयार बैठे थे। आखिर होनी होकर रही। पांचवीं

रेगुलर कैवेलरी का विद्रोह वशीभूत कर लिया गया। देवघर के विद्रोही गया की ओर बढ़ते हुए वजीरगंज तक पहुंचने के बाद अकस्मात आरा की ओर मुड़ गये एवं पटना जिला के थाना आतासराय में प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात उन लोगों ने शीघ्रतापूर्वक पश्चिम की ओर मुड़ कर जहानाबाद के दक्खिन ट्रंक रोड को पार किया। उरवल के पास फिर वे महातुल्लूपुर में सोन के उस पार गये। इसके बाद वे लोग पूरू के समीप रूपसागर और धुनसोली होते हुए कर्मनाशा की ओर बढ़े। उनका गन्तव्य स्थान रेवा था। विद्रोहियों का यह जत्था, पांचवीं अनियमित अश्व सेना (Fifth Irregular Cavalry) के पर्व में बिहार पार करते समय के पथ प्रदर्शक गदर सिंह के नेतृत्व में बढ़ रहा था। दूसरे जगह के बलवाइयों की तरह देवघर के बलवाइयों को अन्य सभी स्थानों पर वे तरह कुचल दिया गया। फिफ्थ इरेगुलर्स की एक टुकड़ी दुमका में रक्खी गई, लेकिन नया दुमका के अवर सहायक आयुक्त श्री श्यामलानन्द मुखर्जी की सतर्कता के परिणामस्वरूप यह क्षेत्र बलवा से मुक्त रहा। इस पांचवीं इरेगुलर कैवेलरी के ऊपर अविश्वास का पर्याप्त आधार मिल जाने पर अधिकारियों ने ४,००० रुपये का खजाना बाहर भेज दिया तथा कुछ कैदियों को सूरी जेल में बन्द करवा दिया। तत्कालीन गंभीर परिस्थिति में उनके निर्णय, धैर्य एवं विवेक की सरकार द्वारा यथेष्ठ सराहना की गई। और इस तरह पांचवीं इरेगुलर कैवेलरी के तितर-बितर हो जाने से संथाल परगने का विद्रोह बिलकुल दब गया। यहां तक कि संथालियों ने जो साहस, ईमानदारी एवं स्वामिभक्ति आन्दोलन की अवधि में दिखलाई, उस आधार पर सरकार ने उनलोगों की जाति से ही उस जिले में कार्य करने के लिए एक पुलिस दल तैयार करने का निर्णय किया। उनलोगों की सबलता, कार्यक्षमता, विभिन्न जलवायु के प्रभावों को बर्दाश्त कर सकने की शक्ति तथा सीधे-सादे स्वभाव आदि कुछ उनके ऐसे गुण सरकार का ध्यान आकर्षित किये कि वे लोग उपरोक्त कार्यों के लिये पूर्ण योग्य समझे गये। इतना जरूर था कि उनलोगों की चपलता तथा अधैर्य को ख्याल करके संथाली कार्यकर्त्ता चुनने के लिये ऐसे पदाधिकारी नियुक्त किये गये जिन्हें संथालियों का विश्वास प्राप्त हो। उनका वेतन ५ रुपये महीने से कम नहीं देने का निर्णय किया गया और किसी भी कारण से उसमें कटौती नहीं करने की व्यवस्था की गई। प्रथमतः कुछ ही अवधि के लिये वे लोग बहाल किये गये और उन्हें एक साधारण बन्दूक तथा उन्हीं के युद्ध में काम आने वाली कुल्हाड़ी रखने का आदेश दिया गया। यह भी तय किया गया कि दामिनी कोह की संथालियों में से ऐसी तीन टुकड़ियां तैयार की जायं और छोटानागपुर एजेंसी के संथालियों में से इस तरह अन्दाज किया जाय कि कहां के संथाली सबसे अधिक, उपरोक्त कार्य के योग्य होते हैं। भारत सरकार की स्वीकृति के आधार पर प्रारंभ में २०० संथालियों की फौजों में बहाली हो गई।

संथाली पैदल वाहिनी (Santhal Field Force) को प्रमुखता दी गई। भारत सरकार के फौजी विभाग (Military Department) से डिप्टी क्वार्टर मास्टर जेनरल, मेजर ए० साउन्डर्स के द्वारा लिखे हुए कर्नल वर्च के १६ फरवरी १८५७ को दिये हुए २२६ वें पत्र में उल्लिखित है कि कर्नल बर्नी, संथाल फिल्ड फोर्स के सेनापति ने वहां पुलिस दल के बारे में मन्तव्य दिया है कि वे सूरी में फौजी कर्त्तव्यों का संतोषजनक पालन कर सकते हैं।

संथाल परगने में १८५७ के गदर से पहले भी अधिकारियों का ध्यान संथालिय को फौज में भर्त्ती करने की ओर गया था। १८५५ के आन्दोलन में तो संथालियों की युद्ध कला भी समुचित रूप में प्रकाश में आयी। संथालियों के बारे में ६३वीं राष्ट्रीय सेना के सेनापति, लेफ्टिनेंट कर्नल हैनिंगटन और छोटानागपुर के उपायुक्त ने

निम्नाशय के विचार व्यक्त किये हैं। "संथालियों से फौजी दस्ते बहुत जल्द ही आयोजित किये जा सकते हैं। ये लोग छोटे कद के होते हुए भी कार्यक्षम और बहादुर होते हैं। बहुत कम अस्त्र-शस्त्रों के साथ छोटी मोटी लड़ाइयों में वे अपने को पूर्णतया उपयोगी सिद्ध कर सकते हैं। मैं उनकी स्थिरता, ईमानदारी और दूसरे गुणों के बारे में पूरी जिम्मेवारी के साथ कह सकता हूं"। उक्त आशय का पत्र ५ अगस्त १८५७ को भारत सरकार के सचिव, तथा बंगाल सरकार के सचिव को लिखा गया (सैनिक संमन्त्रणा, ७ अगस्त १८५७, नं० ३९०)। बंगाल सरकार के सचिव ने ३१ अगस्त १८५७ को १५४९ वें पत्र में भारत सरकार के सचिव को लिखा कि लेफ्टिनेंट गवर्नर, गवर्नर-जेनरल-इन-काउन्सिल की अनुमति से दामिनी क्षेत्र के संथालियों की लगभग तीन फौजी टुकड़ियां तैयार करना चाहते हैं।

संथाल परगने के आयुक्त श्री जी० यू० यूल अपने २५ अगस्त १८५७ के ४४९वें पत्र में लिखते हैं कि उन्हें भी संथालियों की कर्त्तव्यपरायणता, ईमानदारी और साहस पर विश्वास है। वे उल्लेख करते हैं कि "यह एक ऐसे लोगों का दल होगा, जो अत्यन्त हानिकारक जलवायु में भी डटकर काम करेगा। मुझे विश्वास है कि सारे संथाल परगने के फौजी कर्त्तव्यों का भार उनके ऊपर दिया जा सकता है"।

सेना के उप-महासहायक (Deputy Adjutant General) ने भारत सरकार के सचिव को फौजी विभाग से लिखा कि महा सेनापति (Commander in Chief) संथालियों के उपरोक्त गुणों के बावजूद भी उनकी फौजी कर्त्तव्यपरायणता के ऊपर कुछ संदेहात्मक विचार रखते हैं, तथा उनको सफल और दक्ष फौज की हैसियत से तो नहीं, बल्कि नागरिक पुलिस की हैसियत से कार्य लेना उपयोगी समझते है।

ऐसा विवरण मिलता है कि छोटानागपुर के स्थानापन्न आयुक्त श्री डालटन से उनके क्षेत्र के संथालियों के बारे में पत्राचार हुआ और अन्ततः तीन सौ संथालियों की सूची तैयार हुई और वे देवघर के उपायुक्त (Assistant commissioner) श्री ब्रैडन की देखरेख में सैनिक कवायद आदि पूर्ण नियमित रूप से सीखने लगे।

सन् १८५७ के बाद

सन् १८५७ का गदर समाप्त होने के बाद भी संथाल परगने में शान्तिपूर्ण वातावरण शीघ्र स्थापित नहीं हो सका। १० मई १८६१ की गृह विभाग की प्रक्रिया संख्या १२-१३ में एक महत्वपूर्ण प्रलेख है जो श्री जे० डी० गौर्डन, बंगाल सरकार के अवर सचिव के द्वारा ७ मई १८६१ को भारत सरकार के सचिव के नाम से बंगाल सरकार की सूचना के रूप में प्रेषित किया गया है और निर्देश किया गया है कि संथाल परगने के कुछ महत्वपूर्ण स्थानों पर राष्ट्रीय फौज की दो टुकड़ियां किसी भी प्रतिकूल परिस्थितियों से निवटने के लिए प्रस्तुत रक्खी जायं। इस तरह १८६१ ई० तक भी अधिकारी वर्ग संथालियों के रंग-ढंग पर पूर्ण आश्वस्त नहीं हुए थे। नया दुमका मंडल के सहायक आयुक्त अपने क्षेत्र के संथालियों में विक्षोभ की आशंका अपने कई पत्रों में प्रगट करते रहे। उन्होंने उल्लेख किया कि संथालियों के बड़े-बड़े जत्थे हथियारबन्द होकर साल वृक्ष के तने को लिए हुए घूम रहे थे, जो असमान परिस्थिति के द्योतक थे। उनके साथ उनकी औरतें भी झुंड बांध कर खाली झूड़ियां लिये फिरती थीं जैसा कि गत विद्रोह के पहले भी हुआ था। इसी तरह की खबरें राजमहल से भी आई थीं। उक्त

पत्र नया दुमका में पुनः विक्षोभ के अनुमानित कारणों को निम्नलिखित रूप में वर्णन करता है :—

(१) जमींदारों के द्वारा लगान का हाल ही में बढ़ाया जाना ;

(२) महाजनों के द्वारा १८५९ की १४वीं धारा से आशंकित होकर मामले दायर करना ; एवं

(३) संभवतः एक आंशिक कारण कानू की भविष्यवाणी भी थी जिसमें कानू ने मरते समय बताया था कि वर्त्तमान समय के लगभग में फिर एक विद्रोह उठेगा और वह (कानू) फिर उसमें अग्रणी बनकर प्रगट होगा।

उपरोक्त आशंकाओं के आधार पर पुलिस और सेनाओं का सुदृढ़ बन्दोबस्त किया गया। भागलपुर के स्थानापन्न आयुक्त को आदेश मिला कि वे कप्तान बेकर को २०० फौजी पुलिस (जिसमें शेख और गोरखा लोग थे) के साथ या तो भागलपुर बुला लें या उन्हें राजमहल भेज दें।

इस सैनिक संमन्त्रणा में जी०ई०ओ० प्लौडन से प्रेषित कुछ सीटनकर क नाम के पत्र पाये जाते हैं जो परिस्थिति पर काफी प्रकाश डालते हैं। प्लौडन, संथालियों के सामूहिक आन्दोलन का गंध स्पष्टतः अनुभव करते थे तथा वे सूरी, रामपुर हाट, पाकुड़, राजमहल, पिरपैंती, बौंसी, गोड्डा, देवघर, दुमका तथा रानीगंज आदि जगहों में फौजी पुलिस के लोगों का रक्खा जाना जरुरी समझते थे। एक दूसरे उक्त पते के ६ मई १८६१ के पत्र में ही फिर प्लौडन उसी आशय के विचार दुहराते देखे जाते हैं। उन्होंने स्वयं ही अधिकारी की हैसियत से हंदवा स्टेट के कुछ परगनैतों की परीक्षा की थी और इस परिणाम पर पहुंचे थे कि संथालियों का समस्त विक्षोभ, श्री वार्न्स के हंदवा स्टेट के बन्दोबस्ती को लेकर ही था। फिर भी प्लौडन के विचार में संथाली आन्दोलन का ध्येय आन्दोलन नहीं, बल्कि नीलहे जिले की बढ़ती हुई लगान का कोई निराकरण खोजना था। अतः प्लौडन ने सिफारिश की कि श्री वार्न्स की बन्दोबस्ती का आमूल जांच किया जाय।

वस्तुतः विद्रोह का बवंडर तो नहीं उठा लेकिन अधिकारी वर्ग काफी अर्से तक आश्वस्त नहीं हो सके और अन्ततः ऐसा सोचा गया कि वहां के नियम तथा कानून निश्चित तथा समुचित विवेचना के बाद प्रचलित किये जायं।

एक समीक्षा।

छोटानागपुर तथा संथाल परगने के १८५७ के आन्दोलन का गवेषणापूर्ण अध्ययन करने से पता चलता है कि इस जिले की खास परिस्थितियां यहां के घटनाक्रम के प्रवाह को खास ढंग की बनाए हुए थी।

संथाल परगने में १८५७ का आन्दोलन १८५५ के विद्रोह के दबते-दबते ही शुरु हो गया। अतः १८५५ की जन-क्रांति की विभीषिकायें लोगों के दिमाग में बिल्कुल स्पष्ट ही थीं, जिसके फलस्वरूप फौजी विक्षोभ, जनता के अनमनेपन से टकड़ा कर सैन्य-दल तक ही सीमित रह गया। प्रशासकों ने भी हवा के रुख को समझकर स्थिति में

सुधार लाने का प्रयास किया जो एक प्रमुख कारण था कि १८५७ के गदर में संथालियों ने पूर्ण सहयोग नहीं दिया। अगर अंग्रेज प्रशासक इस तरह की बुद्धिमानी का कार्य नहीं करते तो निश्चय ही १२ जून १८५७ को रोहिणी का आन्दोलन बहुत विस्तृत रूप में फैलता।

ऐसा उल्लेख है कि संथाली फौज तैयार किये गये और संथालियों को उसमें भरती होने को प्रोत्साहित किया गया। गुप्तचरों का भी एक दल तैयार किया गया जिसमें प्रमुखतः संथाली ही लिए गये। श्री ए०आर० थौम्पसन परिवर्तित पद्धतियों से इतने संतुष्ट थे कि ७ अप्रील १८५६ को उन्होंने लिखा—"गत वर्ष की तरह अभी मुझे नृशंस अत्याचारों का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता है। संथालियों का आयोजित तथा सामूहिक आन्दोलन सफलतापूर्वक कार्यरुप में परिणत किये जाने से पहले, हमलोग जरूर उनकी गतिविधि से अवगत हो जायेंगे, तथा मुझे विश्वास है कि आन्दोलन के उग्र रूप होने से पहले ही हमारी सैन्य शक्ति विद्रोह को बिलकुल कुचल डालने के लिए यथेष्ट प्रमाणित होगी"। सुधार के सिलसिले में एक दूसरा प्रयास किया गया कि पुलिस-पद्धति खत्म कर दी गई। २० फरवरी १८५६ को ए०आर० थौम्पसन, स्थानापन्न आयुक्त ने आयुक्त को लिखा कि "उनका ध्येय था कि अधिकारी वर्ग जनता से ही आन्तरिक सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करें; हमलोग इस प्रयास में सफल हो गये तो अन्ततोगत्वा इसकी उपयोगिता प्रमाणित होगी। कम से कम वर्त्तमान पुलिस व्यवस्था से, जो वाध्य कर्त्तव्यों तथा निम्नस्थ सेवा की भावनाओं से परिप्लावित है, प्रस्तावित व्यवस्था तो जरूर बेहतर होगी"।

पहली जून, १८५६ को उपायुक्त, संथाल परगने के आयुक्त, श्री ब्रैडन के नाम के १६१वें पत्र में अपना विचार प्रगट करते हैं कि "मेरा यह अटल विश्वास है कि संथाली लोग पुलिस व्यवस्था समाप्त हो जाने को एक बहुत बड़ा वरदान समझते हैं। पुलिस कर्मचारियों के कानूनी फंदे को वे लोग खूब समझते हैं। घूसखोरी, जिसके बदौलत बड़े-बड़े अपराधों के विवरण लापता हो जाते हैं, अत्याचार, जिसके बदौलत निर्दोष आदमियों से भी दोष कबूल कराया जाता है, निराधार खबरें, जो पूरे गांव को तवाह कर डालती है, तथा जिनका निराकरण या तो रुपये से या और किसी उससे भी प्रिय वस्तु प्रदान करने से होता है, आदि सभी तरह के कार्यों को आम तौर से लोग जानते हैं, लेकिन, न्यायालय के अमले तथा अन्य कर्मचारीगण से घिरे रहने के कारण उनकी आवाज हाकिमों के कानों तक नहीं पहुंच पाती है"। उसी पत्र में अन्यत्र उन्होंने लिखा है, "पुलिस प्रणाली के समाप्त हो जाने के पश्चात् लोग अपनी पारस्परिक सुरक्षा के लिये आप ही संगठित हो जायेंगे और अपराध छिपाने में अपने स्वार्थों का हनन होते देखकर रास्ता स्वयं ही निकालने में सफल होंगे"।

प्रशासनिक व्यवस्था में घटवालों के द्वारा वसूल किये जाने वाले "अबवाव" में भी कुछ सुविधाजनक परिवर्त्तन लाने को सोचा जाता था। ये "अबवान" उत्तरी भारत के नीलहे किसानों की तरह ही घटवालों पर कई तरह से लगाये जाते थे। यहां तक कि घटवालों द्वारा घोड़े या हाथी खरीदे जाने पर भी "अबवान" वसूल किया जाता था। किन्तु परिवर्तित परिस्थिति १८५७ के आन्दोलन को प्रस्फुटित होने से रोक नहीं सकी। अधिकारी, फिर भी, अत्यन्त सतर्क थे तथा सैन्य दल से आरंभ विद्रोह को उन्होंने कुचल डालने में बड़ी तत्परता दिखलाई। उप-आयुक्त श्री ए० इडेन ने पैदल सेना को आदेश दिया कि वहां जाकर अत्यन्त शीघ्रता से विद्रोह को वश में किया जाय। इसके लिए इडेन को बंगाल सरकार के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट करनी पड़ी। अपने स्पष्टीकरण में उन्होंने बताया कि ४२वां नेटिव लाइट इन्फैन्ट्री के समादेशक अधिकारी

(Officer Commanding) मेजर डैलिनल की सलाह लेकर ऐसा किया गया और ब्रिगेडियर से जो बैरकपुर में थे, आदेश मिलना दस दिनों के अन्दर संभव भी नहीं था"। उनके विचार में "संकटपूर्ण समय उपस्थित हो गया। झुंड बांध कर लोग लूट पाट मचाने लगे। जयपुर लूटा गया, देवघर में भी ऐसी आशंका उत्पन्न हो गई। बंगाली घर छोड़कर भागने लगे। परिस्थिति कुछ ऐसी हुई कि अगर पूरी तत्परता नहीं दिखाई जाती तो सारा देश क्षतिग्रस्त हो जाता"।

आन्दोलन का उग्र रूप में प्रगट नहीं होने में संथाल परगने की दुर्गमनीयता तथा नेताओं का अभाव प्रबल हेतु बने। अन्य स्थानों की खबरें वहां काफी अर्से के बाद ही तथा बहुत कम पहुंच पाती थी, जिसके फलस्वरूप गदर की लपटें यहां पूर्ण प्रसारित नहीं हो सकीं।

लेकिन पुराने पत्राचार के अवलोकन से पता चलता है कि फौजी अधिकारियों में बेचैनी छा गई थी। और वे कुछ उत्तेजित भाव से कार्यरत दिखाई पड़ते थे। १२ जून, १८५७ को प्रथमतः रोहिणी में विद्रोह की चिनगारियां फूट पड़ीं। नौ बजे रात को उसी दिन देवघर के आयुक्त को खबर दिया गया। वहां तीन सवार और एक दफादार जो सम्बाद वाहक बन कर गये थे, उन लोगों ने यह नहीं बताया कि आक्रमण-कारी, जो दो अफसरों को घायल तथा एक का खून कर चुके थे, ३२वीं टुकड़ी के थे या ५वीं अस्थायी घुड़सवारों (fifth irregular) में से। सूरी के सिखों के औफिसर कमान्डींग के पास रोनाल्ड ने खबर भेजी थी कि मेजर मैक्डोनाल्ड के विचार में आक्रामक दल बरखास्त किए हुए सिपाहियों के थे तथा पांचवीं अस्थायी घुड़सवारों के ऊपर संदेह का कोई खास कारण निश्चित नहीं किया जा सकता था। रोनाल्ड ने १४ जून, १८५७ के अपने विवरण में लिखा है कि आक्रमणकारियों का पता लगाना असंभव है जो संभवतः बरखास्त सिपाहियों में से थे। लेकिन फिर भी १६ जून, १८५७ को पांचवीं अस्थायी टुकड़ी के तीन सवारों को, जिसमें सलामत अली, अमानत अली और शेख हारो थे, पकड़ लिया गया। मेजर मैक्डोनाल्ड ने उनकी जांच की और उनको फांसी दे दी गई। ऐसा आभास पाया जाता है कि फांसी पाने वाले व्यक्तियों में एक ऐसा भी आदमी था जिसने अपने घाव को डाक्टर से दिखाया था और इसी आधार पर उस पर शक किया गया कि उसको भी आक्रमण में ही चोटें लगी थीं। और इस तरह जिन निर्मम परिस्थितियों में उन लोगों की हत्या की गई थी, उसकी चर्चा की जा चुकी है। २२ जून, १८५७ को रोनाल्ड ने अपने स्थानापन्न आयुक्त को लिखा "कि मेरा विश्वास है कि लोगों ने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया लेकिन इस विषय पर मैं कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कह सकता हूं, क्योंकि उनलोगों की जांच फौजी ढंग से हुई और वहां अन्य पदाधिकारियों का प्रवेश निषेध था, केवल मेजर मैक्डोनाल्ड तथा देशी अधिकारी ही वहां थे। अतः मैं इन सारे मामलों से अवगत नहीं हूं"।

उपरोक्त विवरण व्यक्त करते हैं कि अपराध का विचार शीघ्रता से किया गया तथा न्यायकर्त्ता अपराधियों के अपराध पर निश्चित नहीं थे। कुछ भी हो, फांसी की सजा पाने वालों के अपराधों के बारे में निश्चयात्मक विचार नहीं ही हो सका। फिर भी शीघ्र का इतना कड़ा दंड, आन्दोलन का प्रवल अवरोधक साबित हुआ।

. जैसा कि पहले ही वर्णन किया जा चुका है, क्रांति की दूसरी लहर भी आई और उसमें देवघर के सहायक आयुक्त श्री रोनाल्ड और लेफ्टिनेंट एच० सी० कूपर मार डाले गये। एन० आर० लेस्ली, जिनकी मृत्यु १२ जून, १८५७ को हुई थी, के कब्र के पास ही रोनाल्ड और कूपर के भी कब्र बने जो आज भी अवर-प्रमंडल-दंडाधिकारी के बंगले के बाहर देखे जा सकते हैं।

देवघर का आन्दोलन फौजी सिपाहियों तक ही सीमित रहा दिल्ली की तरफ सवारों ने कुछ उत्पात मचाया, किन्तु उसकी लपटें देहातों की आबादी तक नहीं फैल सकीं, जहां लोगों ने अनमने होकर पूर्व रूप से जीवन बिताना शुरू कर दिया था।

कहा जाता है कि दुनिया में हमेशा अशक्त तथा सशक्त दोनों ही तरह की भावनाएं, विद्रोह की धात्री हैं। किन्तु संथाल परगने के आन्दोलन के गंभीर विश्लेषण के आधार पर उपरोक्त तथ्य संथाल परगने में खड़े नहीं उतरते। यहां का १८५७ का गदर फौजी सिपाहियों के द्वारा लाए हुए बाहर उत्तर भारत की क्रांति की कुछ खबरों के ऊपर ही आधारित था जो जन-सहयोग नहीं मिलने के कारण शीघ्र ही विलुप्त हो गया। इससे पूर्व के आन्दोलन भले ही जनता के असंतोष और विक्षोभ के ऊपर अवलम्बित थे।

द्वितीय परिच्छेद

हजारीबाग

१७६५ ई० का वर्ष, छोटानागपुर के इतिहास में एक नये अध्याय का आविर्भाव करता है। १२ अगस्त, १८६५ को सम्राट शाह आलम द्वितीय ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को बिहार और उड़ीसा की दीवानी दी। छोटानागपुर, बिहार का एक अंग होने के कारण कम्पनी को रामगढ़ की भेंट, खड़गडीह और केंदी की भूमि राजस्व तथा कुण्डा की सेवाएं प्राप्त करने का अधिकार मिला।

जिले का नाम

हजारीबाग जिले का नाम हजारीबाग शहर के अनुसार पड़ा है जो इसका वर्तमान मुख्यालय है। शहर का नामकरण हजारी नामक आम्रकुंज से पूर्ण गांव पर हुआ है जो उन बस्तियों में है जिनके मिलने से शहर का निर्माण हो सका है। शहर के पश्चिमी किनारे में अभी भी यह गांव वर्तमान है। जिले के सर्व प्रथम मानचित्र में जो सन् १७७९ ई० में भारत वर्ष का प्रथम महा भूमि निरीक्षक (Surveyor-General) मेजर जेम्स रेनेल द्वारा प्रकाशित हुआ, वर्तमान शहर को ओकनहजारी नाम से दिखाया गया था। इसका अस्तित्व १७८० में रामगढ़ बटालियन की स्थापना तथा ओकनी और हजारीबाग नामक गांवों के निकट स्थायी रूप से इसका ठहराव के निर्णय के पश्चात् ही होता है। ये गांव चतरा से इचाक जाने वाली सड़क के किनारे पड़ते हैं जिनकी ख्याति सन् १७७२ ई० में रामगढ़ के राजा द्वारा अपनी राजधानी बनाये जाने के पश्चात् ही हो सकी थी।

प्रारंभिक इतिहास

यह जिला वर्तमान छोटानागपुर प्रमंडल के पूर्वोत्तर भू-भाग को लेकर बना है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्राचीन काल में यह क्षेत्र दुर्गम पहाड़ियों और घने जंगलों से परिपूर्ण था, जहां भिन्न-भिन्न समयों में आर्यों की प्रगति के सामने आत्म समर्पण न कर अनेक अनार्य जातियां शरण ले रही थीं। प्राचीन आर्यों ने इस क्षेत्र को किस नाम से पुकारा था, इसका हमें ठीक-ठीक पता नहीं लगता। भारतवर्ष के लम्बे हिन्दू-शासन काल में छोटानागपुर प्रायः उनके आक्रमण से बिलकुल ही मुक्त रहा यद्यपि एकाध मौके पर बाह्य हमलाकारों ने इस क्षेत्र पर नाम मात्र के अधिराजत्व कायम करने में सफलता प्राप्त की। सर्वप्रथम यहां के निवासियों ने असुर सम्राट जरासन्ध का आधिपत्य कबूल किया होगा, जिसका वर्णन महाकाव्यरचयिताओं ने सार्वभौम सत्ता सम्पन्न और सूर्यतुल्य, विश्व के सारे नरेशों की श्रीको हरने वाले के रूप में किया है। यह भी संभव है कि मगध के महापद्मनंद, उग्रसेन ने क्षत्रियों के विरुद्ध अनेकों युद्ध संचालन किया और फलतः कलिंग समेत सम्पूर्ण पूर्वी भारत पर अपनी विजय वैजयन्ती लहरायी तथा अपने को "इकरात" अर्थात एकमात्र सम्राट घोषित किया। ऐसा कहा जाता है कि प्रियदर्शी अशोक के समय (ईसा-पूर्व २७३-२३२) में "अटवी" अर्थात् वन-राज्यों भी मगध के आधिपत्य को स्वीकार किया। इससे इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि छोटानागपुर अशोक के राज्य-काल में मौर्य-साम्राज्य के अन्दर था।

इसका भी सबूत है कि यह क्षेत्र भारतवर्ष के अन्य भागों से संबंध रखता था। काशी और हजारीबाग में बहुधा समागम होता रहता था। संभवतः ईसा-पूर्व आठवीं शताब्दी में जैनों के २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने पारसनाथ की पहाड़ी के शिखर पर निर्वाण प्राप्त किया था। मौर्य-साम्राज्य के पतन के पश्चात् ईसा-पूर्व १८५ में कलिंग नरेश खारवेल ने छोटानागपुर होकर हमला किया तथा राजगीर और पाटलीपुत्र को लूटा। समद्रगुप्त (३३५-३८० ई०) भी पूर्वी डेक्कन की चढ़ाई के समय अवश्य ही छोटा-नागपुर से होकर गुजरा होगा। आक्रमणकारी (समुद्रगुप्त) "राजधानी से दक्षिण चूतिया नागपुर होकर आगे बढ़ा तथा महानदी की घाटी में स्थित दक्षिण कोशल के राज्य पर प्रथम आक्रमण किया"। चीनी-यात्री इत-सिंग जो ६७३ ई० में तामलुक पहुंचा था, नालंदा और बोधगया पहुंचने के लिए उसे चूतिया नागपुर की पहाड़ी भूमि को तय करनी पड़ी थी।

अनार्य जातियाँ

विभिन्न अनार्य जातियां जो छोटानागपुर में बस गई थीं, प्रारम्भ में उनके कोई राजा नहीं था। अनार्य लोग कुलपतियों के अधीन रहते थे। कालक्रम से ज्यों-ज्यों उनकी संख्या बढ़ती गयी और विदेशियों के विरुद्ध युद्धों का क्रम चलता रहा, उन्होंने अपने प्रमुखों में से एक को राजा चुनने का निश्चय किया, अधिकांश विद्वान ऐसा समझते हैं कि छोटानागपुर में राजतंत्र का प्रारम्भ ५वीं शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् हुआ। छोटानागपुर राज्य की हिन्दी के छन्दों में प्रकाशित आनुवंशिक इतिहास तथा मुंडा लोगों की परंपरा से यह प्रमाणित होता है कि मुन्डाओं ने अपनी स्वेक्षा से अपने कुलपति सुतिआम्बी (रांची जिला) के मद्र-मुंडा के पुत्र की अपेक्षा उनका पालितपुत्र फणि-मुकुट का उसकी विशिष्ट बुद्धिमत्ता के कारण, अपना राजा चुना। फणि-मुकुट को ठीक अपने जन्म के पश्चात् एक तालाब के किनारे एक विशाल नाग या सर्प के संरक्षण में पाया गया था। इसी कारण उसके बंशज नागवंशी कहलाये।

छोटानागपुर का नामकरण

नागपुर नाम सम्भवतः "नागवंशी" राजाओं के नाम से ही लिया गया है जिन्होंने वहां शासन किया था। "छोटा" "चुटिया" का ही विकृत रूप है जो रांची के सरहद पर एक ग्राम है। वहां नागवंशी राजाओं के दुर्ग का भग्नावशेष अभी भी देखा जा सकता है। प्रारम्भिक समय में यहां उनकी एक राजधानी भी थी। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में भी इस भाग को चुटिया नागपुर के नाम से जाना जाता था। "चुटिया" नाम को सम्भवतः सुविधा के लिए छोटा कर दिया गया है। दिवंगत श्री एस० सी० राय के अनुसार छोटानागपुर नाम बहुत ही हाल का है और प्रथमतः प्रारम्भिक बृटिश शासकों द्वारा मराठा अधिकृत "नागपुर" से भिन्न दिखलाने के लिए ही ऐसा नामकरण किया गया था।

यवन-शासन

मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार छोटानापुर उस भू-भाग के अन्तर्गत था जिसे झारखंड या जंगली देश कहते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह भारत के तुर्क अफगान शासन काल में (१२०६ ई० से १५२६ ई० तक) सदा व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र रहा। दिल्ली के सुलतानों ने विशेषतः उसके उपगम्य भागों को फतह करने

का प्रयास किया और शहरों तथा सामरिक महत्व के केन्द्रों पर अपने सूबेदार और सेनायें स्थित की । वस्तुतः यवनों ने इस काल में झारखण्ड क्षेत्र को सुदूर रोहतास गढ़ तक आक्रांत किया । शम्स-इ-सिराज अफिफ की तारीख-ए-फिरुज में उल्लेख है कि सुलतान फिरोज शाह तुगलक, बंगाल की अपनी दूसरी चढ़ाई (१३५९-६० ई०) के पश्चात् जौनपुर के जाजनगर (उड़ीसा) की ओर अग्रसर हुआ और वहां के "राय" से सुलह करके झारखंड होकर लौटा । श्री चैतन्य चरितामृत के सत्रहवें कन्टों (Canto) से हमें पता चलता है कि बंगाल में नदिया के परम भक्तराज तथा सुधारक श्री चैतन्य महाप्रभु (१४८५ ई०) १६वीं सदी के द्वितीय दशक में मथुरा जाते हुए झारखंड से गुजरे और आदिवासियों में धर्म परिवर्तन के कार्य किये । यह भी कहा जाता है कि शेरशाह, बंगाल की राजधानी गौड़ पर अपने दूसरे आक्रमण के क्रम में १५३८ ई० में झारखंड होकर ही लौटा था । प्रोफेसर कानूनगो के अनुसार "शेरशाह ने रोहतास जाने के क्रम में झारखंड के जंगलों से होकर बड़ी मुश्किल से अपना रास्ता तय किया था" ।

१६वीं शताब्दी

१५५६ ई० में अकबर दिल्ली की गद्दी पर बैठा और उसी समय से छोटानागपुर या झारखंड के इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हो गया । इसको कुकराह के नाम से भी मुगल जानते थे । यहां की नदियों में हीरे आदि मिलने की खबर से मुगलों की लालच और भी बढ़ी । स्वर्गीय प्रोफेसर ब्लोकमैन ने फारसी के दो ग्रन्थों "अकबर नामा" और "तुजुक-ए-जहांगीरी" से बंगाल की "एसियाटिक सोसाइटी जर्नल" (१८७१) के एक पत्र लेख में उद्धहरण किया है और उसी का उल्लेख श्री एस० सी० राय ने "मुन्डाज ऐन्ड देयर कंट्री," के १५१ पृष्ठ में दिया है जिसमें पता चलता है कि कुकराह मुसलमानों के आधिपत्य से अकबर के १३वें वर्ष के शासनकाल तक स्वतंत्र था। अकबर ने १५८५ ई० में शाहाबाद खां तुरवत्ती के मातहत एक सेना भेजी जिसने छोटानागपुर के राजा को परास्त कर इस राज्य को एक करद राज्य बना दिया। १५९१ ई० में यहां के राजा ने मुगलों को उड़ीसा विजय में साथ दिया था । उड़ीसा के विद्रोही अफगान सरदारों के विरुद्ध द्वितीय चढ़ाई (१५९१-९२) में बंगाल और बिहार का वाइसराय मानसिंह रोहतास गढ़ से रवाना हुआ । उसने अपने बिहारी फौजों को पच्छिमी सड़क अर्थात् झारखण्ड के रास्ते से होकर मिदनापुर जाने के लिये आज्ञा दी और स्वयं गंगा के बहाव की ओर आम मार्ग से चला । आइने-इ-अकबरी में लिखा है कि छोटानागपुर या कराह सूबा बिहार के अन्तर्गत कर लिया गया ।

१७वीं शताब्दी

सम्राज्ञी नूरजहां का भाई इब्राहिम खां फतेह जंग ने १६१६ ई० में कुकराह पर आक्रमण किया । कुकराह १६०५ ई० में अकबर की मृत्यु के पश्चात् स्वतंत्र हो गया था । लेकिन इब्राहिम खां ने छोटानागपुर के ४६वें राजा दुर्जन शाल को परास्त किया और उसका सर्वस्व छीन कर ग्वालियर के जिले में कैद कर लिया । १२ वर्षों तक कारागार में रहने के बाद दुर्जन शाल को असली तथा नकली हीरे परखने के फलस्वरूप मुक्त कर दिया गया और उसको पूर्व रूप से ही राज्य और सम्पत्ति मिल गई । हर साल उसे ६,०७० रु० का नजराना पेश करने का आदेश हुआ । १६३२ ई० में १,३६,००० रुपये सालाना नजराना देने के करार पर पटना के गवर्नर को छोटानागपुर, जागीर के रूप में दिया गया, जो रकम १६३६ ई० में १,६१,००० रु० कर दिया गया ।

१८वीं शताब्दी

१७२४ ई० में मुहम्मद शाह के शासन काल में (१७१६-१७४८) बिहार के सूबेदार सरबुलन्द खां ने छोटानागपुर के राजा पर आक्रमण कर दिया और बिना युद्ध किये ही राजा को अपनी अधीनता स्वीकार करवाकर वहां से काफी रकम और जवाहरात लेकर वापस लौटा। कुछ दिनों के बाद राजा ने फिर सलामी देना बन्द कर दिया। अतः १७३१ ई० में बिहार के तत्कालीन सूबेदार फखरुद्दौला ने बड़ी सेना लेकर चढ़ाई कर दी। उसका सामना भी डट कर किया गया। अन्त में उसने छोटानागपुर राज्य के अधीनस्थ रामगढ़ के राजा से १२,००० रुपये नगद अपने हक के रूप में पाकर समझौता कर ली। १७३५ ई० में अलीवर्दी खां ने कुछ कठिनाइयों के साथ फिर से नजराना वसूल करना शुरू कर दिया जो बृटिश आधिपत्य होने तक चालू रहा।

रामगढ़ राज्य

यवन-शासन काल में रामगढ़, कुन्दा, केन्दी, चाई और खरगडीहा वर्तमान हजारीबाग जिले के क्षेत्र में प्रधान राज्य थे। रामगढ़ राज्य के संस्थापक बागदेव सिंह थे जो अपने भाई सिंहदेव सिंह के साथ छोटानागपुर के राजा की नौकरी में थे। घटना-क्रम से दोनों भाइयों को राजा से अनबन हो गई और वे कुछ साहसी जवानों को लेकर करनपूरा (बरकागांव थाना) चले आये। यहां के स्थानीय राजा कापर देव को हराकर उक्त परगने को अपने अधीन कर लिया और इसी तरह उन दोनों भाईयों ने इक्कीस अन्य परगनों को जीता और १३६८ ई० में सिसिया में अपनी राजधानी बनाकर बागदेव सिंह राजा बने। बाद में राजधानी उर्दा, बादम आदि जगहों में कुछ दिनों रख कर आखिर रामगढ़ में बनाई गई। इस वंश के छठे राजा हेमन्त सिंह ने बादम में सुदृढ़ आवास गृह बनाने के लिए पटने से एक कारीगर को बुलवाया जिस महल का अवशेष अभी भी बादम में वर्तमान है। यहां फाटक पर के शिलालेख बताते हैं कि इसे, उक्त राजा के लिए १६४२ ई० में एक पटना के कारीगर ने बनाया था। पड़ोस में ही महूदी पहाड़ी है जहां हिन्दू साधुओं के लिए गुफा का निर्माण किया गया था। ऐसी एक गुफा १६६० में बनी थी। सम्भवतः मुसलमानों के छोटानागपुर पहुँचने के रास्ते से बादम की दूरी को सोचकर ही १६७० ई० में बादम से राजधानी हटाकर ३० मील पूरब रामगढ़ में स्थित की गई।

कुन्दा राज्य की स्थापना बादशाह औरंगजेब का एक खास सेवक रामसिंह के द्वारा की गई। उसे सड़कों की रक्षा और रखवाली के लिए बादशाह के अधीनस्थ अधिकारी दाउद खां और मंगल खां के द्वारा "थानादारी जागीर" दी गई थी, और एक सनद लेने के लिए भी मजबूर किया गया जिसके अनुसार उसे "बाबलतर, पिञ्जी, बनवाडीह और नगदर्रा प्रभृति घाटियों को मराठा, बरगीस, पिन्डारी आदि के आक्रमणों से सुरक्षित रखना था।

केन्दी और चाई का प्रारम्भिक इतिहास अस्पष्ट है। करीब १७७० ई० में मुसलमानों के द्वारा केन्दी को मात्र जमींदारी के रूप में परिणत कर दिया गया। १७७० ई० में ही चाई को रामगढ़ के काकुन्ड सिंह ने अधीनस्थ कर लिया और पांच सरदारों में बांट दिया गया जिनमें से चार सरदारों को पाँचवें सरदार जोगाडीह के राजा लाल खां को नजराना देना पड़ता था।

ऐसा कहा जाता है कि १५वीं शताब्दी में खरगडीहा राज्य की स्थापना दक्खिन भारत से आये हुए हंसराज भट्ट नामक व्यक्ति के द्वारा की गई थी। उसने यहां आकर बन्दावट राज्य के राजा को परास्त किया और गया तथा हजारीबाग के राजाओं को भी हराकर अपने लिए ६०० मील लम्बा राज्य कायम किया। यहां के बाभन जमींदारों के साथ उसने वैवाहिक संबंध कायम किए। इस तरह यहां के आन्तरिक मामलों में मुसलमानों का तबतक हस्तक्षेप नहीं हुआ जब १७६५ ई० में पूर्वी गया के नरहट समाई के जमींदार कामगार खां के लड़के अकबर अली खां ने हजारीबाग जिले के एक जमींदार राजा मोद नारायण देव को खरगडीहा से हटा कर उस भूभाग को अपने अधीन कर लिया। मोद नारायण देव और उनका लड़का अपने निष्कासित अवस्था में ही रामगढ़ में स्वर्गवासी हुए, परन्तु १७७४ ई० में उनके पौत्र गिरवर नारायण देव ने अकबर अली खां को वहां से भगाने में अंग्रेजों की मदद की।

रामगढ़ का राजा, बंगाल, बिहार और उड़ीसा के तत्कालीन सूबेदार अलीवर्दी खां ा विरोधी था। अलीवर्दी खां ने पटना के इतिहासकार "सियार-उल-मुतखरीन" के लेखक गुलाम हुसेन के पिता हिदायत अली खां के अधीन १७४० ई० में एक सेना रामगढ़ में जंगली जिलों के बागी राजा को कब्जे में लाने के लिए भेजा। हिदायत अली खां पलामू के जमींदार राजा सुन्दर सिंह और राजा जयकिसन सिंह एवं सिरीस कोटम्बा और शेरघाटी के जमींदारों की मदद से रामगढ़ के शक्तिशाली राजा को कब्जे में लाया।

कप्तान कामक

बृटिश अधिकार वस्तुतः यहां और भी कुछ दिनों बाद में हुआ। छोटानागपुर के राजाओं को बहुत दिनों तक स्वतंत्र छोड़ दिया गया, यद्यपि वे राजस्व संग्रह में बाधा डालते रहते थे। पहले-पहल कप्तान कामक ने ही १७६९ ई० में हजारीबाग के जंगली इलाकों में एक व्यवस्था जारी की। छोटानागपुर और रामगढ़ में उपद्रवी मराठे लोग अक्सर प्रवेश कर जाते थे अतः अंग्रेजों ने छोटानागपुर के राजा को अधीनस्थ करने का निश्चय किया।

कप्तान कामक ने सर्व प्रथम खरगडीहा और केन्दी के राजाओं को वश में किया। १७७१ ई० में उसे एक तरह से रामगढ़ जिले का सैनिक समाहर्त्ता बनाया गया और उसका मुख्यालय चतरा में रखा गया। उस समय रामगढ़ जिले के अंतर्गत पलामू, नागपुर, चकिया के कुछ हिस्से तथा वर्तमान हजारीबाग जिले का पूरा भाग था। हजारीबाग शहर वस्तुतः तब वहां नहीं था और वहां चतरा ही प्रधान शहर था। १७७२ ई० में उसने रामगढ़ के जैसे ही अधीनस्थ करने की भावना से पलामू पर भी चढ़ाई की। रामगढ़ के राजा मुकुन्द सिंह कप्तान कामक की आंखों का कांटा बने हुए थे। वे अंग्रेजों की नजरों में कठिन समस्या के रूप में थे तथा उन पर फ्रांसीसियों को आश्रय देने का भी शक किया जाता था। उन्होंने पलामू के राजा के विरुद्ध की गई लड़ाई में कोई मदद नहीं की। अतः मुकुन्द सिंह और तेज सिंह के उत्तराधिकार की लड़ाई में अंग्रेजों ने तेज सिंह की मदद की। लेफ्टिनेंट गोडार्ड ने रामगढ़ पर हमला किया और मुकुन्द सिंह को परास्त कर तेज सिंह को पहले राजा नहीं बना कर मुस्ताजिर बनाया गया। तेज सिंह ने अपनी राजधानी इचाक में बनायी।

१७८० ई० में कप्तान कामक की जगह श्री चैपमैन आए, जो वस्तुतः प्रथम नागरिक प्रशासक थे। रामगढ़, केन्दी, कुन्दा और खरगडीहा (जो आजकल मिलकर हजारीबाग

के नाम से प्रसिद्ध हैं), सम्पूर्ण पलामू खरगडीहा से पूरब चकाई, रामगढ़ से पूरब पचेत और शेरघाटी के पास के क्षेत्र मिलकर विजित प्रांत (Conquered Provinces) कहला। वर्तमान रांची जिले को छोटानागपुर के करद महाल (Tributary Mahal) के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। श्री चैंपमैन जो एक ही साथ न्यायाधीश, शासक और राजस्व समाहर्त्ता सब कुछ थे, अपनी कचहरी शेरघाटी (अभी गया जिले में) और चतरा (अभी हजारीबाग जिले में) में लगाते थे। नवनिर्मित हजारीबाग का "रामगढ़ बटालियन" जो यूरोपियन सेनापतियों से परिचालित था, उनके मातहत में रख दिया गया।

बृटिश शासन का प्रथम अध्याय

बृटिश शासन का प्रथम प्रयास मात्र फौजी प्रदर्शन की विशेषताओं के फलस्वरूप, अन्दरूनी व्यवस्था के ख्याल से असफल ही रहा। यहां की जनता और उसके आचार-विचार की उपेक्षा कर के, प्रशासनिक रूप रेखा कायम करने की कोशिश की गई। अधिकारियों ने जनमत से अवगत होना कभी जरूरी नहीं समझा। दूरस्थ बंगाल तथा बिहार के सरकारी कर्मचारीगण ने भी, जो वहां की जनता, रस्म और रिवाज आदि से बिलकुल अनभिज्ञ थे, वहां के आदिवासियों को पूर्ण असन्तुष्ट ही कर दिया। तामार में अनेकों बार विद्रोह हुआ, किन्तु निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। १८११ ई० में मुंडा और ओरांव लोगों ने भी सिर उठाया और अन्ततः उनका क्षेत्र रामगढ़ जिला के अन्तर्गत कर के सीधे ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन में कर लिया गया। १८३१ ई० में कोलों ने भी विद्रोह किया। इसका असर कोई खास तौर से हजारीबाग पर नहीं होते हुए भी वहां के अधिकारियों को सतर्क कर दिया गया। लेकिन कोल विद्रोह के दमन के पश्चात शासन-प्रणाली में भी परिवर्तन हुआ। १८३३ ई० के १३वें नियम के अनुसार रामगढ़ के परगने, खड़गडीहा, केंदी और कुंडा जो वर्तमान जिले के क्षेत्र को आवृत करते हैं, दक्खिन-पच्छिम सीमान्त एजेंसी (South-West Frontier Agency) में शामिल किये गये तथा उन्हें मिलाकर हजारीबाग अनुमंडल बनाया गया। हजारीबाग को प्रशासकीय मुख्यालय बनाया गया। हजारीबाग के मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी को गवर्नर जेनरल के एजेंट के प्रधान सहायक का नाम दिया गया और रामगढ़ मंडल तथा जंगल महाल जिसमें मिदनापुर का ढालभूमि राज्य भी था, इन सबों का भार उसी पर छोड़ दिया गया। राजस्व बोर्ड के सदस्य श्री रिकेट्स के पर्यवेक्षन के अधार पर शासन-प्रणाली में फिर परिवर्तन लाया गया। १८५४ की २०वीं धारा के अनुसार दक्खिन-पश्चिम सीमांत एजेंसी को पुनः चुटिया (छोटा) नागपुर नामकरण किया गया और इसका शासन बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन अविनियम (Non-regulation) प्रांत के रूप में होने लगा।

हजारीबाग में संथालियों का विद्रोह

१८५५-५६ में संथालियों का एक प्रचंड विप्लव हुआ। लुबिया मांझी, बैरु मांझी तथा अर्जुन मांझी ने इसका नेतृत्व किया। संथालियों में असन्तोष का आभास बहुत पहले से ही मिलता था। १५ जनवरी १८५५ के पत्र में छोटानागपुर के आयुक्त ने हजारीबाग के प्रधान सहायक आयुक्त को लिखा कि वे संथालियों पर लगाये गये प्रतिबंधों से सहमत थे और यह भी आदेश दिया कि संथाली कमारों का, बिना अधिकारियों की इजाजत से, तीर या दूसरे इसी तरह के औजार बनाना रोक दिया जाय। इस उद्घोषणा की अवहेलना करने वाले को शीघ्र दंड देने की व्यवस्था भी की गई।

इस तरह संथाली लुहारों का तीर और लड़ाई के दूसरे औजारों का बनाना स बात का द्योतक है कि विद्रोह की लहर बहुत विस्तृत रूप में फैल चुकी थी ।

फौजी कानून (Martial Law); आतंकवाद

वर्तमान संथाल परगने के पूरे क्षेत्र में फौजी कानून लागू कर दिया और इस कानून को पूरे हजारीबाग में जारी कर दिया गया । १८५६ ई० के अप्रील महीने में हजारीबाग मंडल में संथालियों के विद्रोह ने विस्तृत रूप धारण किया । हजारीबाग के कारागार पर भयानक आक्रमण किया गया और इसमें आग लगा दी गई । बैलगाड़ियों को काफी रोक-थाम किया जाता था । १८५६ के १६ मार्च को सिम्पसन ने बूढ़ी के अधिकारियों को सूचित किया कि हजारीबाग मंडल के संथालियों को भागलपुर तथा वीरभूम के संथालियों से किसी तरह का सम्पर्क नहीं होना चाहिये । वस्तुतः उसने सैनिक टुकड़ियों को खास स्थानों पर रखकर हजारीबाग मंडल के संथाली क्षेत्र को बिलकुल घेर लेने की कोशिश की । बूढ़ी के यूरोपियन उपायुक्त को संथाली आन्दोलन पर खास नजर रखने के लिए कहा गया । सर्वत्र संथालियों की गिरफ्तारी होने लगी और आतंक का साम्राज्य दिखाई देने लगा ।

जमींदारों की गुप्त सहानुभूति संथालियों के साथ दिखाई पड़ती थी । रामगढ़ के राजा तथा अन्य छोटे जमींदारों को कड़ी चेतावनी दी गई और संथालियों को दबाने के लिए उन्हें मदद देने को कहा गया । राजा और जमींदारों के नाम परवाने जारी किये गये । रामगढ़ के राजा ने दमन कार्य में संथालियों के विरुद्ध अंग्रेजों की मदद की जिसके लिए उसकी प्रशंसा बाद के पत्राचारों में की गई ।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है संथालियों को दबाने के लिए बड़े निष्ठुर तरीके अपनाए गये । उनका पीछा किया जाता था और घायल कर के मार डाला जाता था । उन्हें गिरफ्तार किया जाता था और कारागार में कभी-कभी बेड़ियों में भी जकड़ दिया जाता था । स्त्रियां भी ऐसी सजा से मुक्त नहीं थीं । संथाली बस्तियां जला दी जाती थीं । रूपू मांझी के समान अनेक नेताओं के घर भी जला दिये जाते थे । प्राचीन पत्राचार प्रमाण हैं कि उन्हें अमानुषिक कठोर दंड दिया जाता था । उनके एक नेता लट्टाई मांझी को सश्रम बेड़ी युक्त जेल की सजा १४ वर्षों के लिये हुई थी ।

पष्ठभूमि

संथाल परगने में संथाल-हूल के समान ही इसी तरह के मिलते जुलते कारणों से हजारीबाग में भी संथाल आन्दोलन हुआ । ऐसा आभास मिलता है कि सभी मंडलों के संथालियों की गतिविधि बहुत कुछ एक सी थी । किन्तु संथाली आन्दोलन दब जाने के पश्चात् संथाल परगने तथा हजारीबाग के प्रशासकों ने अपने क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न तरीके अपनाये । हजारीबाग में कोई खास सुविधाजनक परिवर्त्तन नहीं किया गया, लेकिन संथाल परगने को एक अलग मंडल बनाकर वहां कई सुधार के कार्य किये गये । जिसका परिणाम यह हुआ कि १८५७ के गदर में जहां संथाल परगने के संथालियों ने अपनी अन्यमनस्कता दिखलाई वहीं हजारीबाग के संथाली विद्रोह में सम्मिलित होकर अपना असंतोष प्रकट किये । गत हजारीबाग जिला विवरणिका (लिस्ट १६१७) में उल्लेख मिलता है कि "स्थानीय अधिकारी वर्ग की कमजोरी को दृष्टिगत् रखते हुए, स्वाभाविक रूप से ही

संथाली लोगों ने महाजनों और अन्य शोषक तत्वों के चंगुल से छुटकारा पाने की कोशिश की। भयंकर लूट-पाट के उद्देश्य से झुंड के झुंड संथाली एकत्रित होने लगे। इनके साथ वहां के गुण्डे तथा बदमाश भी शामिल हो गये। बस फिर क्या था? खरगडीहा के गोला और चास (पेतरवार थाना), रामगढ़ स्थित कूजू तथा बगोदर के नजदीक झरपों आदि जगहों में कुछ लूट-पाट किये गये। मण्डू में तीन स्थानीय जमींदारों ने उन्हें खून-खराबी तथा ग्राम जलाने के लिये बहकाया। वे जमींदार आखिर में पकड़े गये और फांसी पर लटका दिये गये। दंड देने के उद्देश्य से एक छोटा सिक्ख फौजों का जत्था गोला में भेजा गया जहां इनके जाते ही सारी उत्तेजना शांत हो गई। उपद्रव छिटफुट जगहों में ही हुआ। संथालों की कोई सम्मिलित योजना नहीं थी। अतः विद्रोह दब जाने के बाद कोई खास बन्दोबस्त आवश्यक नहीं समझा गया। बल्कि उन्हीं लोगों में से फौजों के लिये लोग लिये जाने लगे और करीब ५०० आदमी इस तरह लिये गये। इसी तरह जिले के उत्तरी भाग में सिपाही विद्रोह की खबर से भुइया टिकैतों में कुछ सनसनी फैली जिन्होंने अपनी जमीन को नये क्रय-कर्त्ताओं से छीन लेनी चाही। इस काम के लिये उन्हें रैयतों की भी कुछ सम्मति प्राप्त थी"। लेकिन संथालियों को कुचलने के लिये घोषणा कर दी गई कि "विप्लव का कहीं भी किसी उपाय से दमन होना चाहिये। लुटेरों के दल पर आक्रमण कर दिया जाय तथा यथासंभव लुटेरे पकड़ लिये जायं और उनका शीघ्रातिशीघ्र जांच किया जाय"।

कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के न्याय विभाग के २ जनवरी, १८५७ के पत्र में लिखा है:—

"कप्तान एलेक्जेन्डर (जो ट्वीडी से बोर्वी प्रमंडल का भार लिये थे) का कार्य विवरण जो उसके संथाली अत्याचारों के दमन कार्य का तथा सफलतापूर्वक खर्गडीह जिले के विद्रोही नेताओं की गिरफ्तारी का स्पष्टीकरण करता है, पूर्ण संतोषप्रद है और हमलोग यह देख कर खुश हैं कि लेफ्टिनेन्ट थौम्पसन तथा रीड ने उसको सक्रिय सहयोग दिया। डोरन्डा के टिकैत का आचरण भी हमें संतोष प्रदान करता है कि उसने संथाली नेता को अपने १७ अनुयायियों के साथ समर्पित कर दिया। (मिलिटरी प्रोसीडिंग्स, दिनांक १७वीं अप्रील, १८५७, संख्या ४६५-६६)। १७वीं सितम्बर, १८५७ के एक पत्र में सिम्पसन ने आयुक्त डाल्टन को लिखा कि सशस्त्र संथाली, ७६ सिक्खों की एक टुकड़ी से, जिसमें १० रामगढ़ बटालियन के लोग भी है, भिड़े हुए हैं।

१८५७ का आन्दोलन—पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक घटनाक्रम की अवहेलना करने के फलस्वरूप १८५७ के आन्दोलन ने अंग्रेजों को अचम्भित कर दिया। १८३२ का कोल विद्रोह, हजारीबाग सीमा पर तामर में मुण्डा विप्लव तथा संथाल परगने या हजारीबाग के संथाल-हूल, आदि घटनाओं से अंग्रेजों ने बहुत कुछ शिक्षा नहीं ली थी।

रामगढ़ बटालियन

हजारीबाग में रामगढ़ बटालियन के ८वीं नेटिभ इन्फैन्ट्री की दो टुकड़ियों ने ३० जुलाई को, दूसरे दिन शाम से, गदर प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उप-आयुक्त, कप्तान सिम्पसन को अपने एक नौकर से गदर प्रारंभ होने के निश्चित घंटे की खबर भी मिल गई। किन्तु तब उसके लिये भागने के सिवा और कोई चारा नहीं रहा। कप्तान सिम्पसन, डा० डेलप्रैट और श्री लीवर्ट सीतागढ़ से पैदल ही भागते हुए रात को इचाक पहुंचे।

वहां एक मठ के ब्राह्मणों ने उनकी बड़ी आवभगत की। वहां उन्हें घोड़े दिये गये और कुछ देर के आराम के पश्चात् वे बगोदर की ओर बढ़े।

आसन्न विद्रोह की खबर जब रांची के आयुक्त कप्तान डाल्टन को मिली, तो उसने अतिशीघ्र रामगढ़ लाइट इन्फैन्ट्री की एक टुकड़ी, कुछ घुड़सवार और दो बन्दूकों के साथ लेफ्टिनेंट ग्रहम को हजारीबाग के फौजों से हथियार छीनने के लिये भेजी। रास्ते में उसके साथ के फौजों ने भी बगावत कर दी और वे सिपाही शीघ्रता से बादम तथा पुरानी रांची रोड होते हुए रांची की ओर लौटे।*

सुदूर व्यापी विप्लव

कप्तान डाल्टन ने रांची को बचाना असंभव समझ कर सभी यूरोपियनों को रांची से हजारीबाग होते हुए बगोदर जाने की आज्ञा दी। कुछ हफ्तों तक अवशेष शासन कार्य बगोदर से ही चलता रहा। लोहरदगा प्रमंडल के वरीय सहायक आयुक्त मिस्टर जे० एस० डेभिस ने कुछ समय के लिये ४ अगस्त १८५७ को हजारीबाग प्रमंडल का अस्थायी भार लिया तथा ७वीं अगस्त को कप्तान डाल्टन को सूचित किया कि ३१वीं जुलाई को ही हजारीबाग की सेना ने विद्रोह कर दिया था और वे अब रांची की ओर अग्रसर हो रहे थे। डेभिस ने सरकारी खजाने को बिल्कुल खाली और अभिलेखों को ध्वस्त पाया। विद्रोहियों ने खजाने को लूट लिया था। वहां के पेनिटेंरियन जेल के अस्पताल पर भी आक्रमण किया गया और वहां के डाक्टरों और दवाओं को लेकर चल दिये। कैदी सब भाग निकले। फिर भी डाल्टन ने ट्रे के सिक्खों की एक टुकड़ी की मदद से हजारीबाग को पुनः कब्जे में किया और वहां व्यवस्था कायम की।

चतरा की लड़ाई

विद्रोही एक महीने से अधिक रांची में रुके रहे और तब शाहाबाद जिले के कुंवर सिंह से मिलने के लिये उत्तर की ओर बढ़े। ये सब जब चतरा में थे, तो २ अक्तूबर १८५७ को मेजर इंगलिश ने उनपर आक्रमण कर उन्हें हराया। उनके बन्दूक और युद्ध सामग्रियों को जब्त कर लिया गया। बागियों में से १५० मार डाले गये और शेष शेरघाटी की ओर भागकर छिन्न-भिन्न हो गये। इस चतरा की विजय ने वस्तुतः हजारीबाग जिले के आन्दोलन को बिल्कुल दबा दिया।

चतरा की लड़ाई बड़ी ही रोमांचकारी थी। उभय पक्षों में भयंकर रक्तपात हुआ। चतरा की लड़ाई के बारे में निम्नलिखित चार पत्र काफी महत्वपूर्ण हैं—

पत्र पहला

संख्या ८३-८

शेरघाटी से लेफ्टिनेन्ट रटॅन्टन के द्वारा विद्युत् दूरलेख (Electric Telegraph) से भेजा हुआ संवाद, शनिवार, ३ अक्तूबर, नौ बजकर २३ मिनट रात का समय—

कलकत्ता,

भारत सरकार के सचिव को प्रेषित—

मेजर इंगलिश से निम्नलिखित संवाद प्राप्त हुए हैं। मुझे कल रामगढ़ बटालियन से विकट युद्ध करना पड़ा तथा उनके चार दुरुस्त बन्दूक और ४५ गाड़ी भरी हुई युद्ध

*लेफ्टिनेंट गवर्नर का पत्र (मिलिटरी कन्सल्टेशन, दिनांक ४ सितम्बर, १८५७, संख्या ३५६-५६ इस परिच्छेद से अनुलग्नित है)।

सामग्रियां मैंने जब्त कर ली। मेरे साथ के ४५ आदमी मारे गये तथा घायल हुए और अवशेष सेनाओं को लेकर मैं जंगली राहों से बाहर निकलने में अपने को असमर्थ पा रहा हूं। जंगलों में तितर-बितर विद्रोही सेनाओं और लूटेरों के भरे रहने के कारण मुझे आपसे एक सौ आदमियों की मदद मांगनी पड़ती है। अगर ऐसा संभव हो सके तो कलकत्ता दूरलेख के द्वारा खबर मिल जानी चाहिये। मेरे पास फौज में केवल २५ सिक्ख यहां हैं। क्या मैं यूरोपियनों की एक टुकड़ी को रोक कर उनके साथ, युद्ध सामग्री लाने के लिये मदद करने के रूप में चतरा की ओर बढ़ूं ?

कलकत्ता,
विद्युत् दूरलेख कार्यालय,
४ अक्तूबर १८५७
भेजा हुआ, ८-२५।

ह० एल० ई० डब्ल्यू० ओ० "ब्रेन",
तृतीय सहायक प्रभारी।

पत्र दूसरा

संख्या ८६

विद्युत् दूरलेख द्वारा प्राप्त समाचार।

चतरा से बूढ़ी होकर, ४ अक्तूबर, ८-३० सुबह मेजर इंगलिश से,

कलकत्ते को,

सेनाध्यक्ष मैन्सफील्ड के पास,

मैंने आज नौ बजे सुबह रामगढ़ बटालियन पर धावा किया। अपना पड़ाव मैंने ठीक उनके शहर के पश्चिम तरफ के पड़ाव के बाद ही रक्खा। उनके बन्दूकों और पूरे शिविर पर अधिकार कर लिया। उनकी चार बन्दूकें, युद्ध सामग्रियों से लदी गाड़ियां ले ली और साथ ही दस हाथी भी छीन ली। हमारी तरफ भी नुकसान बहुत हुआ है। हिज मैजेस्टी के ५३वीं फौजों से ३६ तथा सिक्खों से ६ मरे तथा घायल हुए। सेना के अधिकारी सभी सुरक्षित हैं और फौजों ने अपने अधिकारियों के साथ अच्छा कर्त्तव्य निभाया है।

कलकत्ता,
विद्युत् दूरलेख कार्यालय,
४ अक्तूबर, १८५७,
६ बजे रात।

ह० एल० ई० डब्ल्यू० ओ० "`न",
तृतीय सहायक प्रभारी।

भारत सरकार के सचिव सेना विभाग।

पत्र तीसरा

संख्या १५२

विद्युत् दूरलेख कार्यालय द्वारा प्राप्त समाचार, चतरा से बूढ़ी होकर, ७वीं अक्तूबर ८ बजकर ३० मिनट, मेजर इंगलिश के पास से, सुबह, कलकत्ता को,
[redacted]
सेनाध्यक्ष मैन्सफिल्ड के नाम से प्रेषित,

मैंने अपना शिविर शहर के पूरब की ओर एक सुन्दर खुले मैदान में स्थिर किया है। विद्रोही अब तितर-बितर हो गये हैं। मेजर सिम्पसन ने कल्ह दुश्मनों के सत्तर आदमियों को गड़वा डाला है और यह भी खबर है कि विद्रोहियों के एक सौ से अधिक आदमी जंगलों में घायल पड़े हैं। दो सूबेदारों को कल्ह सुबह यहां लाकर फांसी पर चढ़ा दिया गया। साथ में घायलों का ख्याल करके अब मैं शनैः शनैः हजारीबाग की ओर प्रस्थान करूंगा। घायलों, अस्त्र-शस्त्रों, बन्दूकों और गाड़ियों के साथ जंगल की राह से बढ़ना मेरे लिये कुछ दुष्कर है, अतः एक सौ आदमियों के आ जाने से बड़ी मदद मिलती। बन्दूकों को कई दलदलों से होकर घसीटते हुए ले जाना होगा। सड़कों की हालत खराब ही है। शीघ्रातिशीघ्र अस्पताल के लिये बिस्तर और कपड़े जो ३० रोगियों के लायक हों और दो पीपे शराब भेज दिये जायं। मेजर सिम्पसन को कुछ खजाने हवाले किये गये हैं।

कलकत्ता,
विद्युत् दूरभाष कार्यालय,
७ अक्तूबर, १८५७।

ह० एल० ई० डब्लू ओ० "ब्रेन",
प्रो० मुख्य सहायक प्रभारी।

सेवा में,

कप्तान ई० एफ० डाल्टन,

स्थानापन्न आयुक्त,

छोटानागपुर।

महाशय,

मेरी अर्द्ध-राजकीय टिप्पणियों में, जो गत् ३०,१ और २ तारीख की है, बताया गया है कि सेनानायक इंगलिश के मातहत एक सेना चतरा भेजी गयी है और किस तरह दूसरी तारीख को रामगढ़ बटालियन के विद्रोहियों को परास्त किया गया, उनकी छः पाउन्ड की चार बन्दूकों को जब्त किया गया, आदि बातों का भी उसमें जिक्र किया गया है।

२। विद्रोहियों ने अपना एक सुदृढ़ शिविर चतरा के पश्चिमी भाग में बना लिया था। उनके सामने पूरब की ओर पूरा शहर पड़ता था, जिसकी तंग गलियों से होकर गुजरना मेरी छोटी फौजी टुकड़ी के लिये खतरे से खाली नहीं थी। शहर में प्रवेश करने वाली सड़क पर एक पुल है जिसके उत्तरी भाग में थाने के गहरे

खेत हैं, जिधर से होकर तेजी से निकलना मुश्किल है। मेजर स्मिथ के सरसरी तौर पर लिये गये शहर के नक्शों को देखकर मेजर इंगलिश ने यह तय किया कि घूमकर दक्खिन की ओर शहर पर धावा किया जाय जिससे विद्रोहियों से सीधा मुठभेड़ पुराने जेल के पास हो........आदि।

३। जेल से पश्चिम सतर्कता से बढ़ते हुए कुछ ऊंचाई पर विद्रोही नजर आये। मेजर इंगलिश ने उपर्युक्त सिपाहियों को शीघ्रता पूर्वक उत्तर की ओर संकीर्ण धान के खेतों से होकर आक्रमण करने के लिये भेजा। युद्ध छिड़ गया। सर्व प्रथम ६०० गज की दूरी से "रानफिल्ड राइफल" से गोले फेंके गये और अनुमान किया गया कि उसका असर भी पड़ा। दुश्मनों ने भी इसके जवाब में हमलोगों की ओर गोले फेंके किन्तु योरोपियन और सिक्ख सेना का मुख्य भाग धान के खेतों को, जिसपर "रा" का निशान था, पहले ही टप चुका था। दैव संयोग से गोलों के द्वारा हमें विशेष नुकसान नहीं हुआ। एक गोले से किसी घोड़े की मृत्यु हो गई जिसपर एक सहायक औषधिक आरूढ़ था। वह नवयुवक था और पैदल ही बढ़ते हुए दस्ते के साथ बहादुरी से चल पड़ा।

४। योरोपियन फौज धान के खेतों को पार कर कुल्लोटी और लियूट नामक ग्रामों के पूरब से होकर गुजरे। अर्ल मेरे साथ सिक्ख सेना का नेतृत्व कर रहा था। हमलोग अपने साथ के आदमियों को लेकर बस्ती से होकर आगे बढ़े। बस्ती के बाहर हमलोगों ने विद्रोहियों को सामने पाया जिनसे हमारे योरोपियन सिपाहियों का घनघोर युद्ध छिड़ा हुआ था।

"बी" निशान के पेड़ों पर से पुरानी जेल की ओर देखा गया कि हमारे आक्रमणकारी दलों के विरुद्ध पिछले हिस्से की ओर विद्रोही भी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। सिक्खों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया और एक कुंज में स्थान बनाकर हमलोगों ने अनवरत् गोले चलाये जिससे उनके कुछ आदमी मरे और घायल भी हुए। मृत व्यक्ति में एक पूर्व का जमादार और एक सिपाही थे जिनके शवों को आगामी सुबह में पहचाना गया। मैंने उन्हें निशाना लगाते भी देखा था।

५। जब सिक्खों ने दक्खिन-पूर्व के आक्रमणों को असफल कर दिया तो बचे खुचे विद्रोही दो अन्य गोले छोड़े जाने वाले जगहों में साथियों से जा मिले। इन्हीं बाकी दोनों जगहों से कुंजों के बीच से गुजरते हुए हमलोगों पर निशाना चलाया जाता था और यहीं हमलोगों के बहुत योरोपियन और सिक्ख सिपाही खेत आये। ऐसा क्रम तबतक चलता रहा जबतक कि लेफ्टिनेन्ट डाउन्ट ने बाम-पार्श्व से तेजी से घुसकर उनकी बन्दूक को जब्त नहीं कर लिया। विद्रोहियों ने बन्दूक चलाना बन्द कर दिया, क्योंकि उनमें से बहुत मारे या घायल हो गये थे। फिर भी कभी-कभी हमारी बढ़ती हुई फौजों के ऊपर गोले चलाये जाते थे जिनसे कुंजों की शाखायें कभी टूट पड़ती थीं या कभी जमीन कुरेद दिया जाता था। हमलोग अगर वृक्षों की आड़ में नहीं होते तो हमारी तरफ जान-माल का खतरा बहुत विशेष होता।

हमारे घायल और मृतक सभी मिलाकर ५६ हैं—४६ यूरोपियन और १० सिक्ख, कुछ योरोपियनों की घावें गहरी हैं तथा कुछ के अंगों को बिल्कुल काटना पड़ेगा।

६। मेजर इंगलिश के मातहत फौजों की बहादूरी, प्रशंसा से परे है। "हर मैजेस्टी" की ५३वीं टुकड़ी बड़ी धैर्य के साथ अपने अधिकारियों की परिचालना में

लड़ी और इसी तरह सिक्खों ने लेफ्टिनेन्ट अर्ल के सेनापतित्व में टक्कर लिया। इस तरह मेजर इंगलिश के सुदृढ़ प्रबन्ध से विजय निश्चित हो गई। हमें सफलता प्राप्त करने में बड़ी क्षति भी हुई, फिर भी इससे बड़े उद्देश्य का पालन हुआ है और मुझे विश्वास है कि सोन से कलकत्ता तक सारे देश में इसके फलस्वरूप अमन नहीं भी कायम हो सके, किन्तु समूचे बिहार में इससे शान्ति का साम्राज्य जरूर स्थापित होगा।

हमलोगों ने अपना शिविर इसी सुबह शहर के पश्चिम दो मील दूर हटा कर लाया है, क्योंकि वहां लड़ाई के शवों की वदबू परेशान करती थी। एक गड्ढे में ३ तारीख को बलवाइयों की ७० लाशें गाड़ी गईं और घायलों की संख्या भी इसी तरह अधिक ही होगी। बहुत से घायलों तथा फरारों को, जिनमें देशी अफसर और अन्य व्यक्ति थे, देहाती पुलिस और ग्रामीण लोगों ने पकड़ कर मेरे पास उपस्थित कर दिया है। लड़ाई बन्द कर देने के बाद विद्रोहियों ने अपने हथियारों को फेंक दिया था जो इकट्ठा करके मेरे पास लाये गये हैं।

७। जयमंगल पाण्डेय और नादिर अली (घायल), जिन्होंने गत २ तारीख के संघर्ष में सेनाओं में सूबेदारों का काम किया था, जंगल में पकड़े गये और मेरे समक्ष लाये गये। इन मुख्य विद्रोहियों का १८५७ की धारा १७ के अनुसार विचार हुआ और मैंने अपने आयुक्त के अधिकार से उनको फांसी की सजा दी। उन्हें फांसी उसी जगह दी गई जहां उन्होंने दो दिनों पहले अंगरेजी फौजों के विरुद्ध प्रबल युद्ध किया था। इन व्यक्तियों की अपराध स्वीकृति कागजात महत्वपूर्ण है और उनकी प्रतियां आपके कार्यालय में भेज दी जायेंगी। इन कागजातों से देखा जा सकता है कि बहुत से जागीरदार, लाल या छोटानागपुर के राजा के संबंधियों ने यद्यपि सिपाही गदर में खुल कर साथ नहीं दिया, फिर भी उससे सहानुभूति जरूर रखते थे। इनमें संभवतः बाबू कुंवर सिंह के जामाता सुलगी के लाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो कुंवर सिंह से पत्राचार भी करते मालूम पड़ते हैं। ऐसा भी आभास मिलता है कि बाबू कुंवर सिंह ने ८वीं रेजिमेन्ट नेटिव इनफेन्ट्री (हजारीबाग में जिसने विद्रोह किया था) के आठ सिपाहियों को सुलगी के लाल पर तैनात कर दिया है और ये सम्मिलित रूप से रामगढ़ लाइट इन्फैन्ट्री के सिपाहियों में गदर की भावना को जमादार माधो सिंह के बदौलत प्रज्वलित करते रहते हैं।

८। मुझे विश्वास करना पड़ता है कि उपरोक्त आठों में से एक आदमी २ तारीख के संघर्ष में मारा गया। विद्रोहियों ने भोजपुर, मुग्गा या बिहार तथा दूसरे हिस्सों से एवं सेवामुक्त सिपाहियों आदि से ही लोगों को बहाल किया था। जिस दिन हमलोग चतरा पहुंचे उसके सुबह में नये रंगरूटों को खाली कारतूसों से शिक्षा दी जा रही थी। हमलोगों के पहुंचने की खबर नहीं रहने तथा युद्ध कला की अनभिज्ञता आदि से वे लोग पूर्ण क्षतिग्रस्त हुए। यहां तक कि हमलोग जब बिल्कुल नजदीक, अनुमानतः मात्र दो बार बन्दूक से फायर की जाने भर की दूरी पर थे, उस वक्त तक उनके कुछ लोग लूट-पाट में व्यस्त थे और वे भागकर प्रायः अपने दल में अब मिल भी नहीं सकते थे। हमलोगों को उन्होंने उसी घर की छत पर से देखा जिसको वे लूटने गये थे।

९। मुझे भय है कि जमादार माधो सिंह भाग निकला है। कुछ लोग कहते हैं कि वह थोड़े सैनिकों को लेकर शहर की ओर गया है जिसका तात्पर्य या तो हमारी गतिविधि का अध्ययन करना हो सकता है या शहर को लूटना। ऐसा मालूम पड़ता है कि "कोरिया" का भोला सिंह बरैल, बगावती सिपाहियों का बड़े जोश से

साथ देता रहा तथा शहर के महाजनों को लूटता रहा, लेकिन हमारे हमले के वक्त वहीं के आदमियों ने कुछ सिपाहियों की मदद से उसे मार डाला।

१०। खबर है कि ठाकुर विश्वनाथ सिंह नागपुर राजा के भूतपूर्व दीवान गणपत राय के साथ युद्ध प्रारम्भ होने के समय ही भाग निकले। दूसरे दिन ठाकुर की पालकी जंगल से मेरे पास लाया गया। बड़कागढ़ के ठाकुरों को भी सन्देह पर पकड़ कर लाया गया और उन्हें लोहरदगा के वरीय सहायक आयुक्त के पास छानबीन के लिये भेज दिया गया।

११। इतने गोले बरामद हुए हैं कि विद्रोहियों के पास दूसरे भागों से भी गोलियां आने का शक होता है। मेरी यह पक्की राय है कि डोरन्डा में आन्दोलन शुरू होने के समय का ब्योरा देखा जाय कि वहां उस वक्त कितनी गोलियां थीं।

१२। हमने पांच बक्सों को मुहरबन्द किया है जिसमें खजाने का अनुमान किया जाता है। उनमें से दो को, भीतर से गोल ताले लगे रहने के कारण तथा उनकी कुंजियों के अभाव में, हमलोगों ने नहीं खोला। दूसरे बक्सों में बहुत से छोटे-छोटे सिक्के तथा पाइयां, पैसे तथा कुछ रुपये थे। एक अफीम का सन्दूक भी मिला है। मेरे अन्दाज से वे सब लोहरदगा खजाने के हैं।

मैं एक बक्से में मुहर लगा हुआ देखता हूं जिसकी जांच हजारीबाग पहुंचने पर सावधानी से होगी और वहीं उसे सरकार के जिम्मे कर दिया जायगा।

१३। मैंने हजारीबाग तक छीने हुए बन्दूक आदि ले जाने के लिये सड़क के निर्माण करने के ख्याल से एक जत्था को आगे भेज दिया है। मेजर इंगलिश का विचार है कि हमलोग आराम से आगे बढ़ें तथा यथासंभव रांची पहुंचकर घायलों को शरण दें।

१४। मुझे उपरोक्त विवरण को पहले ही भेज देना चाहिये था, लेकिन जैसा कि आप भी अनुमान कर सकते हैं, घटना क्रम ही, बहुत कुछ, देर के लिये जिम्मेवार है। युद्ध के बाद करीब पचास घायलों की हिफाजत तथा जब्त किये हुए युद्ध सामग्रियों का परिवहन कुछ आसान काम नहीं था। फिर भी मुझे विश्वास है कि हमारे परिश्रम के फल को देखकर, सरकार स्वीकार करेगी कि हमने अपना कर्त्तव्य पालन किया है।

१५। मैं चतरा का एक छोटा नक्शा तथा विद्रोहियों के स्थानों का ब्योरा भेज रहा हूं जिससे उपरोक्त प्रथम भाग का मतलब स्पष्ट हो जायेगा।

सम्मानपूर्वक, आदि,

ह० जे० सिम्पसन,

प्रधान सहायक आयुक्त, हजारीबाग।

प्रधान सहायक आयुक्त का कार्यालय,
हजारीबाग प्रमंडल,
चित्रा के निकट कालापहाड़ी शिविर,
४ अक्तूबर, १८५७।

चतरा शहर के पश्चिमी हद पर जहां अब नया वन-उपनिवेश बना है, दो कब्र के स्मारक अब भी विद्यमान हैं। यह उपरोक्त महासमर की याद दिलाते हैं। इनमें से एक लोहे के छड़ों से आवेष्ठित है और एक संगमरमर के टुकड़े पर कुछ खुदा हुआ है। दूसरा कब्र सीमेन्ट से पाटा हुआ है और उस पर रेड-क्रौस का चिह्न अंकित है। कब्रों के दक्खिन की ओर एक तालाब है और पश्चिम की ओर उप कारागार का घेरा। किंवदंती कुछ इस तरह की है कि इसी पोखर के किनारे एक आम के पेड़ पर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले फौजी तथा फौजी आदमियों को फांसी पर चढ़ाया गया था। फांसी की शवों को इसी तालाब में फेंक दिया गया था। इस तालाब को अभी भी फसियाही या भूतहा तालाब कहकर पुकारा जाता है।

आन्दोलन की रूपरेखा

बहुत से तत्कालीन पत्र हजारीबाग मंडल-अभिलेखागार में अभी प्राप्त हैं। ऐसे कुछ पत्र हजारीबाग ओल्ड रेकर्ड्स [विवरणिका पुनरीक्षण शाखा प्रकाशन, १९५७] में प्रकाशित हुए हैं। ये पत्र १८५७ में हजारीबाग के आन्दोलन का सविस्तार वर्णन करते हैं। प्राचीन अभिलेखों से पता चलता है कि दानापुर तथा हजारीबाग की प्रथम देशी पद सेना (**First Native Infantry**), सिगौली की १२वीं अस्थायी घुड़सवार (**Twelfth Irregular Cavalry**), छोटानागपुर का रामगढ़ बटालियन, आदि फौजों ने विद्रोह किया था। १८५७ की २५वीं धारा के अनुसार अधिकारियों तथा देशी सेनाओं का गदर में भाग लेने के फलस्वरूप सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी और कभी-कभी परीक्षण के बाद सम्पत्ति वापस भी की जाती थी। फोर्ट विलियम से १५ जून १८५९ की न्यायिक अधिसूचना से, १८५९ के अधिनियम ८ के क्षेत्र को विस्तृत किया गया, जिससे नागरिक न्याय के मसविदा को सरल किया जा सके। राजकीय चार्टर (**Royal Charter**) के द्वारा हजारीबाग, लोहरदग्गा, मानभूम और दक्खिन पच्छिम सीमान्त एजेन्सी में न्याय का स्थिर रूप नहीं था अतः इसी को स्थायी रूप देने के लिये उपरोक्त अधिनियम को बढ़ाया गया।

परिपत्र संख्या २३३२, जो बंगाल सरकार के सचिव द्वारा १७ जून, १८५७ को छोटानागपुर प्रमंडल के आयुक्त को भेजा गया, बृटिश शासकों की घबराहट को प्रकाशित करता है। उसमें उल्लेख है कि सभी फकीरों या बेकार घूमने वालों के ऊपर जांच की जाय तथा जो अपने आचरण की उपयुक्ति नहीं सिद्ध कर सकें या कोई सही उद्देश्य नहीं बता सकें उन्हें हिरासत में ले लिया जाय। उसमें यह भी लिखा था कि लाठीधारी आदमियों की पूरी जांच हो क्योंकि ये लोग लाठियों के छेद में गुप्त पत्र लेकर जाते-आते हैं।

अन्य नेतागण

छोटानागपुर प्रमंडल में १८५७ की धारा १४ के अनुसार विचार किये गये मामलों के विवरणों में से निम्नलिखित भी हैं:—

(१) **कुरबन अली तथा बालगोबिन्द शाही को विद्रोह करने तथा अपने को पदशाही राजा घोषित करने के अपराध में कालेपानी की सजा दी**

जाती है और उनकी सम्पत्ति को जब्त कर ल: जाती है। कुरबन अली समाहरणालय विभाग में प्रधान सहायक का जमादार था। विद्रोही रामगढ़ बटालियन के सिपाहियों का ख्याल करके उसने पदशाही राजा की घोषणा की थी। ये लोग एक दूसरा नत्थी खां के साथ थे, जिसको चौदह वर्ष की सजा दी गयी क्योंकि उसने भी विद्रोहियों की नौकरी स्वीकार करके कई जगहों के लूटपाट में साथ दिया था।

(२) टिकैत ओमरांव सिंह, बृजभूषण सिंह, शेख भिखारी, चामा सिंह, सीबू सिंह, रामलाल सिंह और विजय राम सिंह के ऊपर विद्रोह करने तथा घाट बन्द करने के अपराध में कार्रवाई की गयी। टिकैत ओमरांव सिंह और शेख भिखारी को मृत्यु की सजा मिली तथा उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। दूसरे लोग निर्दोष साबित हुए। १८५७ की ८ जनवरी को सजा को कार्यरूप में परिणित किया गया। उनलोगों ने छोटू पालू और चारु घाट को बन्द कर छोटानागपुर से आनेवाले पदाधिकारियों तथा सैनिकों को रोकने की कोशिश की थी। दंड की कार्यान्विति शीघ्र ही की गयी।

(३) सीतम चौधरी को १२ जनवरी १८५८ को दस वर्षों का कठोर सश्रम कारावास और २५० रुपये का अर्थ दंड दिया गया। वह रामगढ़ सेना में बाजार चौधरी था तथा विद्रोह के बाद अधिकारियों के चले जाने पर लेफ्टिनेन्ट रीब्स की २५० रु० की सम्पत्ति को लूटा था।

(४) लोहरदग्गा मंडल के ठाकुर विश्वनाथ साही को १८५८ को प्राणदंड दिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उनके विरुद्ध निम्न-लिखित आक्षेप थे :—

छोटानागपुर का एक प्रमुख जमीन्दार, इस कैदी ने रामगढ़ बटालियन के विद्रोहियों का शुरू से साथ दिया और देशी पदाधिकारियों से कुछ रुपये पाकर घाट को बन्द करवा दिया जिससे सरकारी अधिकारी लोग जिले में वापस नहीं आ सकें। इसके अलावे कैदी ने बागियों को बादशाही तनख्वाह देने का वादा किया तथा कुछ धनी व्यापारियों को पकड़ कर तंग किया और लुटवाया। उसका मतलब था कि वे २५,००० रुपये हाजिर करें जिससे सरकार के विरुद्ध लड़ाई की जा सके। चतरा में रामगढ़ बटालियन के परास्त हो जाने पर कैदी लौटकर छोटानागपुर आया और बड़ी संख्या में लोगों को जमा करके गावों को लूटने लगा तथा बरवा थाने में आग लगा दी। कैदी १,१०० आदमियों का एक दल तैयार कर लोहरदग्गा पर आक्रमण करने के ख्याल से उसके निकट आ पहुंचा जब कि कुछ सैनिकों के साथ लोहरदग्गा में ठहरे हुए प्रधान सहायक ने रात में तेजी से उस पर हमला करके उसको पकड़ लिया और गत १६ अप्रील को उसे न्यायालय से फांसी की सजा मिली।

(५) नागपुर महाराज के भूतपूर्व दीवान, जो कुछ साल पहले बरखास्त कर दिये गये थे, बलवाइयों द्वारा महासेनापति चुने गये और डोरन्डा आये। चतरा में विद्रोहियों की हार हो जाने पर वे छोटानागपुर चले आये और ठाकुर विश्वनाथ शाही के साथ गांवों को लूटने लगे और बरवा में सरकारी थाने में आग लगवा दी। ठाकुर विश्वनाथ शाही के लोहरदग्गा आक्रमण में भी उक्त कैदी सहयोगी था और इसे भी गिरफ्तार किया गया। फैसले के अनुसार इसे २१ अप्रील १८५८ को फांसी की सजा मिली और उसी दिन फांसी दे दी गयी।

(६) एक राजा असमान सिंह का भी अपने साथियों के साथ लूट के अपराध में विचार किया गया लेकिन उसे निर्दोष पाकर छोड़ दिया गया। उसके विरुद्ध कई मामले थे।

(७) विरोहन सिंह एक फरार कैदी था जो ठाकुर विश्वनाथ शाही और गणपत राय से २०० सशस्त्र आदमियों के साथ मिला। इसने खास तौर से बरवा थाना को जलाने में भाग लिया था। लोहरदग्गा के मुख्य सहायक पर हमला करने की योजना बना रहा था। जब विश्वनाथ शाही गिरफ्तार कर लिये गये तो यह कैदी भाग निकला लेकिन कुछ ही देर के बाद पकड़ लिया गया और अपराधी होने के फलस्वरूप ५ जनवरी १८५८ को फांसी पर लटका दिया गया।

ैनिक न्यायालय

रांची शिविर से प्रेषित एक उद्धरण जो १ नवम्बर १८५७ का है तथा जिस पर स्थल सेना के समादेष्टा का हस्ताक्षर है रामगढ़ पद सेना (Ramgarh Light Infantry) के उन सभी सिपाहियों की सूची प्रस्तुत करता है जिन्हें विद्रोह के अपराध में कुछ को ७ वर्षों की तथा कुछ को १४ वर्षों की सजा मिली थी। १८५७ के १४वें अधिनियम के उपबन्धान्तर्गत रांची पैदल सेना (Ranchi Field Force) के समादेष्टा मेजर मैकडोनाल्ड द्वारा आयोजित सैनिक न्यायालय से उक्त आदेशों को जारी किया गया था।

पत्र संख्या ७ जो पहली अक्तूबर १८५७ को पुरुलिया से मानभूमि के प्रधान सहायक आयुक्त द्वारा वरीय सहायक आयुक्त को भेजा गया था, उन प्रधान व्यक्तियों की एक तालिका प्रस्तुत करती है जिन्होंने मानभूमि तथा हजारीबाग मंडलों में जयपुर, कसपाल और गोला परगने में लूटपाट किया था।

पुराने पत्राचारों की उसी पुरानी जिल्द में और भी उद्धृतांश हैं जो मेजर जी० जी० मैकडोनाल्ड , स्थल सेना नायक की अध्यक्षता में आयोजित यूरोपियन साधारण सैनिक न्यायालय की कार्यवाही का वर्णन करता है। हिन्दू और मुसलमान सभी तरह के सिपाहियों की एक लम्बी सूची मिलती है जो रामगढ़ पैदल सेना (Ramgarh Light Infantry) के ६, १, १०, ३, ८, ६ तथा ४थी टुकड़ियों में थे और उन्हें भिन्न-भिन्न अवधि की सजायें मिली थी। उनलोगों की सम्पत्ति को जब्त करने का भी आदेश निकाला गया था।

निष्क्रिय राजभक्त जमींदार

१६ अप्रील १८५८ का ६७वां पत्र, जो भारत सरकार के सचिव को छोटानागपुर के आयुक्त द्वारा लिखा गया है, बताता है कि गरजात महाल के राजा तथा बड़े-बड़े भूमिपति लोग निष्क्रिय रूप से राजभक्त दिखाई देते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अगर वे लोग सक्रिय रूप से सहयोग देते तो उनलोगों का मंडल में अधिकार प्राप्त करने के बाद किसी तरह की अशांति नहीं फैलती। उनलोगों ने कुछ भी नहीं किया, बल्कि संभवतः उनलोगों ने विद्रोहियों की मदद की और उन्हें साहस प्रदान किया। आदिवासी, जिन्होंने लूटपाट करना छोड़ दिया था, इस उथल-पुथल से फायदा उठाने लगे। अपराधियों को पकड़ने के लिये इनाम की घोषणा का असर कामयाब नहीं होता था। एक भी गिरफ्तारी इन लोगों की मदद से नहीं हुई। पहाड़ी क्षेत्रों में बिना किसी की मदद के ही पुलिस या फौज के सिपाही विद्रोहियों को पकड़ पाये। घाटवालों तथा ग्रामीणों ने इस अवसर से स्वार्थ साधन ही किया। एक सुझाव दिया गया था कि पुलिस पद्धति, जिसकी सफलता विभिन्न वर्गों के लोग तथा कर्मचारियों के उत्साह और श्रम पर निर्भर करती है, अंगरेज अफसरों द्वारा परिचालित हो। ऐसा अनुभव किया गया कि हजारीबाग, लोहरदग्गा, मानभूम तथा सिंहभूमि में अंगरेज अधिकारियों के मातहद पुलिस व्यवस्था कायम हो।

राजभक्त जमीन्दार

रामगढ़ के राजा का नाम खास तौर पर राजभक्त जमींदार के रूप में लिया जाता था। १८५८ ई० की पत्र संख्या ६६ (विदेशी संमन्त्रणा—१६ अप्रील, संख्या १८५८, १४—१६) में लिखा है कि राजा शम्भू नाथ सिंह तथा उनका परिवार अंगरेजों का शासन आरम्भ होने के समय से ही पक्का सहायक रहा है। ऐसा उल्लेख है कि १८१३—३३ के कोल विद्रोह तथा गत संथाल विप्लव में रामगढ़ के राजा शान्ति कायम करने तथा सरकारी आदेशों को जारी करने में हरवक्त सहयोग देते रहे। अपने १६ वर्षों के अनुभवों के आधार पर डाल्टन ने उक्त महाराजा तथा उनके पूर्वाधिकारी को दण्डनायक के कार्य सम्पादन में मदद के लिये बड़ी प्रशंसा की और इनके लिये सिफारिश की गयी कि उन्हें एक तलवार और खिल्लत प्रदान की जाय। होसरसरुम के ठाकुर गणपत देव तथा उनके भाई को भी सरकार की मदद करने के लिये बधाई दी गयी।। नाबालिग कुन्डा के राजा दीवान मित्तरजीत सिंह के अभिकर्त्ता (Agent) की भी अभ्यर्थना की गयी।

रामगढ़ के राजा ने अंगरेजों की विशेष मदद की थी ऐसा निम्नलिखित प्रलेख से प्रमाणित होता है। प्रलेख उस वक्त का है जब कुंवर राम नाथ सिंह को महाराजा की पदवी दी गयी थी।

"भारत सरकार राजा शम्भूनाथ सिंह की महत्त्वपूर्ण सेवाओं से, जो उन्होंने विद्रोह के समय की थी, अवगत है। उन्हीं सहायताओं को दृष्टिगत रख कर उन्हें ३,००० रुपये की खिल्लत दी गयी। छोटानागपुर के आयुक्त को जब दूसरे यूरोपियनों के साथ रांची छोड़ने को बाध्य किया गया, और जब वे इस तरह हजारीबाग पहुंचे, तब रामगढ़ राजा उनसे मुलाकात करने मात्र को ही नहीं आये, बल्कि अपने कुछ सिपाहियों को भी उनकी सेवाओं में दे दी और शीघ्र ही फौजों के लिये सवारियों का बन्दोवस्त भी कर दिया। उन्होंने उत्तेजना की लहर को फैलने से भी रोका और अपने राज्य में अमन कायम रखने का भी इन्तजाम किया। उनके उक्त सभी कार्यों में उनके भाई कुंवर रामनाथ सिंह ने बड़ी तत्परता से भाग लिया। इस परिस्थिति में आयुक्त की

सलाह से लेफ्टिनेन्ट गवर्नर जोरदार शब्दों में अभिस्तवन देते हैं कि कुंवर रामनाथ सिंह को महाराजा की पदवी तथा खिल्लत प्रदान की जाय। (Political G. G., जुलाई १८६३, संख्या दो से उद्धृत।)" उक्त सिफारिश मंजूर कर ली गयी और २० जून १८६३ को एलगीन तथा किन्कार्डाइन ने कुंवर रामनाथ सिंह को राजगद्दी पर बैठने के अवसर पर उन्हें महाराजा की पदवी अपनी जिन्दगी भर के लिये दे दी।

२५ सितम्बर १८५७ को ३६५वीं मिलिटरी ओ० सी० में कप्तान डाल्टन ने बंगाल सरकार के सचिव के पास पत्र भेजा कि जमीन्दारों ने रामगढ़ के विद्रोही दल का किस तरह विरोध किया तथा उन्हें टीकोघाट से आगे नहीं बढ़ने दिया।

प्रतिफल

हजारीबाग के प्रधान सहायक को १८५७ के अधिनियम १७ की धारा २ के अनुसार यह अधिकार दिया गया कि वे विद्रोह तथा उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में जहां-कहीं भी अपराधों का न्याय करेंगे। इस अधिनियम के अनुसार प्रधान सहायक को अधिकार मिला कि गदर या उपद्रव से सम्बद्ध व्यक्तियों को सश्रम, आजीवन या किसी खास अवधि की कैद के रूप में सजा दे सकते हैं। विद्रोह दमन हो जाने तथा सिपाहियों को कैद की सजा देने के बाद भी शान्ति का साम्राज्य नहीं हो सका। अपने ७ मई १८५८ के एक पत्र में प्रधान सहायक आयुक्त सिम्पसन ने, बंगाल सरकार के महासचिव, बकलेंड को लिखा कि उसके ख्याल से हजारीबाग मंडल में १८५८ की १२वीं धारा का लागू रहना उपयुक्त था, क्योंकि वहां के जेल में १८५७ के गदर से संबद्ध बहुत से कैदी अभी भी मौजूद थे। उसने यह भी लिखा कि उक्त धारा के लागू रहने से छोटे-छोटे मामलों का फैसला भी कम समय में हो जाया करता था। सिम्पसन के मुताबिक आन्दोलन को नियंत्रित करने के सख्त तरीके जो काम में लाये गये, उनका असर इतना जरूर हुआ कि फिलहाल ठगी, चोरी, और इस तरह के अपराध लुप्तप्राय हो गये।

सिम्पसन का एक दूसरा विवरण १८ अगस्त १८५८ का है, जिसमें वर्णन है, कि विद्रोहियों के द्वारा जब ३० जुलाई, १८५७ को गदर प्रारम्भ किया गया था, तो उन्होंने हजारीबाग कार्यालय के फौजदारी, दीवानी और राजस्व संबंधी कागजात या अभिलेखों को जहां तहां फेंक दिये थे तथा कुछ विनष्ट कर दिये थे। अतः कार्यालय के न्याय सम्बन्धी अभिलेखों को ठीक करने और उनका वर्गीकरण करने के लिये अतिरिक्त मुहरिरों की बहाली की गयी। १९ अक्टूबर १८५७ को हजारीबाग के समाहरणालय में नकद प्रतिभूतियों का विवरण तैयार करने की कोशिश की गयी तथा ज्ञात हुआ कि खजाने में ३,८४५-१०-५½ पा० थे। ४६ गोले से लदी गाड़ियाँ रामगढ़ पद सेना (Ramgarh Light Infantry) के विद्रोहियों से छीनी गयी थी। दूसरे पत्र में उल्लेख मिलता है कि चार, ६ पाउन्ड की बन्दूकें भी जब्त की गयीं। मेजर ईंगलीश को हजारीबाग में रोक रक्खा गया जिससे किसी आक्रमण के वक्त वह अपने सिक्ख सिपाहियों के साथ काम आ सकें।

लूट-पाट जोरों पर था। यहां तक कि धर्म प्रचारक और श्री लीवर्ट, एक जर्मन सज्जन, जो हजारीबाग के नजदीक सीतागढ़ में कौफी पैदा करते थे, इन लोगों को भी नहीं छोड़ा गया। रामगढ़ लाइट इन्फैन्ट्री के बगावतियों को पुनः पकड़ने का आयोजन किया गया। समय-समय पर इस तरह पकड़े गये कई व्यक्तियों के नाम पुराने पत्राचार में मिलते हैं। अर्जुन संथाल तथा रामबनी मांझी नामक दो संथाल नायकों को पकड़ा गया

और २१ नवम्बर १८५७ को हजारीबाग भेज दिया गया। श्री सिम्पसन ने, जो हजारीबाग में प्रधान सहायक था, अपनी व्यक्तिगत क्षति के बारे में लिखा कि वह करीब ६-७ हजार के लगभग की थी। उसके घर में आग लगा दी गयी और सारा समान विध्वस्त कर दिया गया था। आम तौर पर यह घोषणा कर दी गयी कि विद्रोही को पकड़ने वालों को दस रुपये पुरस्कार दिये जायेंगे।

ऐतिहासिक तथ्यहीनता

१९१७ ई० में प्रकाशित हजारीबाग जिला विवरणिका में लिस्टर ने बन्दोबस्ती विवरण ((Settlement Report) से दो कन्डिकाओं को उद्धृत किया है तथा उसका समर्थन भी किया है।

उद्धृतांश निम्नलिखित हैं:—

"छोटानागपुर का सिपाही-विद्रोह हजारीबाग में ही प्रारम्भ हो कर वहीं खत्म भी हुआ। अगस्त, १८५७ के आरम्भ में ही रामगढ़ बटालियन की हजारीबाग शाखा जिसमें ८वीं रेजिमेंट के दो दल थे, बगावत कर दी। इसकी खबर रांची भेजी गयी जहां से रामगढ़ पैदल सेना ((Ramgarh Light Infantry) के एक दस्ते को लेकर लेफ्टिनेन्ट ग्राहम को विद्रोहियों से हथियार रखवाने के लिये भेजा गया। उसकी टुकड़ी रास्ते में स्वयं विद्रोह कर उठी और रांची की ओर जाने वाली हजारीबाग की विद्रोही सेना से वर्मो में जा मिली। सम्मिलित सेना को रांची की ओर अग्रसर होते देखकर तथा बचे हुए डोरन्डा की फौजों को भी विश्वस्त नहीं समझकर, आयुक्त कप्तान डाल्टन ने रामगढ़ रोड से होकर हजारीबाग की ओर प्रस्थान कर दिया। हजारीबाग होते हुए वह बगोदर में जाकर ठहरा, जहां ग्रैन्ड ट्रंक रोड से आती हुई फौजों की कुछ मदद मिलने की आशा थी। फिर वहां ज्यों ही रैट्रे के सिक्ख सेनाओं का एक जत्था उसके हाथों में आया, वह हजारीबाग को पुनः अपने कब्जे में कर लिया तथा वहीं से विद्रोहियों की गति विधि का ख्याल रखने लगा। विद्रोही जत्थे को हजारीबाग में तो बिल्कुल नहीं किन्तु रांची में कुछ हद तक सहयोग मिला। रांची में वे लोग एक महीने से भी अधिक रहे और तब पच्छिम की ओर कुंवर सिंह की सेना से मिलने के लिये रोहतास गढ़ की ओर बढ़े। दो घाटों पर राजभक्त जमींदारों द्वारा उनका विरोध किया गया, लेकिन अपनी तोपों से घेरा तोड़ कर वे पलामू में चन्दवा और बालूमठ होते हुए चतरा पहुंचे। वहां वे लूट पाट में व्यस्त थे कि अचानक ३२० सिपाहियों की एक छोटी टुकड़ी ने उन पर आक्रमण कर अचम्भित कर दिया। उन्हें हराकर उनकी बन्दूकें तथा युद्ध-सामग्रियां जब्त कर ली गयीं। उनमें से १५० मारे गये और बचे-खुचे लोग शेरघाटी की ओर भागकर तितर-बितर हो गये।

यद्यपि हजारीबाग के विद्रोहियों के साथ कुछ भी सहानुभति नहीं थी, फिर भी स्वाभाविक रूप से ही संथालियों ने अधिकारियों की कमजोरी महसूस कर महाजनों तथा अन्य शोषक तत्वों से निबटना चाहा। लूट-पाट करने के ख्याल से बड़ी संख्या में संथाली झुंड के झुंड इकट्ठा होने लगे। स्थानीय दुराचारियों ने मिलकर आग में घी का काम किया। बस क्या था? खरगडीहा के गोला और चास (पेतरवार थाना) के बीच रामगढ़ रोड पर स्थित कुजू और बगोदर के नजदीक झरपो आदि जगहों में लटपाट मचाया गया। मण्डू में स्थानीय तीन जमींदारों के बहकाने पर गांव में खून खराबी की गई और लूटा गया। उक्त तीनों जमीन्दारों को अन्त में पकड़ लिया गया तथा उन्हें फांसी की सजा मिली। सिक्खों का एक छोटा-सा दल सजा देने के लिये गोला भेजा गया और अशान्ति बिलकुल लुप्त प्राय हो गई। आन्दोलन आकस्मिक तथा छिट-फुट तौर पर था।

सम्पूर्ण संथालों का सम्मिलित आयोजन नहीं था अतः दमन के बाद उसके विरुद्ध कोई खास कदम नहीं उठाया गया। बल्कि कुछ ही दिनों बाद यह तय किया गया कि कोल और संथाल लोगों को सशस्त्र सेना में बहाल किया जाय तथा इसी आधार पर ५०० आदिवासियों की एक सूची तैयार करके उन्हें उक्त कार्य में लगा दिया गया। इसी तरह जिले के उत्तरी क्षेत्रों में सिपाही गदर की खबर से सनसनी फैली, और भुइया टिकैतों ने उपयुक्त अवसर समझ कर अपने छीने हुए जमीनों पर नये खरीदारों के विरुद्ध कब्जा करना चाहा। इस काम के लिये उन्हें रैयतों की सम्मति भी कुछ मिली"।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर ऐसा कहना कि छोटानागपुर का आन्दोलन हजारीबाग में ही शुरू होकर वहीं खत्म हो गया, कुछ-कुछ ऐतिहासिक तौर पर असत्य-सा आभासित होता है। ऐसा कहना भी ठीक नहीं होगा कि विद्रोहियों को हजारीबाग तथा रांची में कोई भी सहयोग नहीं मिला। संथालियों को हजारों की तायदाद में विप्लव में भाग लेते देख कर तथा दुःख और मृत्यु दण्ड तक साहसपूर्वक स्वीकार करते देखकर ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि वे मात्र रुपये लूटने के ख्याल से उत्तेजित थे तथा जमींदारों के बहकावे में आकर खून और लूट-पाट करते थे। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना मुश्किल है कि आन्दोलन छिटपुट ढंग से आकस्मिक तौर पर हुआ तथा संथालियों में इसके लिये संगठन तथा सम्मिलित आयोजन नहीं था। उपरोक्त उद्धृत तथ्यों से स्पष्ट होता है कि हजारीबाग जिले में सिपाही विद्रोह समष्टि रूप में हुआ जिसको विस्तृत रूप से विभिन्न भागों की आबादी से समर्थन प्राप्त था। काफी उदारतापूर्वक पुरस्कारों और सुविधाओं की घोषणा की गयी थी लेकिन बागी लोग व्यापक तौर पर नहीं पकड़े गये थे। अंगरेज प्रशासक जिन जमीन्दारों का पूर्ण भरोसा किये हुए थे वे भी या तो अनमनेपन के साथ ही काम करते थे या गुप्त रूप से उनके विरुद्ध ही थे। घटवार लोगों ने, जो विद्रोहियों को पकड़वाने की पूरी क्षमता रखते थे, ऐसा नहीं किया।

अखिलेखागार के कुछ पत्रों से पता चलता है कि भागे हुए कैदियों को पकड़ने के लिये अंगरेजों द्वारा जो बुरी तरह पीछा किया गया, वह भी बहुत कुछ असफल ही रहा। इससे यह भी प्रकाशित होता है कि सैनिक कानून, पुरस्कार की लालच और विद्रोहियों को पकड़ने तथा सजा देने के लिए विशेष आयोग, आदि कुछ भी विशेष फलप्रद नहीं हो सके। श्री जे० सी० विल्सन को एक आयोग (कमीशन) का प्रधान बनाया गया जिसका उद्देश्य विद्रोहियों को पकड़ कर सजा देना था। ऐसा निर्देश था कि आयोग प्रधानतः बागी लोगों के अपराधों की जाँच कर सजा की व्यवस्था करेगी। इस (आयोग) को विप्लवी को ढूंढ निकालने की जिम्मेवारी नहीं होगी। उक्त कर्त्तव्यों का पालन मंडल के अधिकारियों द्वारा हो ही रहा था, अतः आयोग का निर्माण इस बात का द्योतक है कि विद्रोहियों के अपराधों का फैसला शीघ्रातिशीघ्र कर देने की व्यवस्था की गई। हिन्दू और मुसलमान विद्रोहियों की लम्बी सूची मिलती है जो रामगढ़ पद सेना (**Ramgarh Light Infantry**) के १, ३, ४, ६, ८, ९ तथा १०वीं टुकड़ी के थे और उन्हें योरोपियन आम सैनिक न्यायालय (**European General Court Martial**) के संचालक मेजर जी० जी० मैकडो`ल के आदेश से सम्पत्तिहरण तथा विभिन्न तरह के कैद की सजा मिली थी। अंगरेजों के विरुद्ध बगावत करने वाले लोगों में जात पांत का पचड़ा नहीं था। इसी तरह एक लम्बी तालिका और भी मिलती है जिसमें साधारण नागरिक, संथाली लोगों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के कैद की सजा के भागी हुए थे। ३१ जुलाई १८५७ को भारत के बड़े लाट के गृह विभाग की परिषद् द्वारा निर्गत परिपत्र की प्रथम कण्डिका के अनुसार ही अधिकारीवर्ग अपना कार्य सम्पादन कर रहे थे।

इसकी प्रथम कण्डिका इस प्रकार है:—

"स्थानीय नागरिक अधिकारियों ने विद्रोहियों तथा विश्वासघातियों को पकड़ने और सजा देने के लिए जिस उत्साह और उमंग के साथ काम किया, उसकी, भारत के गवर्नर-जेनरल ने, सपरिषद् (Governor General of India-in-Council) सराहना की। हमारे ऐसे अधिकृत मंडलों में जहां उपद्रवी घुस आये थे और जहां के विशेष लोगों का विद्रोह में भाग नहीं लेने पर भी राष्ट्रीय फौज बेचैन रहती थी, ऐसा आवश्यक था कि अपराधियों को कड़ी सजा दे कर दिखाया जाय कि विद्रोह का फल मृत्यु होता है तथा ब्रिटिश सरकार सजा देने की शक्ति रखती है। पुरस्कारों की घोषणा करके भी यह जरूरी था कि फरारों को पकड़वाया जाय जिससे फौजों में बढ़ती हुई अवहेलना बन्द हो और वे अपने आप नौकरी छोड़ कर चले जाने से डरें। उक्त तरीकों से अपराधियों को गिरफ्तार करना और भी आवश्यक दिखाई पड़ता है क्योंकि उन फरारों को भी इससे पकड़ने में सुविधा होगी जो प्रथमतः मात्र छुटकारा पाने के ख्याल से भागे और बाद में ऐसे भयानक तथा अत्याचारपूर्ण कार्य्यों में संलग्न हो गये कि इनको पकड़ कर दण्ड देना बाध्य कर्त्तव्य हो गया।"

कुछ पत्रों में वर्णित तथा पूर्णतया उद्धृत चतरा का युद्ध एक महत्त्वपूर्ण संघर्ष था जिसका प्रतिकूल परिणाम हजारीबाग जिले के आन्दोलन को बिल्कुल कुचल दिया। एक ओर सुव्यवस्थित तथा संगीन अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अंगरेजी फौज और दूसरी ओर अव्यवस्थित तथा मामूली हथियारों के साथ विद्रोही फौज, भिड़न्त का परिणाम क्या होता? विद्रोही बुरी तरह परास्त हुए।

हजारीबाग

अनुलग्नक प्रथम

प्रेषक—सैन्य-सचिव (**Military Secretary**)

प्रेषित—सम्माननीय महासेनापति (**His Excellency the Commander-in Chief**)।

(मूल प्रति)।

सैनिक संमन्त्रण, ४ सितम्बर, १८५७,

संख्या ३५६—५६।

हजारीबाग, अगस्त, १८५७।

सम्मानीय महासेनापति (**His Excellency the Commander-in-Chief**) का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि मैं गत् महीने की ३० तारीख को डोरन्डा (छोटानागपुर) से, हजारीबाग की ८वीं पैदल सेना (**8th Regiment Native Infantry**) से हथियार उतरवाने के लिये चल पड़ा। मेरे साथ आगे पार्श्व भाग में उद्धृत फौजी सिपाही थे। रास्ते में ३१ तारीख को मेरी मुलाकात छोटानागपुर के उप-आयुक्त से हुई और

उन्होंने बताया कि एक दिन पहले ३ बजे अपराह्न में हजारीबाग में कुछ फौजी लोगों ने खजाने को लूट लिया तथा कैदियों को मुक्त कर दिया।

मुख्यालय

रामगढ़ अस्थायी घुड़सवार
(Ramgarh Irregular Cavalry)

१—जमादार .. ..
२—कोटी दफादार ..
२—दफादार .. ..
२—वेतन दफादार ..
१—निशान वरदार ..
१—तुरही वाला .. ..
२४—सवार .. ..

पैदल सेना।
(Ramgarh 2nd Infantry)

१—लेफ्टिनेन्ट ..
२—सूबेदार .. ..
२—जमादार .. ..
३—हवलदार .. ..
३—नायक .. ..
२—बिगुल वादक ..
१००—सिपाही .. ..

मैं उपरोक्त खबर पाते ही रामगढ़ क्षेत्र के शिविर की ओर तेजी से बढ़ा जहां से सामग्रियों का बन्दोबस्त करके डिमूडा पार करने का इरादा था। कुछ घण्टे बाद लेफ्टिनेन्ट मिडिलटन, क्वार्टर मास्टर सर्जेन्ट इन्चार्ज के द्वारा समाचार मिला कि गोले ढोने वाले पशु बहुत कम थे और उनका सम्भवतः कल सुबह तक भी पहुंचना मुश्किल है। इसके पहले मुझे कुछ बैलों को पकड़ लेने के लिए बाध्य होना पड़ा था जिनसे गोले बारूदों को ढोया जा सके। मैंने बड़ी कठिनाई से पूरे दस्ते के लायक सिपाहियों का संग्रह किया। वहां कुछ हाथियों का बन्दोबस्त करके मैंने हुक्म दिया कि रामगढ़ से हाथियों द्वारा युद्ध सामग्रियां लाई जायं। किन्तु ऐसा नहीं हो सका क्योंकि रामगढ़ ग्राम और वहां के अनाजों का अधिक हिस्सा रामगढ़ सेना ने लूट लिया था।

तोपखाना।

१—क्वार्टर मास्टर सार्जेन्ट ..
१—हवलदार .. ..
३—नायक .. ..
२६—सिपाही .. ..
१—लश्कर का एक छोटा अधिकारी
८—लश्कर .. ..
२— छः पाउन्ड की बन्दूकें ..
२८—बैल .. ..

उसी रात घुड़सवारों का जमादार अहमुदया खां ने खबर दी कि पैदल सेना के लोगों ने हजारीबाग के विद्रोह का समाचार सुन लिया है और कुछ उत्तेजित हो गये हैं। ये लोग विद्रोह करके अपनी बन्दूकें साथ में लिये हुए ही डोरन्डा लौट जाना चाहते हैं। दूसरे लोगों के साथ-साथ उसने यह भी कहा कि यूरोपियनों तथा मेरे प्रति उनकी नीयत भी खराब थी।

मैंने जमादार को आदेश दिया कि, क्षणमात्र की सूचना पर सुबह में नदी पार करने के लिए, घुड़सवार तैयार रक्खे जायें। देशी अधिकारियों को मैंने कह दिया कि मेरा मतलब शीघ्रतापूर्वक सुबह में पूरी फौज के साथ नदी पार करना था और इसी उद्देश्य से मैंने बिना बन्दूक के ५० सिपाहियों को, पीछे, तोप लाने वालों की मदद करने के लिये भेज दिया। प्राप्त समाचारों के आधार पर

तथा स्वयं कुछ आदमियों को बन्दूकें साफ कर, भरते देख कर मैंने किसी यूरोपियन अफसर को इनके साथ भेजना उपयुक्त नहीं समझा। क्वार्टर मास्टर जेनरल ने भी एक आदमी को गोले भरते हुए देखा जिसका मतलब था कि मात्र एक ही नहीं बल्कि अधिक गोले भरे गये थे। तब मैंने नदी पार करके, तोपखाना आने का इंतजार करने का, आदेश दिया। इसी अवसर पर जमादार मधू सिंह आया और बोला कि जिन लोगों को बिना हथियार के तोपखाना लाने कहा गया था, उन्होंने अपना हथियार छोड़कर जाने से इनकार कर दिया है। कुछ ही देर बाद फिर वही जमादार तथा बड़े सूबेदार ने समाचार दिया कि उन सिपाहियों ने गोला-बारूद लेकर हाथी पर लाद लिया है। मैंने स्वयं जाकर देखा तथा इसे प्रमाणित पाकर यही उपयुक्त समझा कि घुड़सवारों के साथ नदी को पार किया जाय। इस तरह नदी पार कर मैंने देशी अधिकारियों के पास वहां से लिखित आदेश भेजा कि शीघ्रातिशीघ्र तोपों को नदी किनारे मंगाकर मेरे हुक्म का इन्तजार करें।

मैं तब आगे मन्डू की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में कुछ कैदी पकड़े गये। सड़क को अच्छी हालत में देखकर तथा अन्य सामग्रियों के सुविधापूर्वक मिल जाने का ख्याल करके मैंने देशी अधिकारियों को एक दूसरी आज्ञा दी कि वे शीघ्र नदी पार करके तेजी से हजारीबाग की ओर बढ़ें। मैं भी आगे बढ़ने ही को था कि अस्त्रागार का हवलदार बुलाकी खां और एक सिपाही राम सिंह ने आकर खबर दी कि जमादार माधो सिंह, नदी के पास से तोपखाने की ओर लौट गया था और वे सभी रांची की ओर चल पड़े थे। एक देशी अधिकारी उसी के साथ चले गये और बाकी दो सूबेदार शेख अमानत और जमादार फिरोज खां और कुछ सैनिकों ने उनका साथ देना अस्वीकार किया तथा वे मेरे पास कुछ ही देर में हाजिर होंगे। मेरे पास एक हवलदार, १ नायक और ४ सिपाही हैं। बटालियन का एक देशी अधिकारी शेख फकीर बक्स कुछ सिपाहियों के साथ मेरे पास आ गया है और कुछ असमर्थ सिपाही आज आने वाले हैं। मैंने इचाक के राजा को बुला भेजा है और उसे यहीं रक्खूंगा क्योंकि उसकी उपस्थिति शान्तिपूर्ण वातावरण कायम करने में सहायक हो सकती है। मेरा ख्याल है कि वह हमलोगों से पूरी सहानुभूति रखता है। ८वीं राष्ट्रीय पैदल सेना (8th Regiment Native Infantry) के दो दस्तों ने गत मास की ३० तारीख को तीन बजे अपराह्न में बगावत कर दिया। उनलोगों ने ८०० कैदियों को मुक्त कर दिया जो पेनिटेन्टियरी (Penitentiary) तथा मंडल कारागार में थे। उन्होंने रुपयों का खजाना, सरकारी कागजात तथा बैंक द्वारा जारी किये गये नोटों को मिलाकर लगभग ७४,००० रुपये ले लिया। तीन बंगले और कुछ बाजार कचहरी के कागजात जला दिये गये। जेल-उद्योगशाला को कैदियों तथा स्थानीय दुश्चरित्र लोगों ने मिलकर लूटा। ऐसा सुनने में आता है कि सभी यूरोपियन लोग ट्रन्क रोड पर बगोदर की ओर भाग निकले हैं। हमलोगों के पहुंच जाने से लागों में कुछ साहस आ गया है तथा दुकानें फिर खुल गई हैं। कल शाम को लेफ्टिनेन्ट मिडिलटन तथा प्रथम घुड़सवारों के दल (Cavalry 1) के जमादार को साथ लेकर मैंने बाजारों का चक्कर लगाया तथा वहां के अमले और दूसरे व्यक्तियों को, जो भागने को तैयार थे, ठहरने के लिये प्रोत्साहित किया। इलाके में पूरी शान्ति है केवल कुछ पड़ोस के गांवों में छोटी-मोटी लूट चालू हैं।

८वीं राष्ट्रीय पैदल सेना (8th Regiment Native Infantry) से भागा हुआ एक बमनीया से खबर मिली है कि उक्त सेना के लोग तितर-बितर हो गये हैं। और या तो पलामू की ओर या इस क्षेत्र से बाहर शेरघाटी की ओर चले गये हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि उन्होंने अपना हथियार त्याग दिया है और उनकी लूट की सम्पत्ति

जमींदारों द्वारा छीन ली गयी है अतः वे अचम्भित हैं। मैंने बगोदर में मेजर सिम्पसन को वापस आने का निवेदन किया है क्योंकि उनकी उपस्थिति से यहां पुनः विश्वास और साहस आ सकता है। बहुत-सी सम्पत्ति, सरकारी मुद्रांकित पत्र और कुछ खजानें प्राप्त हुए हैं तथा और भी होने की उम्मीद है। मैंने कचहरी के कागजातों का संग्रह करवाना शुरू कर दिया है। यद्यपि वे काफी विध्वस्त और फटे हुए हैं फिर भी उनका कुछ उपयोग हो सकता है। मेरे विचार से विक्षुब्ध परिस्थिति में लूट-पाट मचाने वालों के विरुद्ध बिलकुल ठोस कार्रवाई की जानी चाहिए। लेकिन इस वक्त में फौजों की कमी से ऐसा करने में असमर्थ हूं। बल्कि अगर मैं शहर से कुछ ही दूर अपना पड़ाव डालता तो हो सकता था कि शहर में ही विद्रोह हो जाता। उक्त प्रथम कार्य के लिए तो कुछ यूरोपियन या सिक्खों से बड़ी मदद मिलती। सम्प्रति मेरे पास जितने घुड़सवार हैं उनके बदौलत मैं बिना किसी यूरोपियन को बाहर पहुंचाये पूरे मंडल को वश में रख सकता हूं। यहां के लोग संग्राम-योग्य तो बिल्कुल नहीं हैं और ऐसा मालूम होता है क यहां यूरोपियन लोगों की उपस्थिति से ही बहुत कुछ अमन कायम हो जायेगा।

अत्यन्त सम्मान के साथ आपके समक्ष जमादार अहमुदियार खां का नाम पेश करना चाहता हूं, जिसका विरले पायी जाने वाली कार्यशीलता और शान्ति स्थापन के प्रयत्न, पारितोषित तथा पदोन्नति के लायक हैं।

सम्मानपूर्वक आदि......

(ह०) जे० एम० ग्राहम, लेफ्टिनेन्ट,

सेनाध्यक्ष—रामगढ़ स्थानीय फौज
(Ramgarh Local Force.)
हजारीबाग।

हजारीबाग

अनुलग्नक—द्वितीय

हजारीबाग जिले में आन्दोलन की कहानी ८वीं देशी पैदल सेना (8th Regiment Native Infantry) के दो दस्तों के विद्रोह के वर्णन के साथ, राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित बहुत-से मौलिक प्रलेखों में वर्णित है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:—

(१) आम-कार्यालय पत्राचार (Public O. C.), दिनांक १४ अगस्त १८५७, संख्या २४-२६ (सहायक शस्त्र चिकित्सक, डा० डैलप्रैट तथा जेलर जेम्स मूर्ने के द्वारा हजारीबाग में विद्रोह का विवरण), (२) आम-कार्यालय पत्राचार, दिनांक ९ अक्तूबर १८५७, संख्या ७२ (रामगढ़ के बागी नबीनगर में), (३) आम-कार्यालय पत्राचार, दिनांक १८ फरवरी १८५९, संख्या ८ (चड़हा गांव में टर्नर का सफल आक्रमण तथा सचिव की टिप्पणी से ऐसी आशा का प्रगट होना कि पलामू से ट्रन्क रोड पार कर विद्रोहियों का आना बन्द हो जायगा), (४) गुप्त कार्यालय पत्राचार, दिनांक १८ दिसम्बर १८५७, संख्या ६९९-७०१ (हजारीबाग में सिपाही विद्रोह तथा अतिरिक्त फौजों की मांग की अस्वीकृति), (५) सैनिक कार्यालय पत्राचार, दिनांक ३१ जुलाई १८५७, संख्या ३५-३९ (हजारीबाग खतरे में तथा दीनापुर के फौजों में बगावत), (६) सैनिक कार्यालय पत्राचार, दिनांक ७ अगस्त १८५७ (दीनापुर में ८वीं देशी पैदल सेना की बगावत—दूसरे फौजों को अतिरिक्त ८ आने का प्रलोभन), (७) सैनिक कार्यालय पत्राचार, दिनांक ७ अगस्त १८५७, संख्या ४५६-६३ (हजारीबाग विद्रोहियों से हथियार रखवाने के लिए गई हुई फौज की भी बगावत तथा यूरोपियन फौजों की

मांग), (८) सैनिक कार्यालय पत्राचार, दिनांक १४ अगस्त १८५७, संख्या ३५८-३५९ (बूढ़ी से डाल्टन की अतिरिक्त फौज अविलम्ब भेजे जाने का आग्रह अन्यथा उसका हजारीबाग खाली कर देने की सम्भावना जिसके प्रतिफलस्वरूप और भी देशी सरदारों का सरकार के विरुद्ध बगावत की आशंका, कप्तान डाल्टन खाली कर देने को बाध्य), (९) सैनिक कार्यालय पत्राचार, दिनांक १८ सितम्बर, १८५७, संख्या ५५९ (लेफ्टिनेंट-कर्नल, फिसर अस्थायी सेना के अध्यक्ष द्वारा एक फौजी टुकड़ी को भेजने का विचार जो डोरन्डा जाकर विद्रोह दमन करे), (१०) सैनिक प्रक्रिया (Military Proceedings), दिनांक १८ दिसम्बर १८५७, संख्या १५६-५७ (हजारीबाग क्षेत्रों में फौजों की कार्यशीलता), (११) सैनिक प्रक्रिया, दिनांक २० मई १८५९, संख्या ७५९-७६० (हजारीबाग के छठे दस्ते में असन्तोष, फिर भी तत्कालीन शान्ति, कुछ शिकायतों की सुनवाई किन्तु अवज्ञा के कारण सरकार द्वारा मामले की जांच), (१२) आम कार्यालय पत्राचार दिनांक, १४ अगस्त १८५७, संख्या २१-२२ (हजारीबाग में ८वीं रेजीमेंट नेटिव इन्फैन्ट्री के दस्तों की बगावत)।

हजारीबाग

अनुलग्नक—तृतीय

सैनिक संमन्त्रणा, दिनांक १४ अगस्त १८५७, संख्या ३६६

इसमें दो पत्र हैं—एक हजारीबाग पेनीटेन्टियरी जेल के जेलर का तथा दूसरा सहायक शस्त्र-चिकित्सक डा० लप्रैट का, जिनमें यह वर्णन है कि हजारीबाग में विद्रोह कैसे प्रारम्भ हुआ। ऐसा प्रगट होता है कि श्री मुने आखिरी वक्त तक डटा रहा तथा सभी के चले जाने के डेढ़ घंटे बाद उसने अपने स्थान को छोड़ा। उसे बगोदर पहुंचने के लिये जंगल से होकर पैदल चलना पड़ा। वह पहले सीतामढ़ी गया तथा वहां से भी, किसी को नहीं पाकर, साढ़े चार बजे शाम को बगोदर के लिए रवाना हुआ जहां वह दूसरे दिन ३१ जुलाई को ११ बजे दिन में पहुंचा। बगोदर में उसकी मुलाकात मेजर सिम्पसन, मुख्य सहायक आयुक्त, श्री विलसन, बूढ़ी के दण्डाधिकारी, जनकार्य विभाग के ४ शस्त्र-चिकित्सक तथा दूरलेख कार्यालय के अधिकारियों से हुई।

सैनिक समन्त्रणा, दिनांक ४ सितम्बर १८५७, संख्या ३६८।

यह एक पत्र है जो कप्तान डाल्टन के द्वारा बंगाल सरकार के सचिव को लिखा गया है। इसमें उल्लेख है कि बड़कागढ़ के ठाकुर विश्वनाथ साही और उसके अनुयायियों ने रामगढ़ हाट जाने वाली सड़क पर कई जगहों में गड्ढा खोद दिया था जिससे फौज डोरन्डा नहीं जा सके। रामगढ़ राजा के अधीनस्थ लूदर सिंह, एक घटवाल, ने विश्वनाथ साही का साथ दिया था।

सैनिक संमन्त्रणा, दिनांक ५वीं फरवरी १८५८, संख्या २९८-३००।

यह एक पत्र है जो मेजर ए० एच० रौस, सहायक एडजुटेन्ट-जेनरल, बैरेकपुर को कर्नल फार्स्टर के द्वारा लिखा गया है, जिसमें लिखा है कि शेखबत्ती बटालियन के चाईबासा से चक्रधरपुर आने के पहले ही गत २४ तारीख को एक हजार विद्रोही रघुदत्त बाबू के नेतृत्व में जमा हुए। वे ६५० पशुओं तथा ६०० मन चावलों को लेकर भागे लेकिन शेखबत्ती बटालियन के लोगों ने उन्हें पकड़ लिया।

पत्र से यह भी प्रगट होता है कि फौजों के भोजन की व्यवस्था ठीक नहीं थी। ऐसा सोचा गया कि इन चावल-प्रधान इलाकों में मद्रास की फौज, तुलना में उत्तरी-पश्चिमी सीमांत प्रदेश की फौजों से अधिक कामयाब होती।

तृतीय परिच्छेद

सिंहभूमि

सिंहभूमि का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ अस्पष्ट है। परन्तु यहां प्रस्तर युग के कुछ अवशेष पाये जाते हैं। चक्रधरपुर और चाइबासा के समीपवर्त्ती नदियों में उक्त युग के पत्थर के छोटे रत्न (Chert-flakes), नुकीली छूड़ियां आदि मिलती हैं जो प्राचीन सभ्यता का किंचित स्पष्टीकरण करती हैं। यहां कुछ सिक्के, सोना और ताम्बे प्राप्त हुए हैं जिससे पता चलता है कि सचमुच सिंहभूमि समुन्नत था तथा इसका सम्बन्ध प्राचीन बन्दरगाह 'ताम्रलिप्त' से था, जो इसका नियमित व्यापारिक मार्ग था। जैन मतावलम्बी सराक लोगों के द्वारा खने हुए प्राचीन खानों के अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं।

हो जाति

सिंहभूमि के प्राचीन इतिहास में छोटानागपुर पठार से आप्रवासित हो लोगों का वर्णन मिलता है जिसमें सिंहभूमि के आदिवासी भूइया जाति के लोगों को परास्त कर उनके बसने का उल्लेख है। हो जाति के लोगों ने जिले के दक्षिणी क्षेत्रों के पहाड़ी हिस्से की सुविधाओं को देखकर वहीं स्वतंत्र होकर बसना पसन्द किया, तथा वहीं अपनी युद्ध कौशल के बदौलत लड़का कोल के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। जिले का उत्तरी हिस्सा पोराहाट के सिंहवंशी के कब्जे में चला गया जो राठौरी राजपूतों का वंश था उसका प्रधान पहले सिंहभूमि का राजा था। ऐसा कहा जाता है कि उनके पूर्वज तीन भाई थे जो अकबर के सिपहसालार मानसिंह के अंगरक्षक थे तथा जिन्होंने हो लोगों के विरुद्ध भूइया का पक्ष ग्रहण किया था और अन्ततः उन्हें ही यहां का अधिकार प्राप्त हो गया। किसी समय सिंह राजाओं ने देश के उस हिस्से पर राज्य किया था जो अभी सरायकेला और खरसांवा राज्यों के अधीनस्थ हैं, कोल्हन के ऊपर भी उनलोगों ने दावा किया था किन्तु हो लोग इसे अस्वीकार करते हैं।

हो लोगों ने अपनी अलग सत्ता कायम रक्खी और छोटानागपुर के राजा एवं मयूरभंज के एक सरदार वामनघाटी के महापात्र आदि के दो आक्रमणों को सफलतापूर्वक बर्दाश्त किया। लेकिन क्षत्रीय सरदारों द्वारा वे अक्सर दुश्मनों से लड़ने के काम में लाये जाते थे। यवनकाल में हो लोग सीमित कर दिये गये, यद्यपि कहने के लिये वे रोहतासगढ़ से उड़ीसा की सीमा तक पूरे झारखंड में फैले थे।

अंग्रेजों से प्रारंभिक सम्बन्ध

अंग्रेजों का सिंहभूमि से सम्पर्क सन् १७६७ ई० से शुरू होता है जब अंग्रेज फौजों का एक छोटा जत्था धालभूमि के राजा के विरुद्ध भेजा गया। मिदनापुर पुरातन अभिलेखों में धालभूमि के राजा को घाटशिला का राजा भी कहा गया है। सन् १७६० में मिदनापुर जिला अंग्रेजों के अधीन हो गया। प्रारम्भ में उन्हें पहाड़ी क्षेत्रों के पश्चिमी भागों के मुखियों को वश में करने तथा उनके लूटपाट के कामों को रोकने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। १७६६ में जॉन फरगसन

ने एक ध्वजा के साथ उनलोगों के विरुद्ध फौजी दस्तों को भेजा जिन्होंने पश्चिमी मिदनापुर के चतना, बांकुरा के सुपुर और अम्बिकानगर तथा मानभूमि के बराभूमि आदि क्षेत्रों के जमीन्दारों से अधीनता कबूल करवायी। लेकिन धालभूमि के राजा ने अपने को समर्पित नहीं किया और सामना करने को तैयार हो गया। १७६७ ई० में वह पकड़ लिया गया और उसके भतीजे को ५,५०० रुपये सालाना अदा करने की शर्त्त पर गद्दी पर बैठाया गया।

जगन्नाथ धाल भी सुख की नींद नहीं सो सके। सालाना अदायगी की रकम उनके जिम्मे बाकी पड़ गई और उनके ऊपर चढ़ाई भी कर दी गयी। कुछ दिनों तक वे निरधिकार रहे। लेकिन जगन्नाथ धाल ने फिर गद्दीनशीन नये राजा के ऊपर चढ़ाई कर दी और अपने सेनाओं में चुआर या भूमिज और हो जातियों के लोगों को रक्खा। क्रमशः फिर गद्दी पर जगन्नाथ धाल को बैठाया गया और हर एक साल दिये जाने की रकम को प्रथम वर्ष २,००० रु०, दूसरे वर्ष ३,००० रु० और तीसरे वर्ष ४,००० रु० कर दिया गया जो बन्दोबस्त १८०० ई० में ४,२६७ रुपये सालाना के हिसाब से स्थायी कर दिया गया।

पोराहाट का राजा

धालभूमि की इन चढ़ाइयों ने अंग्रेजों को पोराहाट के राजा (जिसको सिंहभूमि का राजा भी कहा जाता था) के सम्पर्क में ला दिया। राजा ने अपने राज्य को सुव्यवस्थित करने के निमित्त कम्पनी की मदद चाही और वार्षिक राजस्व देना मंजूर किया। १७६८ ई० में कम्पनी की ओर से निरीक्षण हुआ, जिसमें मराठों की स्थिति भी देखी गयी जिनका न तो इस क्षेत्र पर कभी अधिकार हुआ था और न उनसे कोई कर ही आता था।

कुछ वर्षों बाद सन् १७७३ में ऐसा देखा गया कि पोराहाट का राजा नमक परिवहन को बढ़ावा दे रहे थे जिससे राजस्व की क्षति होती थी। उस समय सिंहभूमि प्रत्यक्ष रूप से प्रशासनिक नियंत्रण में नहीं था। राजा को ऐसा करने के लिये वाध्य किया गया कि भविष्य में वे किन्हीं रैयतों या व्यापारियों को शरण नहीं दे सकते हैं तथा हल्दीपोखर में शान्ति कायम रखने का दायित्व लें। इसी तरह की शर्त्तें और दायित्व का भार पड़ोसी राजाओं तथा खरसांवा के ठाकुर और सरायकेला के कुंवर को भी दिया गया जिससे ब्रिटिश राज्य से भागे हुए विद्रोही शरण नहीं पा सकें।

कोल्हन का अन्तरीय क्षेत्र फिर भी अज्ञात ही रहा क्योंकि हो लोगों ने किसी भी अजनबी को वहां नहीं बसने दिया, यहां तक कि किसी को जाने-आने की भी पूरी छूट नहीं दी। जगन्नाथपुरी के यात्रियों को वर्षों तक इस क्षेत्र के रास्ते से जाने की अनुमति नहीं मिलने से काफी घूमकर लम्बी दूरी तय करनी पड़ती थी। १८१९ ई० में राजनैतिक अभिकर्त्ता (Political Agent) मेजर रफ्सेज ने अपने सहायक को पोराहाट की ओर बढ़ने का आदेश दिया और वहां के प्रधान या मुखिया से सम्पर्क बढ़ाकर वहां की दशा की और खासकर असाधारण कही जानेवाली लड़का जाति का पता लगाने को कहा। किन्तु वह इसका पता लगाने तथा सुदूर भागों में आकर उनके साथ सम्पर्क बढ़ाने में असफल रहा।

ब्रिटिश हस्तक्षेप

१८२० ई० में पोराहाट का राजा अंग्रेजों की छत्रछाया में आने की इच्छा प्रगट की तथा उन्होंने १०१ रुपये सालाना सलामी देना कबूल कर लिया। उनका ध्येय, सरायकेला तथा

खरसांवां के सरदारों पर एकाधिपत्य पाना था (जो अस्वीकृत हो गया)। वे उन सरदारों से अपनी एक **पूज्य** पारिवारिक प्रतिमा को भी पुनः प्राप्त करना चाहते थे (जिसमें वे सफल भी हुए) और अन्ततः हो लोगों को दबाने के लिये सहायता प्राप्त करना चाहते थे क्योंकि वे उनको अपनी प्रजा समझते थे। अतः व्यावहारिक रूप से यह पोराहाट का राजा ही था जिसने अंग्रेजों को कोलों की भूमि में आमंत्रित किया। मेजर रफ्सेज ने हो लोगों के इस दावे की अवहेलना कर दी कि वे किसी सरदार के अधीन कभी भी नहीं रहे हैं और तोपों, घुड़सवारों तथा पैदल सेनाओं को लेकर कोल्हन में प्रविष्ट हो गया। हो लोगों ने डटकर मुकाबला किया लेकिन अपनी तीर-धनुषों से अंग्रेजों के गोला-बारूद का सामना नहीं कर सके। अचानक कत्लेआम जारी किया गया और आधे से अधिक हो लोग जंगलों में जा छिपे। अन्ततः सम्पूर्ण उत्तरी क्षेत्र के पारों ने आत्म-समर्पण कर दिया और पोराहाट के राजा को सलामी देना स्वीकार कर लिया। लेकिन मेजर रफ्सेज को दक्खिनी क्षेत्र के विशेष भयानक तथा पराक्रमी हो लोगों से अभी भी निबटना था। ऐसा कहा जाता है कि उसे संबलपुर की ओर बढ़ने के लिये, सिंहभूमि के कदम-कदम पर, लड़ते हुए, अपना रास्ता बनाना पड़ा फिर भी हो दुर्दमनीय ही रह गये। लेकिन उसके जिले से बाहर हो जाने पर वे हो जिन्होंने अधीनता कबूल कर ली थी तथा वे, जिन्होंने ऐसा नहीं किया था उनके बीच आपस में ही संघर्ष छिड़ गया। उन्होंने पोराहाट राजा के राज्य के सुन्दरतम हिस्से को तहस-नहस कर डाला और सरायकेला राज्य को भी धमकी दी। इन राज्यों ने अंग्रेजों की फिर सहायता मांगी और फलतः बहुत-से अंग्रेजी फौजों को हो लोगों को दबाने के लिये तैनात कर दिया गया। लगभग एक महीने की लड़ाई के बाद हो के नेता लोगों ने आत्म-समर्पण कर दिया और उन्होंने प्रार्थना की कि वे पूर्णतया बृटिश शासन में ले लिये जायं। लेकिन दुर्भाग्यवश उन्हें मुखिया के ही अधीन रहकर नजराना देने को बाध्य होना पड़ा। **शीघ्र** ही यह शर्त्त तोड़ दी गयी और हो लोगों ने पुनः लूट-मार का अपना पुराना धंधा आसपास के क्षेत्रों में, धालभूमि. वामनघाटी और यहां तक कि छोटानागपुर तक प्रारंभ कर दिया।

१८३१ का कोल विद्रोह

१८३१ ई० में हो लोगों ने छोटानागपुर के मुंडा राजद्रोह में भाग लिया (जिसे कोल विद्रोह कहा जाता है)। बहुत दिनों से मुंडाओं में असन्तोष की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी क्योंकि उनलोगों की बस्तियां उनके मुखियाओं को न देकर बाहरी आदमियों के हाथ बन्दोबस्त कर दी गयी थी। छोटानागपुर महाराजा के छोटे भाई हरिनाथ साही ने अपने राज्य के ग्रामों की कुछ भूमि अपने दरबारियों, मुसलमानों तथा सिक्खों को दे दिया तथा इस तरह आदिवासियों के दावे को बेतरह अवहेलना करते हुए सिंहभूमि की सीमा पर बसे हुए बारह बस्तियों को सिक्खों के हाथ सौंप दिया, जो वस्तुतः पहले से मानकी (सिंगराय) लोगों द्वारा अधिकृत थी। मानकी लोगों से जमीन छीन ही नहीं ली गयी, बल्कि कहा जाता है कि बाहरी लोगों ने उनकी दो बहनों का भी सतीत्व हरण किया। इसी तरह की शिकायत यवन कृषकों के विरुद्ध भी आई। एक के बारे में तो कहा गया कि उसने एक सुरगा नाम के व्यक्ति की स्त्री की बेइज्जती की। इस तरह दो सताये हुए व्यक्तियों ने अन्य सहपीड़ितों के साथ मिलकर बनगांव तथा रांची के आसपास के हिस्सों के मुंडाओं की सभा की और निश्चय किया कि अग्निकांड, हत्याकांड और लूटपाट किये जायें। उक्त निर्णय मात्र धमकी होकर ही नहीं रहा। कुछ हफ्ते बाद सुरगा और सिंगराय के नेतृत्व में सात सौ आदमियों के एक गिरोह ने उन बस्तियों को लूटना शुरू कर दिया जिनसे वे निष्कासित किये गये थे। ठीक दूसरे महीने में जाफर अली का गांव भी

आक्रान्त हुआ और जाफर अली अपने दस आदमियों तथा अपहृत स्त्री के साथ मार डाले गये। रांची और सिंहभूमि के सीमाओं पर भी मुंडा आबादी सामूहिक रूप में विद्रोह कर उठी जिसमें सिंहभूमि के हो लोग भी आकर सम्मिलित हो गये और इस तरह बलवाइयों का एक भयानक जत्था तैयार हो गया। हजारीबाग के रामगढ़ बटालियन को बैरकपुर और दीनापुर की टुकड़ियां और ५०वीं बंगाल इन्फैन्ट्री के साथ विद्रोह का सामना करने के लिये भेजा गया। काफी खून-खराबी होने के बाद क्रमशः आन्दोलन वश में कर लिया गया।

भूमिज-विद्रोह

कुछ ही दिनों बाद गंगानारायण के नेतृत्व में भूमिज विद्रोह भी खड़ा हो गया। लेकिन नवम्बर १८३२ में गंगानारायण को, जो अपने को बराभूम राज्य का हकदार बताता था, सांघातिक आक्रमण के फलस्वरूप जंगलों की शरण लेनी पड़ी। वह हो लोगों से सहयोग की आशा रखता था। इस समय हो लोग खरसांवां के ठाकुर के साथ विवादग्रस्त थे जो उनलोगों के कुछ क्षेत्रों पर आधिपत्य जमाना चाहता था। उनलोगों ने गंगानारायण की शक्ति की जांच करनी चाही और सहयोग के पहले उनको खरसांवां के ठाकुर के ऊपर आक्रमण करने के लिये कहा। गंगानारायण इसी युद्ध में मारे गये और उनका सिर विलकिन्सन के पास भेज दिया गया। इस विद्रोह के फलस्वरूप प्रशासनिक पद्धति में कुछ हेर-फेर करना निश्चित हुआ। मिदनापुर से धालभूमि हटा लिया गया और उसे एक विशेष पदाधिकारी के अधीन रक्खा गया, जिन्हें दक्खिनी-पश्चिमी सीमान्त अभिकर्त्ता (Agent) कहा जाता था।

विलकिन्सन

एजेन्ट, सर टोमस विलकिन्सन इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि हो लोग पूरे तौर पर नियंत्रित किये जायं और चाइबासा के किसी अंग्रेज अधिकारी के अधीन रक्खे जायं। यह विचार सरकार द्वारा स्वीकृत किया गया। फलस्वरूप कर्नल रिचर्ड्स ने नवम्बर १८३६ में रामगढ़ बटालियन के साथ कोल्हन क्षेत्र पर चढ़ाई की तथा पूर्व निश्चित योजनाओं के अनुसार आक्रमण शुरू हो गया। आगामी फरवरी माह के अंत तक सारे मानकी और मुंडा लोगों ने आत्म-समर्पण कर दिया। यह प्रतिज्ञा करायी गयी कि वे लोग अपने प्रधानों की आज्ञाओं की अवहेलना करेंगे। सभी मिलाकर करीब ६० हजार आबादी की बस्तियां जिनमें दो-तिहाई "लरका कोल" थे, साक्षात् बृटिश शासन में आ गये। लेफ्टिनेन्ट टिकेल, १८३७ में सर्वप्रथम बृटिश प्रशासक के रूप में चायबासा में पदस्थ किये गये। विलकिन्सन ने इस नवउपार्जित भागों के लिये कुछ नियमों को बनाया जो बाद में भी एक शताब्दी तक जिला के साधारण प्रशासन में काम आते रहे।

१८५७ का आन्दोलन

बस्तियों तक शान्ति का साम्राज्य होने तथा विलकिन्सन की चलाई हुई प्रशासनिक व्यवस्था को फलीभूत होने के पहले ही सिंहभूमि गदर के चपेट में पड़ गया। ३० जुलाई १८५७ को हजारीबाग में फौजों के बगावत करने पर रामगढ़ बटालियन की टुकड़ी उन्हें दबाने के लिये भेजी गयी, लेकिन ये भी विद्रोह की भावना से ही प्रेरित हो गये, और क्रमशः चायबासा स्थित रामगढ़ बटालियन में भी विक्षोभ की लहरें उठने लगीं। स्थिति कुछ ऐसी हो गयी कि चायबासा का प्रधान सहायक आयुक्त

कप्तान सिसमोर भी घबड़ा गया। वह अपना स्थान छोड़कर सरायकेला के राजा चक्रधारी सिंह के शरण में चला गया। कप्तान सिसमोर की भीरुता से रामगढ़ सैन्यदल के प्रत्यक्ष विद्रोहियों को और भी उत्तेजना तथा साहस मिला। विद्रोहियों ने सरकारी खजाना लूटा, जेल के फाटक तोड़ दिये, और रांची में डोरंडा स्थित बागियों से मिलने की कोशिश की। कप्तान सिसमोर सरायकेला के राजा की संरक्षण में रानीगंज को ओर बढ़ा। किन्तु सिंहभूम छोड़ने के पहले कप्तान ने जिले की रक्षा का भार सरायकेला के राजा के हाथों सुपुर्द कर दिया जिससे वहां और भी उत्पात खड़ा हो गया। सरायकेला के राजा ने चायबासा के रक्षार्थ दूसरे प्रधानों को सेना भेजने के लिये आग्रह किया। लेकिन पोराहाट के राजा अपने को सरायकेला के राजा से प्रस्थिति में श्रेष्ठ समझते थे। उसने कप्तान सिसमोर के द्वारा सिंहभूम की रक्षा का भार सरायकेला के राजा के हाथ सौंपे जाने से क्षुब्ध होकर सेनाओं को नहीं भेजा। इस तरह सरायकेला के राजा तथा कप्तान सिसमोर के आचरणों से, अतिरिक्त उलझनें उपस्थित हो गयीं।

विचित्रता तो यह थी कि सरायकेला के राजा की प्रस्थिति से पड़ोसी सरदार लोग जलने लगे। उक्त ईर्ष्या की भावनाएं वंशक्रम से ही आ रही थीं तथा कभी-कभी उमड़ पड़ती ीं जिस तरह एक बार सरायकेला के सरदार को राजा की पदवी देने के वक्त हुआ था। यह राजा की पदवी लेफ्टिनेंट-गवर्नर की पैरवी से चक्रधारी सिंह को दी गयी थी। ऐसा पता चलता है कि मयूरभंज के राजा ने भी उक्त पदवी दी जाने के वक्त विरोध किया था।

परराष्ट्र विभाग, राजनीतिक प्रगति संमंत्रणा संख्या ४०-४३/४४, २री जनवरी १८५६ का एक पत्र उपरोक्त बातों पर प्रकाश डालता है। राजा के पद की पैरवी हैनरी रिक्केट्स के ३१वीं जनवरी १८५४ के विवरण पर आधारित है। यह पत्र वंशानुगत सरायकेला और पोराहाट राज्य परिवार के ईर्ष्यालु और विद्वेषपूर्ण आपसी संबंध के बारे में भी इंगित करता है।

राजा अर्जुन सिंह

सरकारी खजाने को लूट कर रामगढ़ बटालियन की फौज चायबासा से डोरन्डा की ओर बढ़ी। लेकिन संजय नदी की बाढ़ ने उनके आगे बढ़ने में बाधा डाल दी। पोराहाट के राजा ने ऐसी परिस्थिति में उनको आगे नहीं जाने दिया और उन्हें अपने यहां शरण दी। अर्जुन सिंह की इस हरकत से उसे भी तत्काल बागी करार दे दिया गया लेकिन क्रमशः पश्चात् के व्यवहारों से उसके ऊपर साक्षात ऐसा दोष नहीं लगाया गया फिर भी वह सन्देहात्मक नजर से देखा जाने लगा।

लेफ्टिनेंट वर्च

१६वीं सितम्बर को लेफ्टिनेंट वर्च, जो मुख्य सहायक आयुक्त के बदले नियुक्त किया गया था, सरायकेला और खरसांवा के राजाओं तथा ३,००० कोलों के साथ चायबासा पहुंचा। बाद की कुछ घटनाएं जिनमें राजा अर्जुन सिंह को फरार घोषित किया गया क्रमशः वर्णित होंगी। लेकिन जब तक अर्जुन सिंह स्वतंत्र रहे तब तक आदिवासी तथा कोल जाति के लोग काफी उत्तेजित रहे। दिसम्बर महीने के अन्त में लूसिंटन ने, जो मानभूम और सिंहभूम का अस्थायी विशेष आयुक्त नियुक्त हुआ था, सिंहभूम में एक

विराट आन्दोलन की सूचना भेजी। लेकिन क्रमशः विद्रोह दबता गया और अन्ततः पोराहाट राजा के आवास स्थान तथा वहां के कोलों तक ही सीमित हो गया। १७वीं जनवरी, १८५८ को कर्नल फौरस्टर के अधीन शेखवत्ती बटालियन चायबासा पहुंची और अर्जुन सिंह के गढ़ का ध्वंस कर दिया तथा चक्रधर ग्राम को नष्ट करते हुए बहुत-से कोलों को कत्ल कर दिया। इस तरह कुछ दिनों तक और भी अर्जुन सिंह और उनके अनुयायियों ने सामना किया ।

१९वीं जनवरी १८५८ के सैनिक समंत्रणा सं० १६१७ के एक पत्र में जो शेखवत्ती बटालियन के सेनापति कोलोनल फोरस्टर द्वारा मेजर ए० एच० रौस, सहायक एडजुटेंट-जेनरल, बैरकपुर को लिखा गया है, उसमें मानभूमि और सिंहभूमि के विद्रोह दमन कार्य की प्रगति का विवरण मिलता है। ऐसा लिखा है कि करीब ८० ग्रामों का ध्वंस किया गया और करीब १,००० पशुओं तथा सैकड़ों मन अनाज जब्त किये गये। कर्नल फौरस्टर लिखते हैं कि वे खुश थे कि सरकार, पोराहाट के पूर्व के, राजा को अपनी ताकत दिखाने के लिये कृत संकल्प हो गयी है।

सिंहभूम प्रमंडल के स्थानापन्न सहायक आयुक्त, ए० पी० स्कॉट मौन्क्रीफ, ने बंगाल सरकार के सचिव, ए० आर० यंग, को चक्रधरपुर से २७वीं मार्च, १८५८ को सम्वाद भेजा कि उसे अतिरिक्त सेना की शीघ्र जरूरत थी। वह लिखता है कि उनकी छावनी पर पोराहाट के राजा के बागी फौज ने हमला किया और उसने फौजों को मार भगाया। लेकिन उसके पास की फौजों से उन विद्रोहियों को जंगल में खदेड़ कर अधीन में नहीं लाया जा सकता है। अतः उसका विचार था कि चक्रधरपुर की फौजी टुकड़ी के आलावा कुछ फौजी सिपाहियों को चायबासा में भी रखना आवश्यक था तथा उस स्थान पर वे अंग्रेजी फौजों के बजाय देशी सिपाहियों को ही विशेष उपयुक्त समझते थे जो विद्रोहियों का पीछा कर सकें और अनुभवों के आधार पर जंगलों में छिटपुट युद्ध सफलतापूर्वक कर सकें। "१८५८ ई० के मार्च महीने से लेकर जून तक सरकारी फौजों को विद्रोहियों से अनवरत युद्ध, वेल्डन और श्री स्कौट के अधिनायकत्व में चलता रहा। वे, क्रमशः चक्रधरपुर के जलसेना के प्रथम और द्वितीय अफसर थे। अन्ततः विद्रोही, जंगलों तथा पहाड़ी भागों में शरण लेने को वाध्य किये गये। १५वीं फरवरी १८५९ को अर्जुन सिंह ने अपने अनुयायियों के साथ आयुक्त के हाथों आत्म-समर्पण कर दिया और सिंहभूम का गदर इस तरह बिलकुल दब गया" (प्रो० एच० पी० चटर्जी के बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, क्रम संख्या १४० से उद्धृत)।

लेफ्टिनेंट वर्च ने जिस समय चायबासा का प्रशासन भार लिया उस समय वहां की स्थिति अत्यन्त असंतोषजनक थी। बंगाल सरकार के सचिव ने भारत सरकार के सचिव को २५वीं सितम्बर के सैनिक समंत्रणा के आधार पर लिखा कि—

"सिंहभूम में लेफ्टिनेंट वर्च ने यह अफवाह सुनी कि कोल जाति के लोग समझते थे कि अंगरेजों ने यह देश बिलकुल छोड़ दिया। यद्यपि सरायकेला के राजा ने उनकी पूरी खातिर की और मदद भी देनी चाही, लेकिन उनकी ताकत विद्रोही खरसांवा के ठाकुर और पोराहाट के राजा जैसे प्रधान सरदारों के साथ लोहा लेने की नहीं थी। चायबासा स्थित रामगढ़ बटालियन के विद्रोही सिपाहियों ने सफलतापूर्वक करीब गत १० तारीख को सरकारी खजाने को लूटा और कैदियों को मुक्त कर दिया। पोराहाट के राजा ने उनकी मदद की तथा लेफ्टिनेंट वर्च के अनुसार उन सिपाहियों को नौकरी भी देनी चाही। अतः लेफ्टिनेंट वर्च लगभग डेढ़ सौ आदमियों की मदद चाहते थे जिसके बदौलत पुनः

वहां सरकारी सत्ता कायम की जा सके।" इसी पत्र के आधार पर शेखवत्ती बटालियन की एक टुकड़ी जो मिदनापुर में लेफ्टिनेंट-गवर्नर के अधीन थी, लेफ्टिनेंट वर्च की सहायता के लिये भेजी गयी।

डाल्टन की चिट्ठियां

५ अगस्त १८५७ से लेकर १३वीं मई १८५९ ई० तक लगभग चालीस पत्रों का प्रमाण मिलता है जो आयुक्त डाल्टन के द्वारा बंगाल सरकार के सचिव, ए० आर० यंग, को लिखे गये हैं और कुछ चिट्ठियां लेफ्टिनेंट वर्च के द्वारा भी उक्त पते पर लिखी गयी हैं। उक्त अवधि में कुछ पत्र ए० आर० यंग के द्वारा भी छोटानागपुर प्रमंडल के आयुक्त को प्रेषित किये गये हैं। ये पत्र छोटानागपुर और सिंहभूम में १८५७ के गदर का विशद वर्णन प्रस्तुत करते हैं तथा यह भी दिखाते हैं कि छोटानागपुर के आयुक्त डाल्टन तथा अनुभवी सहायक आयुक्त लिफ्टनेंट वर्च, जिन्हें सिंहभूम में विशेष महत्वपूर्ण बातों को ख्याल कर भेजा गया था, दोनों का मत वहां की परिस्थिति के बारे में एक नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि लेफ्टिनेंट वर्च अत्यन्त क्रोधावेश और खून खराबी की मुद्रा में था और राजा अर्जुन सिंह के आचरण के विरुद्ध उसका रुख बहुत ही कठोर था। वह आयुक्त का अधीनस्थ पदाधिकारी होते हुए भी कुछ मामलों में बंगाल सरकार के साथ सीधा पत्राचार करता था एवं सिर्फ उनकी प्रतियां छोटानागपुर के आयुक्त तथा पुरुलिया के राजनीतिक सहायक के पास खबर के रूप में भेज देता था। इस तरह ऐसा भी आभास मिलता है कि डाल्टन को अपने अधीनस्थ वर्च के विचारों को मानना पड़ता था।

छोटानागपुर के आयुक्त डाल्टन ने, "डाल्टन के छोटानागपुर विद्रोह प्रतिवेदन" के रूप में छपे ११वें पृष्ठ में १६वें पत्र के रूप में बंगाल सरकार के सचिव, ए० आर० यंग, को लिखा है, "मुझे गत् महीने की २६वीं तारीख को सरायकेला के राजा का एक पत्र मिला। उक्त तारीख तक उसने अमन कायम रक्खा और रामगढ़ बटालियन के फौजों को भी सुदृढ़ रखा तथा उन लोगों की आर्थिक कठिनाइयों में भी कुछ मदद की। सरकारी कोषागार, अभिलेख और भवन राजा के द्वारा सुरक्षित रक्खे हुए हैं और मुख्य सहायक आयुक्त के जाने तक सुरक्षित ही रहने की उम्मीद है। पोराहाट के राजा से कोई मदद नहीं मिलने की सूचना मिली है। मैंने दोनों राजाओं को पत्र लिखा है जिसमें एक को समझाया है तथा दूसरे को प्रोत्साहित किया है"।

ऐसा दिखाई पड़ता है कि डाल्टन को सूचना देनेवाला सरायकेला का राजा था जिसे भागते हुए एक अंगरेज प्रशासक ने कुछ मनमाने ढंग से चायबासा की शासन व्यवस्था का भार सौंप दिया था। अतः वह इसके अलावे कुछ खबर देना पसन्द ही नहीं कर सकता था कि पोराहाट के राजा किसी तरह उसकी मदद नहीं करते हैं। फिर भी अन्त में सरकारी खजाना सितम्बर के आरम्भ में लूट लिया गया। लूटेरे रांची की ओर बढ़े। किन्तु पोराहाट के राजा अर्जुन सिंह ने उन्हें रोक दिया। ओ मैली ने यह दोष मढ़कर कि राजा अर्जुन सिंह ने लूटेरों को लूट का विशेष भाग दे देने को राजी किया, अन्याय ही किया है। तथ्य यह है कि ज्यों ही लेफ्टिनेंट वर्च १६वीं सितम्बर को चायबासा पहुंचा उसने सरायकेला के राजा के बहकावे में आकर बिना सोंचे-समझे आदेश जारी कर दिया कि अर्जुन सिंह अपने को समर्पण कर दें तथा सरकारी खजाने और सिपाहियों को सुपुर्द कर दें। पोराहाट के राजा अर्जुन सिंह की सेवाएं, तथा विशेषतः उनका विद्रोही सैनिक टुकड़ियों को वश में करना और लूटे हुए खजाने को अपने साथ सुरक्षित रखना आदि कार्यों की सदिच्छा को विस्मृत कर दिया गया। यह भी भुला दिया गया कि राजा

अर्जुन सिंह ने ही रांची के विद्रोहियों से मिलने जाते हुए वलवाइयों को रोका था। रांची से अंगरेज पहले ही हजारीबाग भाग चुके थे। राजा की इस तरह की सारी सद्-भावना पूर्ण कार्यों की बिलकुल उपेक्षा करके कहा गया कि "वह अपने को समर्पित कर दे"। राजा इन अमानुषिक व्यवहारों से और भी असन्तुष्ट हो गया।

उपरोक्त विचारों का पुष्टिकरण ३० सितम्बर १८५७ को लिखा हुआ ४१वें पत्ते से होता है जो फोर्ट विलियम, बंगाल सरकार के सचिव के नाम से प्रेषित है। उसमें डाल्टन लिखता है :—

"आज मैंने चायबासा के मुख्य सहायक आयुक्त से एक पत्र पाया है, जो गत २२वीं तारीख की जिले की स्थिति को सामने रखता है।"

"पोराहाट राजा ने उक्त तारीख तक सरकारी खजाने और विद्रोही सिपाहियों को समर्पित नहीं किया है और चूंकि लेफ्टिनेंट वर्च को यह दिखाना है कि राजा ने कोलों को उत्तेजित किया था, उसने कड़ा रुख अख्तियार कर राजा को बागी करार दे दिया है तथा उसको पकड़ने वाले को १,००० रु० ईनाम देने की घोषणा की है।"

"लेफ्टिनेंट वर्च ने इस प्रमंडल का भार अपने ऊपर लेते हुए बड़ी बहादुरी दिखलाई है, जब कि सरायकेला के राजा के सिवा उसे कोई मदद भी नहीं मिली। किन्तु वर्त्तमान परिस्थिति में जैसी परस्पर समावेश की नीति का अपनाया जाना, मेरे समझ में, आवश्यक है, वर्च के आचरण से वैसा प्रतीत नहीं होता है। मेरे समक्ष जो सूचना उपलब्ध है उसके अनुसार राजा की गिरफ्तारी के लिये पुरस्कार की घोषणा किया जाना बहुत कुछ अनुपयुक्त-सा मालूम पड़ता है और वह भी इस हालत में जब एक ओर तो राजा की विरोधी प्रवृत्ति प्रबल रूप में कार्य करेगी और दूसरी ओर राजा स्वयं घटनाचक्र के अनुकूल परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रहा था। साथ ही ऐसा हो सकता है कि सरकारी आदेशानुसार वह कार्य सम्पादन भी कर चुका होगा जब रांची के पुनः अधिकृत हो जाने की उसे खबर मिली होगी"।

डाल्टन घटनाक्रम में स्पष्ट देख रहा था कि पोराहाट के राजा ने लेफ्टिनेंट वर्च को कैसे नाराज कर दिया। १ अक्तूबर १८५७ को बंगाल सरकार के सचिव के नाम से प्रेषित डाल्टन का ४२वें पत्र से निम्नलिखित विचार प्रकाशित होता है :—

"पिछले दिन के पत्र संख्या ४१ के लिखने के पश्चात् मुझे चायबासा से २३ तारीख को लिखा हुआ लेफ्टिनेंट वर्च के ४३ वां पत्र की एक प्रति मिली जो आपको लिखी गयी थी। उसमें उन्होंने राजा को विद्रोही सिद्ध करने तथा उसके राज्य को जब्त करने के कारणों का दिग्दर्शन कराया है। मुझे यह युक्तिसंगत मालूम पड़ता है कि पोराहाट के राजा ने अपने प्रतिस्पर्धी सरायकेला के राजा की बड़ाई और सराहना होते देख कर ईर्ष्या और लज्जा के वशीभूत, लेफ्टिनेंट वर्च के आदेशों का पालन नहीं किया। सेना नायक वर्च का विश्वास है कि उसके मतलबों को राजा ने पूरा नहीं समझा है और उसे सलाह भी हानिकारक मिले हैं। मैं सोचता हूं कि राजा को विद्रोही घोषित करना, उसके राज्य का अपहरण कर लेना, और उसकी गिरफ्तारी के लिये पुरस्कार की घोषणा करना आदि कार्यों को बिना घटनाओं का अध्ययन किये ही शीघ्रता में किया गया है। लेफ्टिनेंट वर्च को इन आदेशों को जारी करने से पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए था कि उनके मतलब और विचारों से राजा पूर्णतया अवगत हो गये हैं"।

उसी पत्र में डाल्टन फिर लिखता है "मैंने आज ही प्रातःकाल पोराहाट राजा से एक अर्जी पाई है जिसमें कहा गया है कि चायबासा के सिपाहियों ने खजाना लूटने के पश्चात सरायकेला और खरसांवा होकर भागने का प्रयास किया, पर घाटों पर विरोध होने के कारण उन्होंने पोराहाट होकर ही जाना बेहतर समझा। इस पर राजा उनसे मिला तथा उसने उनसे हथियार और गोले बारुद एवं १,८५० रु० ४ आ० ८ पाई नगद इस इरादे से ले लिया कि उनके लौटने पर उन्हें वापस किया जायगा। लेकिन राजा आश्चर्यचकित हो गया कि उसके विरुद्ध सरायकेला की फौज तैयार थी और इसीलिये वह चायबासा भी नहीं गया। वह और भी विस्मयाभिभूत हो गया जब उसके पकड़े जाने की खबर उसे मिली। यह सब उसके इन सद्भावनाओं के रहते हुए किया गया कि वह खजाने, हथियार और फौजों को लौटा देना चाहता था।

पोराहाट राजा के प्रति डाल्टन के विचार

डाल्टन को इसमें तनिक भी सन्देह नहीं था कि लेफ्टिनेंट वर्च ने पोराहाट राजा को विद्रोही होने और उसके जागीर की जब्ती की घोषणा कर गलती की। उपरोक्त पत्र में वह फिर जिक्र करता है कि "पोराहाट राजा के राज्य की जब्ती और अधीनस्थ जमींदारों को उक्त आशय के पत्र देने में लेफ्टिनेंट वर्च अपने अधिकार से आगे बढ़ गया। ऐसा करने के लिये उसे अपने आसन्न उच्च अधिकारी और सरकार को अपने प्रक्रया की रूपरेखा देकर अनुमति ले लेनी आवश्यक थी"।

अंत में राजा अर्जुन सिंह डाल्टन से मिला और उसने उसके समक्ष लूटे हुए खजाने तथा सिपाहियों को सुपुर्द कर दिये। राजा ने इसे स्पष्ट कर दिया कि ज्योंही वह बागी घोषित किया गया, उसे भय हुआ कि सेनानायक उसके साथ विचारपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे और इसीलिये वह वहां नहीं गया।

डाल्टन यद्यपि उच्चस्थ पदाधिकारी था फिर भी उसे वर्च के सामने झुकना पड़ा। वर्च अर्जुन सिंह के खून का प्यासा था और उसी मतलब से फोर्ट विलियम में बंगाल सरकार के सचिव के साथ, स्थानापन्न आयुक्त की उपेक्षा कर, बराबर पत्राचार करता था। ३० सितम्बर १८५९ को बंगाल सरकार के सचिव के नाम एक दूसरे २२४ वें पत्र में डाल्टन ने विद्रोही कहे जाने वाले राजा अर्जुन सिंह के बारे में अपने विचारों को व्यक्त किया है। वह लिखता है कि "मेरे विचार से भूतपूर्व राजा अर्जुन सिंह को, रांची आगमन तक, जब कि उसने खजाना, अस्त्र-शस्त्र तथा विद्रोहियों को समर्पित किया था, विद्रोही नहीं कहा जा सकता है, बल्कि वह इन सेवाओं के लिये धन्यवाद का पात्र है।

"इतना स्वीकृत हो जाने पर वह अपना पूर्ण निर्दोष होने का प्रमाण भी पेश कर सकता है और वह भी, जब तक कि उसके आवास पर आक्रमण करके तथा उसकी सम्पत्ति को विध्वस्त करके उसे बागी नहीं बना दिया गया। इस तरह मैं बिना किसी हिचक के यह कह सकता हूं कि भूतपूर्व राजा के रांची से लौटने के बाद उसके चपल और संदिग्ध कार्य, उसके आवास पर आक्रमण सूचक तैयारियां, उसकी युद्ध घोषणा और बाद के परिणाम क्रमशः स्वाभाविक रूप में ही हुए।

यह बात ध्यान देने के लायक है कि उस समय भी राजा पूर्ण स्वतंत्र था जब डाल्टन ने उसे आत्म समपण करने का आदेश दिया और उपरोक्त पत्र के अनुसार यह आत्म समर्पण बिना किसी शर्त्त का कहा गया। डाल्टन ने आशा की थी कि सरकार उसे क्षमा प्रदान करेगी।

"परिस्थिति के वशीभूत राजा अर्जुन सिंह अकारण विशेष त्रस्त हो गया और उसने एक धारणा बना ली कि लेफ्टिनेंट वर्च के समक्ष आत्म-समर्पण उसके लिये मौत का भी रूप धारण कर सकता है। इस तरह विद्रोह का तूफान गुजर जाने के बाद भी प्रपंचवश वह विद्रोही ही बना रहा।

"अगर सरकार इन तथ्यों को स्वीकार करे तो मेरे विचार से अब मुकदमें की जांच की गुंजाइस नहीं रह जाती है।"

फिर भी डाल्टन, राजा के कपटपूर्ण व्यवहारों के आधार पर, उसकी जांच के विरुद्ध रहते हुए भी उसके राज्य की जब्ती के पक्ष में था। उपरोक्त पत्र में ही वह लिखता है कि "बहुत दिनों पहले ही कानूनी रूप से उसके राज्य का अपहरण हो गया है जिसके विरुद्ध हमें कुछ भी नहीं कहना है। भूतपूर्व राजा तथा उसके भाई का अत्यन्त पराक्रमी होने पर भी वहां के लूटे जाते हुए निर्दोष तथा शान्त किसानों के प्रति अनमनेपन को सोच कर, यहां तक कि उनके गांवों को लुटेरे द्वारा जलाते देख कर भी राजा की चुप्पी के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अपहृत राज्य की एक एकड़ भी जमीन वापस नहीं की जाय, बल्कि इन दोनों भाइयों की सिंहभूमि जिले में पदार्पण करना तक निषेध कर दिया जाय"।

लेकिन उपरोक्त विवरणों से विभिन्न आशय के प्रलेख राष्ट्रीय अभिलेखागार में प्राप्त हुए हैं। गृह विभाग के २९ जनवरी १८५८ की ३८वीं आमंत्रणा में ३१वां पत्र मिलता है जो मानभूमि तथा सिंहभूमि के स्थानापन्न आयुक्त के द्वारा २९ दिसम्बर १८५७ को बंगाल सरकार के सचिव श्री ए० आर० यंग, को प्रेषित है और लेफ्टिनेंट गवर्नर के ऐसे भावों की पुष्टि करता है कि राजा अर्जुन सिंह के उत्तर के अभाव में तथा उसके फरार हो जाने पर मात्र एक पक्षीय जांच में उसका अभिद्रोह प्रमाणित मान लिया गया। अतः आयुक्त को आदेश मिला कि उसके राज्य को अधीनस्थ कर लिया जाय और अगर एक महीने के अन्दर राजा अर्जुन सिंह आत्म-समर्पण नहीं करे तो पूर्ण रूप से राज्य जब्त कर लिया जाय।

उपरोक्त पत्र में मानभूमि तथा सिंहभूमि के आयुक्त ने उल्लेख किया है कि विक्षुब्ध वातावरण से राजा अर्जुन सिंह अपने लिये फायदा उठाना चाहता था। बल्कि आयुक्त ने लिखा है कि राजा के कर्मचारीगण चायबासा के कोलों में यह प्रचार करते पाये गये कि अंगरेजों ने देश छोड़ दिया और अब वे सब राजा के ही अधीन थे। अंततः एक चिट्ठी भी पोराहाट में ऐसी पायी गयी, जिसमें राजा के नाकफोरी कर्मचारी ने राजा को चायबासा का अधिकार लेने का आमंत्रण दिया था। मुंडा तथा मानकी जाति के लोगों को राजा के यहां बुला कर राजा अर्जुन सिंह के प्रति वफादारी निभाने की सलाह का भी उल्लेख उक्त पत्र में मिलता है। राजा के कुछ सिपाहियों ने डोरन्डा में विश्वनाथ शाही से सम्पर्क बढ़ाने की कोशिश की, तथा स्वयं राजा ने अपने पत्र के साथ एक मुकुन्द राय को उनके यहां भेजा था। आयुक्त के उल्लेखानुसार ११ और १२ सितम्बर को राजा के तरफ से सम्पूर्ण चायबासा बाजार में उदघोषणा कर दी गयी कि सबका स्वामी ईश्वर हैं तथा सारा देश राजा का है एवं राज्य करने वाले राजा अर्जुन सिंह हैं, जिन बातों का बयान गवाहों ने दिया। लेफ्टिनेंट वर्च के आदेशों को अनधिकार करार देकर अवहेलना कर दी गयी। राजा ने लम्बे पत्राचार और वादविवाद के बाद कैदियों तथा खजाने के पयों को वापस किया।

उक्त पत्र के अनुसार दवरु मानकी के ारा, ईश्वर का प्रतीक, एक तीर लेफ्टिनेंट वर्च को दिया गया और शपथपूर्वक कहा गया कि यह तीर उसको कोल्हन में प्रसारित करने के लिये मिला था। स बात को मोरा मानकी ने कबूल किया जिसे पहले ही एक तीर इसी आशय से मिला था और हरी तांती ने भी इसे स्वीकार किया जिसको राजा ने एक ऐसा ही तीर दिया था।

२९ जनवरी १८५८ की सैनिक समंत्रणा संख्या ८९० से जाहिर होता है कि १४ जनवरी १८५८ को चायबासा में सिंहभूमि और मानभूमि के सेनापति ई० लुसींटन और सिंहभूम के कोलों के बीच मो ा में प्रचंड युद्ध आ जिसके फलस्वरूप चारो अंगरेज अफसर और उनके कुछ आदमी घायल हो गये। लुसिंटन ने चांडिल कैम्प में शेखवत्ती बटालियन के सेनापति कर्नल फौस्टर से पत्राचार किया। परिणामतः कर्नल फौस्टर २, ३ दिनों तक तेजी से चल कर उसकी सहायता को आ पहुंचा।

११ मार्च १८५९ का गृह विभाग जन आमंत्रणा संख्या १३, में एक पत्र है जो आयुक्त डाल्टन के द्वारा बंगाल सरकार के सचिव के नाम से प्रेषित है (पत्रांक ३९, दिनांक २१ फरव ी १८५९)। उक्त पत्र ोराहाट के भूतपूर्व राजा तथा उसके भाई एवं अनेक विद्रोही नेताओं का बिना शर्त्त आत्मसमर्पण के ऊपर प्रकाश डालता है। डाल्टन का उल्लेख है कि भूतपूर्व राजा की रहस्यपूर्ण परिस्थिति का ख्याल करके उसने पोराहाट में फरारों के अवरोध के लिये तथा वर्च के कैम्प से उचित सम्पक बनाये रखने के उद्देश्य से खरसांवा गुप्तचरों के एक गिरोह को पोराहाट में रख छोड़ा था और मयूरभंज के राजा को अपने कैम्प के सामने करायकेला में रहने का आदेश दिया था। स आयोजन पर वह निश्चित था कि वर्च के आदमियों से वाध्य होकर, राजा अर्जुन सिंह अपने को अपने श्वसुर के हाथों समर्पित कर देगा। और इसी क्रम से घटनाएं भी गुजरीं। १५ फरवरी की रात को वर्च के जत्थे से विवश होकर राजा ने करायकेला में अपने श्वसुर के यहां शरण ली जहां से उसे शीघ्र ी चक्रधरपुर, डाल्टन के पड़ाव में, पहुंचाया गया। फिर भी अभी तक दो मुख्य विद्रोही नेताओं की छानबीन जारी ही थी, जिनमें रघूदेव और शामकरण थे।

डाल्टन का विक्षोभ

३० सितम्बर १८५९ को अपने २२४वें पत्र में आयुक्त डाल्टन ने सरकार के पास अभिस्तवन भेजा कि राजा अर्जुन सिंह और उनके भाई को समुचित वित्तीय व्यवस्था के साथ किसी खास जगह पर सरकारी निगरानी में रक्खा जाना ही काफी होगा। लेकिन स्पष्टतः उसके अभिस्तवन की अवहेलना कर दी गयी तथा लेफ्टिनेंट वर्च के विचारों का अनुमोदन किया गया। इस तरह लोगों की उत्सुकता और भी जाग्रत हो जाती है जब उक्त डाल्टन के पत्र को उसकी प्रमाणिक प्रति १८१८ में प्रकाशित 'छोटानागपुर में गदर का विवरण'' में उल्लेख नहीं पाया जाता है।

कुछ दिनों बाद आरोपों की सुनवाई सम्पन्न भी नहीं हुई थी कि अर्जुन सिंह बनारस में परलोक सिधार गये। सम्पूर्ण पोराहाट राज्य को जब्त कर लिया गया जो वर्तमान समय में कोल्हन खाश महाल है।

प्राचीन पत्राचारों के परीक्षण से प्रमाणित होता है कि राजा अर्जुन सिंह लेफ्टिनेंट वर्च के आलोचनात्मक नीति के आधार पर बगावत करने को वाध्य किये गये और यह दृश्य असीम दुखान्त हो गया जब सरकार के द्वारा डाल्टन के सद्विचार भी ठुकरा दिये

गये। इस घटने से ही मिलता-जुलता शाहाबाद जिले के जगदीशपुर में कुंवर सिंह के साथ की घटना है जिन्हें समान रूप से ही विद्रोही बनने को वाध्य किया गया था जैसा कि पटना प्रमंडल के आयुक्त, विलियम टेलर ने अपनी जीवनी में लिखा है। सचमुच ही अगर राजा अर्जुन सिंह रांची होते हुए कुंवर सिंह से सम्मिलित हो पाते तो छोटा-नागपुर में विद्रोह दमन इतना शीघ्र शायद ही हो पाता।

इस तरह राजा की राजबन्दी के रूप में बनारस में मृत्यु हो जाने के वाद उसके राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया गया और कुछ सरदारों तथा जमींदारों को उनकी राज-भक्ति स्वरूप सेवाओं के लिये पोराहाट राज्य के टुकड़े कर इनाम में दिये गये। कोयले की खानों तथा भालूपानी और रानग्रिन आदि ग्रामों को छोड़ कर सरायकेला परगना स्थायी बेलगान बन्दोबस्त के रूप में सरायकेला के राजा को दे दिया गया और ऐसे ही कुछ हिस्से खरसांवा के ठाकुर को भी दिये गये। बाकी राज्य सरकार के बन्दोबस्त में ही १८९५ ई० तक रहा। भूतपूर्व पोराहाट का राजा, १८९० ई० में बनारस में अपना एकमात्र लड़का कुंअर नरपत सिंह को छोड़ कर मरा। सरकार ने दया दिखाते हुए वितरण से बचे हुए पोराहाट राज्य को ४ अक्टूबर १८६५ को उक्त लड़के को सौंप दिया। किन्तु फिर १९३४ में राजा नरपत सिंह की मृत्यु के पश्चात् सरकार ने राज्य अपने जिम्मे कर ली।

सिंहभूम मंडल में विद्रोह की कहानियां, ब्रिटिश शासकों द्वारा सरदारों के छोटे-मोटे आपसी वैमनस्य में हस्तक्षेप करके, विषादमय वातावरण बनाने की ही है। सेनानायक वर्च ने सरायकेला के राजा से सम्पर्क बढ़ा कर पोराहाट राजा के विरुद्ध खास मतलब से विद्वेषण पूर्ण रुख धारण किया था। यह विस्मृत कर दिया गया कि चायबासा के वरीय सहायक आयुक्त सिसमोर के साथ-साथ सरायकेला के राजा ने भी कायरता दिखलाई थी जब उसने २०० संरक्षकों के साथ सिसमोर को सपरिवार रानीगंज भेज देने का बन्दोबस्त किया था। सरायकेला के राजा को मदद देना इसलिये भी उचित समझा गया कि उसने घाटों से होकर गुजरने वाले बागियों को पकड़वाने की व्यवस्था की थी। घटनाओं का विवरण (Narrative of Events), दिनांक ५ सितम्बर १८५७ जो गवर्नर-जेनरल औफ इंडिया-इन-कांउनसिल के द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट औफ डाईरेक्टर्स को भेजा गया था, सरायकेला के राजा की राजभक्ति की सराहना करते हुए लिखता है कि "राजा को सूचित कर दिया गया कि उसकी सेवाओं से सरकार प्रसन्न है"। इसी तरह के ९ सितम्बर १८५७ के दूसरे वणन में सिसमोर के बारे में कहा गया है कि पड़ोसी सरदारों का राजभक्त, उत्साही और हर तरह से मदद देने वाले रहने पर भी अपने स्थान को छोड़ना, अत्यन्त अपमानजनक और अनावश्यक होने के कारण कप्तान सिसमोर की सेवाएं मुख्य समादेश्य (His Excellency the Commander-in-Chief) के अधीनस्थ कर दी गयी और लेफ्टिनेंट वर्च चायबासा के प्रभारी नियुक्त हुए।

फलतः कप्तान सिसमोर ने अपने नागरिक पद से इस्तीफा देनी चाही जिसके लिये लेफ्टिनेंट गवर्नर से कोई आपत्ति नहीं हुई क्योंकि चिलियानवाला की लड़ाई में इस अफसर ने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। इस्ट इंडिया के गदर संबंधी विवरणों में जो २६ सितम्बर १८५७ को भेजे गये थे तथा संसद के दोनों सदनों के समक्ष पेश किये गये थे उल्लेख है कि १६ सितम्बर १८५७ को सरायकेला के राजा ने कोल्हन को अधिकृत करने के लिये कप्तान वर्च की बड़ी मदद की थी। "राजा की असाधारण राजभक्ति, सिसमोर को भेजने के पश्चात् सिंहभूम में अमन कायम रखने के लिये उनका सबल सहयोग आदि की ओर भारत सरकार का ध्यान आकृष्ट किया गया और सिफारिश की गयी कि उनकी सद्भावनापूर्ण व्यवहारों के प्रतीक-स्वरूप उन्हें शीघ्र गवर्नर जेनरल-इन-काउंसिल के द्वारा खिल्लत प्रदान की जाय।"

ये सब घटनाएं प्रमाण हैं कि ब्रिटिश शासक साधारणत: कुछ विश्वस्त व्यक्तियों को चुन कर और उन्हें हर तरह से सहारा देकर सबों के ऊपर विशेषत: उन्हीं इने-गिने व्यक्तियों के द्वारा शासन-कार्य चलाते थे। इस तरह के एक या दो व्यक्ति हर जगह मिल भी जाते थे। सिंहभूम का आन्दोलन काफी व्याप्त रूप में था, जिसमें कुछ आदिवासियों ने भी भाग लिया था। किन्तु भयंकर विद्रोह को बड़ी वेदर्दी के साथ कुचल दिया गया। कैदियों की सूची में, बहुत से लोग सिंहभूम जिले के थे, जिन्हें विभिन्न तरह के कैद और फांसी की सजा मिली थी। अगर राजा अर्जुन सिंह लम्बे अरसे तक संशयात्मक स्थिति में नहीं रहते तथा शीघ्र अंग्रेजों के पक्ष या विपक्ष किसी तरह के निश्चय पर डट जाते, एवं पूरे देहाती क्षेत्रों के कोलों का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ते, तो विद्रोह का बवंडर कुछ ऐसा उठता कि राजा अर्जुन सिंह और कुंवर सिंह की सम्मिलित ताकत अंगरेजों को काफी परेशान कर देती।

प्रारंभिक ब्रिटिश शासकों ने जिस उत्साह से जिले की जंगली जातियों को सभ्य बनाना शुरू किया, वह भी कुछ हद तक वहां, विपरीत परिणाम स्वरूप, क्रान्ति फैलाने में ही सहायक बनी। अंगरेजों ने अपनी इस नीति को जनता की मन: स्थिति समझे वगैर ही, निर्धारित किया था जो एक अदूरदर्शिता ही कही जा सकती है। बहुत दूरस्थ स्थानों से आदेश दिये जाते थे। नीति निर्धारक के नजरों में "हो" जाति के लोगों की विचार धारा ईश्वरीय अभिशाप जैसी थी। अत: प्रशासक जो विशेषत: फौजों में से लिये जाते थे, सदा भ्रान्तावस्था में ही पड़े रहे। एक ओर तो उन्हें आदेश मिलता था, जैसा कि २१ अक्तूबर १८५१ को ५७वें पत्र में लिखा है, कि सिंहभूम जिले में किसी वयस्क विवाहिता स्त्री को लालच देकर भगा ले जाने वाले को दंडनीय अपराधी नहीं माना जाय और दूसरी ओर उन्हें बराबर निर्देश मिलता था कि डायन प्रथा और "स.खा बाद" में गहरे विश्वास के विरुद्ध संघर्ष किया जाय। इसी तरह एक ओर तो उन्हें कहा जाता था कि हत्यारों को, जिस गांव में हत्या की गयी, वहीं फांसी दी जाय और दूसरी ओर उन्हें यह भी कहा जाता था कि जनता के साथ दयापूर्ण बर्ताव किये जायं। उन्हें बीमारियों की रोक-थाम के लिये अस्पतालों का तथा शिक्षा प्रचार के लिये स्कूलों का निर्माण करना था। और इन सबके विरुद्ध उनके सामने जटिल समस्यायें थीं। आदिवासी किसी भी बीमारी के लिये मात्र तीन कारणों को आधार मानते थे; या तो किसी प्रेत या वोंगा की नाराजगी या किसी असंतुष्ट वोंगा का सांसारिक सुख फिर से प्राप्त करने की इच्छा या डायनों की करामत। अत: किसी भी अस्पताल के लिये, इन विश्वासों के विरुद्ध काम करना था।

अंगरेजों की शासन-नीति भी कुछ इस तरह का विभिन्न मतावलम्बी वातावरण निर्माण करती थी, जो ब्रिटिश आधिपत्य को सबल बनाने में सहायक था। एक ओर तो सरायकेला के राजा को संरक्षण देकर एक मोतियों का हार जिसमें हीरे की धुंडी लगी हुई थी, दो हीरे का अंगद, एक सोने की घड़ी सिकड़ी के साथ, सोने से जड़ी हुई एक माल आदि खिल्लत के रूप में दिये गये और दूसरी ओर पोराहाट के राजा को फरार करार देकर खदेड़ा जा रहा था। बंगाल सरकार के सचिव, ए० आर० यंग, के पत्र संख्या १४८२, दिनांक ७ मार्च १८५९ ो, जो छोटानागपुर के आयुक्त को लिखा गया, मयूरभंज की राजभक्ति के ऊपर आक्षेप किया गया था। छोटे-छोटे राज्य जैसे क्योंनझर और खरसावां आदि संरक्षण में ले लिये गये और दूसरी ओर 'हो' जाति के कुछ लोगों के ऊपर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर लिया गया तथा उनके कुछ लोग जो राजा अर्जुन सिंह के साथ थे, उनका आखेट जैसा किया गया। ऐसा मालूम होता है कि सिपाही गदर के बाद सिंहभूम के उपायुक्त को गांगपुर वामरा और वोनाई राज्यों का देखभाल सौंपा गया। ये राज्य बाद में मिल कर

एक राजनीतिक अभिकर्ता (Political Agent) के अधिकार में सामन्तशाही राज्य जैसे बन गये। इन राज्यों की अन्दरूनी व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के लिये बड़ी सतर्कतापूर्ण नीति अपनायी गयी।

उपरोक्त "फूट डाल कर शासन करो" की नीति अन्त में सफल हुई और कुछ हद तक ब्रिटिस सत्ता को सुदृढ़ करने में भी सहायक हुई। बड़े राजबाड़ों के साथ गवर्नर जेनरल की जो नीति थी उसी को छोटे पैमाने पर सर्वत्र अपनायी गयी। लेकिन इस नीति का असर मानकी और मुंडा लोगों के ऊपर लागू करने पर अत्यन्त खतरनाक साबित हुआ। शासकों को इसका ध्यान रखना आवश्यक था कि उनके हाथों में जो आर्थिक और राजनीतिक अधिकार आये थे, उनके वे (मानकी तथा मुंडा) मेरुदंड थे। उनसे डर भी बना था और उन्हें तबाह भी करना था। मानकी के अधिकारों तथा उनकी पराकाष्ठाओं का निरुपन एक "परवाना" में किया गया, जो मानकी के लिये बिष के पत्र जैसा था। उन्हें कई खास बस्तियों की निगरानी रखनी पड़ती थी और पूरे दायित्व के साथ गवर्नर जेनरल के अभिकर्त्ता या उसके सहायक को जवाब देना पड़ता था कि उन बस्तियों में शान्तिपूर्ण वातावरण तथा नियमित रूप से निर्धारित कर की वसूली होती है या नहीं। उसे अभिकर्त्ता या उसके सहायक के आदेशों का भी पालन करना पड़ता था। लेकिन उसे "परवाना" मिलने के पहले शपथ लेना पड़ता था। इस तरह मानकी और राजा या जमींदारों के बीच एक दीवाल खड़ी कर दी गयी। सदियों से राजा तथा मानकी आपस में मिल-जुल कर रहते आ रहे थे। अब मानकी लोगों को आदेश के अनुसार शपथ खिला कर कबूल करवाया गया कि वे राजा या जमींदारों के लिखित या मौखिक किसी तरह के भी हुक्म की तामील नहीं करेंगे। यह विनाशकारी प्रयत्न था जिसके लिये ग्रामीण लोग तैयार नहीं थे। वे वशीपूर्ण कानाफूसी, गुप्त मंत्रणा और मूक विरोध बढ़ते गये और अन्त में इकट्ठे होते होते १८५७ में भभक उठे। स्थानीय सहायकों को, बिलाकंसन की उपयुक्त सलाह, कि धैर्य और उदारता के साथ जनकार्य किये जायं, बिल्कुल भुला दी गयी। सिंहभूम के राजा, सरायकेला के कुंवर, खरसांवा के ठाकुर, और मयूरभंज के राजा आदि को कोलों से सम्पर्क रखने के लिये मना किया गया जिससे वे कोई षड़यंत्र न कर सकें, लेकिन उसका असर उलटा अपने आप पर ही पड़ा।

निम्नलिखित प्रलेखों से, जो राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में पाये गये हैं, १८५७-५८ के बीच की सिंहभूम की परिस्थिति के ऊपर पूर्ण प्रकाश पड़ता है :—

मिलीटरी औफिसियल कन्सल्टेसन (Military O. C.) जो १८५७-५८ के विभिन्न दिनों में विभिन्न संख्या के साथ मिले हैं, पता चलता है कि शेखवत्ती बटालियन को पलामू और सिंहभूम का विद्रोह दमन करने का आदेश दिया गया, सिक्ख वोलंटियरों को पोराहाट के राजा और कोलों के विरुद्ध परिचालित किया गया, तथा लेफ्टिनेंट वर्च के मातहत में और भी सैनिक टुकड़ियाँ दे दी गयीं। इन प्रलेखों से स्पष्ट होता है कि गवर्नर-जेनरल-इन-काउंसिल ने उक्त सारी योजनाओं का समर्थन किया तथा अपनी सम्मति दी कि कोल-विद्रोही बिल्कुल दबा दिये जायं और यह दमन किसी भी रूप में असंगत नहीं बताया गया। चायबासा से चक्रधरपुर तक शेखवत्ती बटालियन का बढ़ना, सिंहभूम तथा मानभूम से बागियों का निष्कासन और अन्य योजनाएं, जो गदर को दबाने के काम आयीं, उनका विशद वर्णन हमें उक्त प्रलेखों में मिलता है।

सामंजस्य लाने तथा कोलों की परम्परानुगत युद्ध कला से उपयुक्त तरीके से फायदा उठाने के लिये उन्हें फौज में भर्त्ती की गयी। १४ दिसम्बर १८५७ की ५२० वीं सैनिक-समंत्रणा (Military Consultation) जो आयुक्त डाल्टन के द्वारा बंगाल

सरकार के सचिव के नाम से १७ अक्तूबर १८५७ को एक पत्र के रूप में प्रेषित है, छोटानागपुर मंडल के लोगों में से उपयुक्त फौजों के मिलने के बारे में वर्णन करता है। डाल्टन का उल्लेख है कि सिंहभूमि के कोल स्वभाव से ही युद्ध को पसन्द करने वाले होते हैं लेकिन अपना देश छोड़ना और कोई बेगार का काम करना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं होता। उनमें भी छोटानागपुर की अपेक्षा सिंहभूमि के कोल अच्छी शारीरिक शक्ति वाले होते हैं। रांची के कोलों को कहीं भी नौकरी करने में आपत्ति नहीं होती जैसा कि उन्हें भारतवर्ष के सभी भागों में और यहां तक कि समुद्रपार कर मौरीसस आदि दूसरे देश भी जाते देखा जाता है। लेकिन उनका कद कुछ छोटा होता है फिर भी उन्हें सुव्यवस्थित प्रशिक्षण मिलने पर, वे कार्यदक्ष और सक्षम हो सकते हैं। डाल्टन लिखते हैं कि हजारीबाग जिले में दुसाधों की एक जाति है, जो विश्वासी, परिश्रमी तथा जातिवाद से बिल्कुल अलग है और उनकी फौजों में बहाली की जा सकती है। पलामू के चेरो भी युद्ध-पसंद प्रवृत्ति के आदमी होते हैं लेकिन वे अपनी नियुक्ति ही नहीं चाहते हैं। दक्खिन के गोंद और कोन्द जाति के लोग भी बहादुर होते हैं और फौजों में बहाल होने के लिये मिल सकते हैं। इन सब के बावजूद डाल्टन का विचार था कि फौजी सिपाहियों में सभी उसी क्षेत्र के नहीं हों, उसमें कुछ गोरखा और सिक्ख लोग भी हों।

न्याय व्यवस्था के प्रतिकार स्वरूप सिंहभूम में १८५७ का आन्दोलन हुआ जो संभवतः अवश्यम्भावी था और यह किसी भी वाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से नहीं, बल्कि प्रशासनिक नीति की अन्दरुनी या और किसी सिद्धांतों के प्रतिरोधस्वरूप फैला था।

चतुर्थ परिच्छेद

पलामू

प्रशासनिक परिवर्तन

१८९२ ई० के पूर्व तक वर्त्तमान पलामू जिला लोहरदग्गा का ही एक भाग था। १८५८ से १८५९ तक इस जिले का वृहत्तर भाग तत्कालीन कोरुन्डा सबडिवीजन के अन्दर गवर्नर जेनरल के दक्खिन-पूर्वी सीमांत अभिकर्त्ता के अवर सहायक के अधीन था। इस अवर सहायक को पलामू जिले का भार ग्रहण करने के साथ ही दक्खिन-पच्छिम के दो करद राज्य, सिरगुजा और उदयपुर की निगरानी रखने का भी भार दिया गया। सिरगुजा क्षेत्र के अन्दर बंजर पहाड़ी भाग में कोरुन्दाह या जमीरापत में प्रशासनिक मुख्य कार्यालय स्थापित किया गया।

१८५७-५८ की क्रांति के पश्चात् छोटानागपुर प्रमंडल के आयुक्त की सिफारिश पर १८५९ में बंगाल सरकार ने कोरुन्डा प्रमंडल के अवर सहायक के मुख्य कार्यालय की स्थायी व्यवस्था पलामू में करने की स्वीकृति दे दी। लेस्लीगंज प्रशासनिक अधिष्ठान (Civil Station) के लिये उपयुक्त स्थान चुना गया। परन्तु बाद में इसे शाहपुर के ठीक सामने कोयल नदी के किनारे की अधिक उपयुक्त जगह मिलने पर छोड़ दिया गया। नूतन प्रशासनिक अधिष्ठान में १८६३ से कार्यारंभ किया गया। और इस जगह का नाम १८५७ के विप्लवी समय के आयुक्त डाल्टन के नाम पर डाल्टनगंज रक्खा गया। बंगाल सरकार की ३० अक्टूबर १८९१ की अधिसूचना के अनुसार १ जनवरी १८९८ से पलामू अनुमंडल से मंडल हो गया। लेफ्टिनेंट ए०ई० गोरडन को द्वितीय दर्जे का पलामू का आयुक्त नियुक्त किया गया जैसा कि कलकत्ता गजट के प्रथम भाग में ९३१वीं पृष्ठ में २ अक्टूबर १८९१ की सरकारी अधिसूचना के रूप में देखा जाता है।

भारत सरकार के संकल्प संख्या ३२९३, दिनांक ५ अगस्त, १८९१ के अनुसार इस पद की स्वीकृति दी गयी थी। फिर दूसरी अधिसूचना दिनांक ५ अप्रील १८९२ के द्वारा पलामू के उपायुक्त को आवश्यक न्याय करने के अधिकार दिये गये जो अबतक छोटानागपुर के उपायुक्तों को प्राप्त है। इस नवीन प्रशासनिक बन्दोवस्ती के साथ १८५९ में पलामू में मुख्य कार्यालय की स्थापना का आसन्न कारण यह था कि यह क्षेत्र १८५७ के आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र रह चुका था। ऐसा सोचा गया कि इस क्षेत्र में बृटिश शासन को समुचित रूप से कायम करने के लिये इसको पूर्ण अधिकारों के साथ अलग प्रशासनिक हस्ती प्रदान की जाय। पलामू अनुमंडल का मुख्य कार्यालय स्थापित करते समय भी यहां बाद में एक अलग मंडल बना देने की भावना ही काम कर रही थी।

प्रारंभिक इतिहास

पलामू का प्रारंभिक इतिहास कहानियों तथा परम्पराओं के रूप में वर्णित है। खरवार, ओराओं तथा चेरो ये तीन जातियों का ही इस क्षेत्र पर आधिपत्य था। प्राप्त शिलालेखों तथा स्मारक चिन्हों से ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र जंगली और अगम्य होते हुए भी पूर्ण सभ्य था। ओराओं लोगों का मुख्यालय शाहाबाद जिलान्तर्गत रोहतासगढ़

में था। और यहीं से पलामू के कुछ हिस्सों पर भी शासन किया जाता था। चेरो लोग पलामू में गत २०० वर्षों से शासन करते आ रहे थे और इनके शासकों में सबसे प्रमुख शासक के रूप में मेदिनी राय का नाम आता है जिसने जनश्रुति के अनुसार अपने को गया के दक्खिनी भागों तथा हजारीबाग और सिरगुजा के बहुत से हिस्सों में अपने को सर्वशक्तिमान घोषित किया। इनके पुत्र प्रताप राय ने अपने पिता के दुर्ग से अलग एक दुर्ग का निर्माण किया।

यवन शासन

बिहार का सूबेदार शाइस्ता खां ने सतरहवीं सदी के मध्य में चेरो जाति को कई युद्धों में हराया और यह क्षेत्र यवनों के प्रभाव में पूर्णरूपेण आ गया। अंततोगत्वा चेरो जाति के प्रधान ने भी यवनों की अधीनता कबूल की। पलामू के गढ़ों को मुसलमानों ने अपने अधीन किया और १६६६ ई० से पलामू, बिहार के सूबेदार के नियंत्रण में आ गया।

यवन शासनकाल में जब तक नजराना मिलता रहा मुसलमानों ने कोई विशेष हस्तक्षेप पलामू पर नहीं किया। समय-समय पर आकस्मिक विद्रोह की लहर भड़क उठती थी जिसे आसानीपूर्वक दबा दिया जाता था। १७४० ई० के करीब में यवन नवाब ने पलामू के पहाड़ी क्षेत्र के प्रधानों को हराने के लिये आक्रमण किया। बिहार पर सम्राट शाहआलम के आक्रमण (१७५६–६१) में सहायता देने के लिये नवाबों ने इसी क्षेत्र से सेना एकत्रित किया था।

अंगरेजों का आगमन

अन्य जिलों की भांति अंगरेजों ने निःसन्देह यहां भी विषाक्त वातावरण को देखकर हस्तक्षेप किया, परन्तु यहां वे दूसरे के निमंत्रण पर आये। डाक्टर जे० एन० सरकार ने अपने लेख "पलामू जागीरदार्स" जो बिहार अनुसंधान समिति (Bihar Research Society) की पत्रिका ग्रंथ खंड ६१, भाग चतुर्थ में उद्धृत है, लिखा है :—

'जिन परिस्थितियों ने ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना पलामू में डाली, उनकी प्रतिक्रियाओं से नये मालिक तथा अपदस्थ चेरो जाति के बीच असंतोष और शत्रुता का बीज भी बपन हुआ। अंगरेजों का सर्वप्रथम हस्तक्षेप, पलामू राज्य के कार्यों में, १७७२ में हुआ। उस समय चेरों राज्य घराने के दो प्रतिद्वन्दियों के बीच अनवरत घरेलू आपसी झगड़ा (१७२२–७०) चल रहा था। दो व्यक्ति अपने को न्यायसंगत राजा घोषित कर रहे थे। उनमें एक था बबुआन अथवा कनिष्ठ शाखा के प्रधान जय किसुन राय का पौत्र गोपाल राय और दूसरा था चित्रजीत राय जो मृत प्रधान शासक रणजीत राय का पौत्र था। दोनों ने अंगरेजों के समक्ष अभियोग लाया। अंगरेज जो राजस्व संग्रह में ही विशेष अभिरुचि रखते थे, पारिवारिक झंझटों को सुलझाने की अपेक्षा पलामू गढ़ को हस्तगत करने का विचार किया। चित्रजीत राय का दीवान जयनाथ सिंह ने राजा के अधिकार की प्राप्ति के बदले इतनी बड़ी कुर्बानी करने से अस्वीकार कर दिया। पटने की नियंत्रक परिषद् ने गोपाल राय के अधिकार का सम्मान किया। फरवरी, १७७१ ई० में अंगरेजों ने किला को अपने अधीनस्थ किया। गोपाल राय को तीन साल के लिये वार्षिक उपहार १८ हजार देने पर राजा (जागीर का प्रधान) घोषित किया गया। तथा गोपाल राय के समर्थक

उदवन्त राय को किला दिलाने की बधायी में परगने का कानूनगो नियुक्त किया गया। १७७३ ई० में गोपाल राय के दो संबंधी गजराज राय (विश्रामपुर परिवार के पूर्वज) और सुगंध राय (देवगांव परिवार के पूर्वज) ने राजस्व समाहरण में गोपाल राय का साथ दिया। गजराज और सुगंध ने उदवंत राय का प्रभाव प्राप्त करने के प्रयास में गोपाल राय का विरोध किया। उदवंत राय की हत्या के अभियोग में गोपाल राय कैद किया गया, और बाद में वह मृत्यु का शिकार बना। गजराज, गोपाल राय का नाबालिग उत्तराधिकारी भाई बसंत राय का प्रबंधकर्त्ता के पद पर आसीन हुआ। परन्तु उसकी नियुक्ति ने शिव प्रसाद सिंह (जयनाथ सिंह का भतीजा) के अधीनस्थ ठकुराइयों के साथ सुगंध सिंह के विरोध को और भी दृढ़ बना दिया। १७८६ ई० के श्री मैथ्यू लेस्ली के बन्दोबस्त के फलस्वरूप (जो १७८९ में दस साला बन्दोबस्त में स्वीकृत किया गया) ब्रिटिश समर्थक शिवप्रसाद सिंह को चूड़ामन राय का, जो बसंत राय (जो १७४३ ई० में मर गया) जी का नाबालिग सौतेला भाई था, प्रबंध कर्त्ता नियुक्त हुआ। विश्रामपुर तथा देवगांव के पुराने जागीरदारों के ऊपर वार्षिक कर नियत किये गये, साथ ही ठकुराइयों को विस्तृत भू-संपत्ति प्राप्त हुई।

परन्तु राज्य, वित्तीय भार के अतुल बोझ से दबा हुआ था। कर वसूली की प्रणाली भी इस तरह दोषपूर्ण थी कि पलामू राज्य शीघ्रातिशीघ्र दिवालियापन की ओर अग्रसर हो रहा था। उपाश्रित पट्टों के पुन: अधिकरण से विक्षोभ की लहर विस्तृत रूप से फैल गयी जिसके फलस्वरूप १८०० ई० में चेरो विद्रोह हुआ जो अंगरेजी सेना द्वारा दमन किया गया।

अन्तिम राजा चूड़ामन राय की अयोग्यता, कायरता तथा ऐयासीपन, असंतुष्ट जागीरदारों का विद्रोही आचरण और कर का बढ़ता हुआ बकाया राज्य को नीलाम होने की स्थिति में ला दिया। फलस्वरूप सरकार ने १८१४ ई० में पलामू राज्य, को ५१ हजार रुपये में खरीद लिया। पलामू राज्य को अपनी सामरिक स्थिति, भेदय सीमा की खबरदारी, क्षेत्र का पहाड़ और जंगलों से परिपूर्ण होना, विद्रोही स्वभाव वाले बासिन्दे और अहंकारी सामन्त वर्ग के कारण इसे एक शक्तिशाली शासक की जरूरत थी। शासक भी ऐसा हो, जिसकी सत्ता से जागीरदार वर्ग में भय की भावना हो परन्तु वह इतना कुशल और ईमानदार राजनीतिज्ञ हो कि उन्हें सताने की कोशिश नहीं करे। साथ ही साथ वह उनके अक्षुण अधिकार और सुविधाओं तथा वर्त्तमान कर व्यवस्था को पूर्णरूपेण पालन कर सके। अन्ततोगत्वा यह राज्य १८१४ ई० में तत्कालीन रामगढ़ बटालियन के संरक्षक मेजर रफ्सेज की सिफारिश से देव के राजा घनश्याम सिंह (गया जिला) को जिसने सरकार को कोल तथा खेरवार विद्रोहों के कुचलने में मदद दी थी, सालाना शुल्क ९,००० रुपये पर पारितोषिक रूप में दिया गया। १८१७ ई० में नये राजा के विरुद्ध, एक दूसरा, जागीरदारों का सार्वजनिक आन्दोलन हुआ। यह आन्दोलन राजा का उनके पट्टों के पुन: अधिकरण के प्रयास की प्रतिक्रिया थी। अतएव कृषि की दिक्कतों को सुलझाने हेतु सरकार ने सन् १८१९ में पलामू राज्य का प्रबंध अपने खास देख रेख में ले ली। यह व्यवस्था ३८ वर्षों तक याने १८५७ के आन्दोलन तक जारी रही। पलामू के चेरो तथा खेरवार जातियों ने १८३२ में रांची के महान कोल विद्रोह में भी विद्रोहियों का साथ दिया।

चेरो राज्य का विनाश

ब्रिटिश शासन का बलात संस्थापन चेरो राज्य को शनै:-शनै: परन्तु सतत सर्वनाश की ओर ले गया। ब्रेडलबर्ट के अनुसार अपने प्राचीन नायकत्व से वंचित होने के

कारण चेरों अब प्रधान संचालक नहीं रह गये थे। परन्तु यह कहावत लेश मात्र भी सत्य नहीं है। सचमुच यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि १८५७ ई० में चेरों वंश के पुनःस्थापन का प्रयास किया गया। चेरों राजपूतों की परम्परागत कटुता की वृद्धि वस्तुतः इस पुनःस्थापन के भाव के अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार और राजपूत ठाकुरों की मैत्री के कारण भी हुई। इसके अतिरिक्त यह दलीय गठबंधन जागीरदारों के भूमि संबंधी सांमतो असंतोष से और भी पुष्ट हुआ तथा उनके १८००, १८१७ और १८३२ के विद्रोह निकट भविष्य में आनेवाले भयंकर तूफान के धूमिल सूचक थे।

कोल विद्रोह

कोल विद्रोह एक ऐतिहासिक घटना थी, परन्तु इसका उचित अधिमूल्यन नहीं हुआ। ओमेली ने गत पलामू जिला विवरणिका में लिखा है "गया जिला के अन्तर्गत देव के राजा घनश्याम सिंह को पलामू उपहार के रूप में प्रदान किया गया क्योंकि घनश्याम सिंह तथा इसके अन्य परिवारों ने उग्र चेरो तथा खेरवार के आकस्मिक विप्लवों में सरकार को काफी मदद दिया था। यह आशा की गयी थी कि घनश्याम सिंह उनपर पूर्णरूपेण नियंत्रण रखेगा, परन्तु आशा पर पानी फिर गया। १८१७ ई० में पलामू में खुले आम सार्वजनिक आन्दोलन हुआ। यह आन्दोलन घनश्याम सिंह के क्रूर अभिकर्त्ताओं की मनमानी कर वसूल करने के विरुद्ध में हुआ था। १८२१ ई० में सरकार ने उपरोक्त उपहार पत्र को खंडन कर राज्य को अपने खास प्रबंध में कर लिया। पलामू १८३२ ई० के महान कोल विद्रोह के समय तक सरकार के अधीन शांत रहा। इस विद्रोह में चेरो तथा खेरवारों ने विद्रोहियों के साथ खुलेआम हाथ बटाया। समस्त छोटानागपुर के कोलों ने हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य विदेशी जो उनके इलाके में बस गये थे, उनपर धावा बोल दिया। विदेशियों के घर तथा माल जला दिये गये, कितने उनके शिकार भी बने। परन्तु यह विप्लव अन्य जगहों की अपेक्षा पलामू में उतना उग्र रूप धारण नहीं कर सका और शीघ्र कुचल दिया गया। उस समय से १८५७ के गदर के अल्पकालीन विप्लव के सिवा पलामू में शांति बनी रही।

१८५७ का विप्लव

"लोअर प्रोभिन्सेज में गदर के प्रभाव पर लेफ्टिनेंट गवर्नर का एक लेख" है जो गत पलामू जिला विवरणिका में उल्लेख किया गया है, तथा यहां उद्धृत किया जाता है।

पलामू जिला की जनसंख्या में चेरो तथा खेरवार जातियों की प्रधानता है। कहीं-कहीं कोल तथा दूसरे असभ्य जातियों की छिटपुट टोलियां मिलती हैं, जिन लोगों ने सर्वथा इस गदर में बहुत कम भाग लिया। इन जातियों के अतिरिक्त ब्राह्मण, राजपूत तथा दूसरे जाति भी थे, जो गदर के विपक्षी थे। कहा जाता है कि चेरों, जो कृत्रिम राजपूत परिवार के हैं तथा जिनका मूल स्थान कुमायूं था कुछ शताब्दी पूर्व यहां आये और यहां के असली राजघराने के परिवार को राजच्युत कर उनकी जगह पर अपने में से एक को प्रधान के रूप में स्थापित किया। उनके वंशज बहुत काल तक चेरो जातियों का मुखिया तथा प्रतिनिधि बना रहा। परन्तु अंतिम राजा जिसकी मृत्यु कुछ दिनों पू ` हो गयी थी, उसका कोई निजी उत्तराधिकारी नहीं था। चेरों ने अपने अनुयायियों को जागीर प्रदान कर अपनी स्थिति को बिल्कुल सुदृढ़ बना ली। उनमें से कुछ गरीब जागीरदार जिनकी भू-संपत्ति कर्ज के बोझ से बोझित है अब भी मौजूद हैं।

खेरवार लोग भी किंवदन्ती है कि वे रोहतास पहाड़ी के पश्चिम भाग के मूल वासिन्दा थे और वहां से आकर यहां बस गये। ये कई उपजातियों में विभक्त हैं, जिसमें भोगता प्रधान हैं। यह भोगता जाति सिरगुजा के उच्च भाग और पलामू के निम्न भाग के बीच के एक ऊंचे पठार में रहती है। यह पठार भाग पुनः पहाड़ियों की श्रेणी से विभक्त होता है। इन श्रेणियों के दर्रे तथा यहां के दुर्गम परकोटे पर आधिपत्य रहने के कारण इस जाति के लोग भयानक लुटेरे हो गये। इनका अंतिम प्रधान, जाति-निस्कासित होकर मरा। उसकी मृत्यु के उपरांत इस भूभाग को उसके दो पुत्र नीलाम्बर तथा पीताम्बर को जागीर स्वरूप नाममात्र के उन्मोचन शुल्क (Quit rent) पर अनुदान देकर अंगरेज शासको ने अपनी बाहुल्य बुद्धिमत्ता दिखलायी। उनकी इस कुशल नीति खेरवार प्रधानों में जन्म जात लूट खसोट की प्रवृत्ति को दबाने में पूर्णरूपेण सफल रही। संयोगवश पीताम्बर १८५७ की क्रांति के समय रांची में था। उसने सोचा कि शायद अंगरेजी राज्य का खात्मा हो गया। आठवीं देशीय पैदल सेना की दो कम्पनियां जो अमर सिंह से मिलने के लिये पलामू से होकर जा रही थीं, उनकी गतिविधि से उसका निर्णय और भी प्रबल हो गया। दोनों भाइयों ने अपने को स्वतंत्र घोषित किया, उसके बाद उन दोनों का प्रथम प्रयास, राजभक्त राजपूत जागीरदार, ठाकुर रघुबर दयाल सिंह तथा उसका चचेरा भाई ठाकुर किसुन दयाल सिंह के विरुद्ध प्रतिशोध लेने के रूप में हुआ जिनसे उनकी पुरानी शत्रुता थी। फलस्वरूप, अन्य चेरों जागीरदार भी भड़काये गये। उनलोगों को आश्वासन दिया गया कि चेरो का प्रधान ही सिंहासनारूढ़ होगा, तथा उनलोगों की खोयी सम्पदा का पुनः स्थापन किया जायगा। अतएव अक्टूबर के अन्त में नीलाम्बर तथा पीताम्बर के नेतृत्व में खेरवार तथा चेरो की एक टुकड़ी तथा करीब ५०० भोगताओं ने चैनपुर, शाहपुर और लेसलीगंज पर आक्रमण कर दिया। जैसा कि पहले बतलाया गया है कि चैनपुर की चढ़ाई रघुबर दयाल सिंह के पूर्व शत्रुता का कारण था, पर उन्हें मुंह की खानी पड़ी। फिर भी वे लोग लेस्लीगंज के आक्रमण में कुछ क्षति पहुंचाने, सार्वजनिक भवनों को नष्ट करने में, लूट खसोट तथा कुछ हत्या करने में सफल हुए। लेफ्टिनेंट ग्राहम जो इस समय मंडल का स्थानापन्न कनीय सहायक आयुक्त था, ५० सेनाओं की एक छोटी टोली लेकर आगे बढ़ा। भोगता लोग सिरगुजा पहाड़ी की ओर लौटे। ग्राहम सैन्य बल की कमी के कारण आगे उनलोगों का पीछा करने में असमर्थ था, अतएव चैनपुर में ही अधिक सेना पहुंचने की इन्तजार में ठहरे रहा।

नवम्बर के अंत तक सम्पूर्ण इलाके में अंगरेजों के विरुद्ध बगावत हो गयी। ग्राहम अपनी छोटी सैन्यदल के साथ रघुबर दयाल के घर में घेर लिया गया। उस समय विद्रोही दल सर्वत्र लूट खसोट मचा रहे थे। शेखबाटी बटालियन को पलामू भेजने का निश्चय किया जा चुका था, परन्तु मेरे अत्यावश्यक आग्रह पर हिज मेजेस्टी की तेरहवीं छोटी पैदल सेना की दो टुकड़ियां जो उस समय सहसराम में थीं मेजर कोटर के अधीन ग्राहम को मुक्त करने हेतु आगे बढ़ीं। मैंने उस समय देवराज से भेंट की और उनसे अशांत मंडल की रक्षा के लिये फौजी दस्ते की मांग की। २७ नवम्बर को बहुसंख्यक भोगताओं ने रजहारा स्टेशन पर आक्रमण किया। श्री ग्रंडी तथा मेलजर जो कोल कम्पनी में नियुक्त किये गये थे यथासंभव भवन की रक्षा में संलग्न रहे, परन्तु अंत में उन दोनों ने बड़ी मुश्किल से पलायन कर अपनी जान बचायी।

"मेजर कोटर की अध्यक्षता में दो कम्पनियों ने जिनमें दो बन्दूकें भी थीं, सहसराम के उप-पदाधिकारी श्री बेकर के साथ ३० नवम्बर को अकबरपुर के समीप सोन नदी पार किया। इस बीच ग्राहम को अनुदेशित किया गया कि मुक्त होते ही वह तुरत फौज के साथ लौट जाय तथा अतिरिक्त फौजों के आगमन पर फिर आगे बढ़ने का

प्रयास करे। आठ दिसम्बर को फौजी टुकड़ी शाहपुर पहुंच गकी और ले.फिटनेंट ग्राहम उनसे मिल गये। विद्रोहियों का प्रमुख नेता देवी बक्स राय उस समय तक कैद हो चुका था। फौज को बढ़ते देख विद्रोही वापस हो गये, परन्तु पलामू किला के आसपास मंका नामक ग्राम को जला दिया गया और ग्राहम के सहायक भिखारी सिंह का घर बर्बाद कर दिया गया। मेजर कोटर को घाट साफ करने के उद्देश्य से शेरघाटी होकर सहसराम लौट जाने की आज्ञा दी गयी। कुछ दूर तक ग्राहम साहब ने उसका साथ दिया। परन्तु विद्रोही दल देवी बक्स राय की कैद से जैसा कि पहले वर्णन हो चुका है निराश प्रतीत हो रहे थे और उनका संगठन भी क्षत विक्षत हो गया था। इधर बावजूद देवराजा अपनी सैन्यदल जिसमें ६०० बन्दुकची और १०० सवार थे सरकार की सहायता हेतु आ जुटा और मैंने उक्त पदाधिकारी को अपने पूर्व स्थान पर लौट जाने की अनुमति दी। वह २२ दिसम्बर को किसनपुर पहुंच गया। पटनघाट जिसे भोगताओं ने अपने कब्जे में कर लिया था, उसके आगमन पर ही छोड़ दिया गया। राँका दुर्ग पर असफल आक्रमण के पश्चात् वहां विद्रोहियों को किसन दयाल से मुंह की खानी पड़ी और चैनपुर से भी भाग जाना पड़ा।

"सिरगुजा के सरबरहकार ने ६०० आदमियों का फौजीदल, ग्राहम की मदद के लिये भेजा जिनकी सहायता से ग्राहम केवल अपनी स्थिति सम्हालने लायक ही नहीं हुआ, बल्कि वह आक्रमण करने के योग्य भी हो गया। यह सुनकर कि कुंडा का इलाकादार प्रेमानन्द, जो खेरवार जाति का एक महान प्रभावशाली नेता था और साथ ही वह अपने चार प्रमुख आदमियों तथा ७५ अनुयायियों सहित पड़ोस में पहुंचा हुआ था, ग्राहम ने एक सैन्यदल भेजा जिसने उस नेता को आश्चर्यचकित कर दिया। नीलाम्बर शाही अभी भी सैन्य संगठन में संलग्न था तथा उसने बाद में दो ग्रामों को भी लूटा। वह बड़ी सावधानीपूर्वक जंगल में ही रहा और अपने पर आक्रमण का मौका तक आने नहीं दिया। सिंगरौली राजा, जो रेवा राज्य का अक्सर अवहेलना करने वाला, आश्रित था, के अनुयायियों ने, बिना रेवा राजा की अनुमति के, सिरगुजा पर चढ़ाई कर दी।

"१६ जनवरी को कप्तान डाल्टन ने स्वयं मैक्डोनाल्ड के अधीन १५० देशी पैदल सेना, रामगढ़ अश्वसेना का एक छोटा दल तथा बन्दूकचियों का एक दल परगनेट जगतपाल सिंह के संरक्षण में लेकर, पलामू पर चढ़ आया। जगतपाल सिंह वह नेता था जिसने समय-समय पर अंगरेजों के साथ अपार राजभक्ति दिखायी थी और फलस्वरूप उसे खिल्लत, उपाधि तथा पेन्शन से अनुभूषित किया गया था। २१ जनवरी को डाल्टन मैंका पहुंचा और ग्राहम जो रात्रि में वहां पहुंच गया था उसे साथ लेकर उसने आगामी प्रातःकाल को सैन्य दृष्टि से पलामू गढ़ की परीक्षा के पश्चात् गढ़ को दुश्मनों के अधीन पाया। डाल्टन इत्यादि ने शीघ्र आक्रमण करने का निश्चय किया, तीन ओर से वे दुश्मन के विरुद्ध आगे बढ़े। विद्रोही दल कुछ देर तक मैदान में डटे रहे, परन्तु अन्धाधुन्ध गोले की वर्षा से उनके पांव उखड़ गये। वे लोग बन्दूक अस्त्र शस्त्र, जानवर, तथा रसद की सामग्रियों को छोड़कर भाग गये। शत्रुओं की दस लाशें पायी गयीं। हमलोगों की तरफ एक की मृत्यु हुई थी तथा दो घायल हुए। नीलाम्बर, पीताम्बर तथा नकलौत मांझी के पत्राचार भी थैलों में पाये गये। अमर सिंह से किये गये पत्राचार में कुंवर सिंह के द्वारा शीघ्र सहायता देने की आशा प्रदान की गयी थी। इस समय तक कुछ प्रमुख विद्रोही गिरफ्तार किये जा चुके थे। टिकैत उनारस सिंह तथा उसका दीवान शेख भिखारी को विद्रोहियों से संबंधित होने के अभियोग में कैद करने के बाद फांसी दे दी गयी।

"आयुक्त, ८ फरवरी तक लेस्लीगंज में रसद बटोरने तथा अन्य आयोजन में व्यस्त रहा। तैयारियों के बाद वह भोगता क्षेत्र में आक्रमण करने हेतु २,००० सेनाओं के साथ चढ़ आया। नीलाम्बर और पीताम्बर का सैन्यदल घटकर १,००० से अधिक नहीं रह गया था। इसी बीच डाल्टन ने जागीरदारों की उपस्थिति हेतु परवाना निकाला। बहुतों ने उसकी आज्ञा का पालन किया, परन्तु सबसे प्रभावशाली तथा शक्तिशाली व्यक्ति बाबू भवानी बक्स राय जो चेरा का प्रधान था कुछ समय तक अनुपस्थित रहा, और कहा जाता है कि वह डाल्टन की सामना हेतु अतुल सैन्यदल एकत्रित कर रहा था। उसने इस हेतु रामगढ़ विद्रोहियों की भी स्वागत की था। तथापि वह ३ फरवरी को उपस्थित आ और इस तरह हमलोगों के मार्ग का बड़ा कंटक दूर हो गया। सैन्य विभाजन के बाद डाल्टन ने एक टुकड़ी को किसन दयाल सिंह के साथ और दूसरी टुकड़ी को शाहपुर की ओर बाघमारा घाट के लिये रवाना किया और स्वयं वह तुंगरी घाट के आक्रमण के लिये बढ़ा। १० फरवरी को ज्योंही वह वहां पहुंचा तो उसे ज्ञात हुआ कि विद्रोही, जिन्होंने घाटी को पहले अधिकृत कर रखा था, इस समय पड़ोस ग्राम हरनामर में लूटपाट मचा रहे थे। लेफ्टिनेंट ग्राहम, सवार का एक दल लेकर, शत्रुओं के मार्ग को रोकने में सफल हुआ तथा कुछ जानवरों तथा कैदियों को जिन्हें वे लोग लेकर भगाना चाहते थे, मुक्त किया। तीन व्यक्ति कैद किये गये जिनमें एक प्रभावशाली नेता भी था। दो को फांसी की सजा दी गयी और एक को जानकारी हासिल करने के लिये रोक लिया गया, क्योंकि वह बतलाने की मुद्रा में था।

"भोगता क्षेत्र में प्रवेश करने में कोई बाधा नहीं हुई और १३ फरवरी को वे चेमू, जो कोयल नदी के किनारे स्थित था और जहां विद्रोही भोगताओं का प्रमुख निवास-स्थान था, पहुंचे। चेमू में उनका परकोटादार किला भी था। कप्तान डाल्टन ने कोयल नदी पार की, परन्तु विद्रोहियों ने उसके आक्रमण की प्रतीक्षा न कर पूर्व ही गांव की ओर जैसे प्रविष्टि होते पर्वत खंड की गुप्त पहाड़ियों में जा छिपे। क्रमशः आक्रमण शुरू हुआ और दुश्मन के पैर उखड़ गये। पलायन के प्रारंभ में ही रामगढ़ अश्व सेना का एक दफादार मारा गया। बाद में ग्राम तथा परकोटेदार निवास स्थान को बरबाद किया गया तथा सनेया भीं, जो चेमू के पास ही दूसरा दुर्ग था खाली तथा बीरान पाया गया। अन्न और जानवरों की बड़ी तायदाद पर कब्जा हुआ और कई चरवाहे जिन्हें विद्रोहियों ने कैद कर रखा था, मुक्त किये गये।"

"आयुक्त भोगता क्षेत्र में २३ फरवरी तक रहे, परन्तु वह दल के सरदार, नीलाम्बर और पीताम्बर को कैद करने में असफल रहे। सभी दिशाओं में लगातार सैन्यदल भेजना जारी रहा। वे उनके गहन जंगल और पहाड़ों की खाक छानते रहे, जिस ओर पलायमान व्यक्ति बढ़े थे उन्हें उसी ओर खोजा गया। कुछ प्रभावशाली व्यक्ति को गिरफ्तार भी किया गया, परन्तु धमकी और प्रलोभन के बावजूद भी वे अपने अभिनेता के गुप्त स्थानों को बताने से इन्कार किये। उनके कुव्यवहारों का पूर्ण प्रतिशोध लिया गया। उनके ग्राम जलाये गये, उनके माल और जानवर तथा राज्य को जप्त किया गया। एक ओर विद्रोहियों पर सख्त न्याय बरता जा रहा था परन्तु दूसरी ओर अल्प दोषी अनुयायियों तथा बासिंदों को जो शान्त हो जाने की मुद्रा में थे उनको मिलाने का भी प्रयत्न किया जा रहा था।

"नवागढ़ पहाड़ियों में विद्रोहियों का एक दल मार्च के मध्य में गणपत राय तथा विष्णुनाथ शाही के संरक्षण में एकत्र हो रहा था। कप्तान डाल्टन ने उनलोगों पर आक्रमण के उद्देश्य से लोहरदग्गा की ओर प्रस्थान किया, परन्तु बीमार पड़ जाने के कारण उसने इस कार्य के लिये कप्तान ओकस को नियुक्त किया, जो कप्तान नेशन की अध्यक्षता

में मद्रास राइफल्स, रामगढ़ इर्रेगुलर केभेलरी और १६० कोल तथा संथाल सेनाओं के साथ शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ कर दुश्मनों को घेरने के प्रयास में सफल हुआ। विद्रोही वर्ग पूर्ण चकाचौंध में पड़ गये और वे सामना नहीं कर सके। विश्वनाथ शाही तो घटना स्थल पर ही कैद कर लिया गया और गणपत राय, जो उस समय पलायन में सफल हुआ, शीघ्र ही जमींदारों तथा बन्दूकचियों द्वारा पीछा करने के बाद पकड़ा गया। इन विद्रोहियों पर मुकदमा चलाने के बाद दोषी ठहरा कर फांसी की सजा दी गयी।

"इसके बाद पलामू जिले में अन्य कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी और शान्ति तथा विश्वास का पूर्ण पुनस्स्थापन उत्तरोत्तर समयानुसार ही होने की उम्मीद है। नीलाम्बर और पीताम्बर शाही अब भी स्वतंत्र हैं यद्यपि वे अपने अनुयायियों के परित्याग से फरार के रूप में दयनीय स्थिति में हैं, अतएव आयुक्त के मतानुसार उनसे अब खतरे की संभावना नहीं है। मैं लेफ्टिनेंट ग्राहम की प्रशंसा किये बिना विषयान्तर करना नहीं चाहता, जिसने हजारों शत्रुओं से घिरे रहने पर भी बिना किसी अंगरेज की सहायता के कभी लौटने को नहीं सोचा और अपने पद पर मुस्तैदी से डटकर सम्पूर्ण जिला को शत्रुओं के हाथ में जाने से पूर्णतः बचा लिया।"

ओमेली ने गत पलामू जिला विवरणिका (१९०७) में उपरोक्त वृतांत को आगे इस प्रकार लिखा है:—

"उपर्युक्त वर्णन में यह जोड़ देना पर्याप्त होगा कि नीलाम्बर तथा पीताम्बर शाही अंत में पकड़े गये। उनपर मुकदमा चला कर फांसी दी गयी। उनकी गिरफ्तारी के बाद मंडल में अमन चैन फैल गया। स्थानीय सहायता के फलस्वरूप चैनपुर के ठाकुर रघुबर दयाल सिंह, रंका के ठाकुराइ किसुन दयाल सिंह तथा मंका के भिखारी सिंह को जागीर प्रदान की गई"।

१८५८ का संकट

गत जिला विवरणिका का उपरोक्त लम्बा उद्धरण इस आन्दोलन का एकांकी चित्र देता है। यह कहना सर्वथा अनुचित होगा कि १८५८ के प्रारम्भ में नीलाम्बर और पीताम्बर की गिरफ्तारी और फांसी के बाद पलामू का आन्दोलन खत्म हो गया। छोटानागपुर प्रमंडल के आयुक्त के अभिलेखागार (रांची) में कितने पत्राचार हैं, जिनसे स्पष्ट है कि क्रान्ति की प्रधूमित अग्नि अनुकूल वायु के सहारे अभी तक सुलग ही रही थी। डाक्टर जे० एन० सरकार ने अपने "पलामू के जागीरदार" नामक लेख में ऐसे अनेकों पत्रों को अंकित किये हैं। कुछ और भी पत्र प्राप्त हुआ है जिसका उल्लेख आगे किया गया है।

"क्रान्ति की पृष्ठभूमि"।

चेरो, भोगता तथा खेरबार के विरोध के अतिरिक्त इसमें सन्देह नहीं है कि पलामू जिला में क्रान्ति का तत्कालीन कारण रांची और हजारीबाग जिले का विद्रोह रम्भ हुआ। जैसा कि पूर्व में वर्णित है पीताम्बर ने स्वयं रांची में रामगढ़ पलटन के विध्वंसात्मक कार्यों को देखा। पलामू लौटने पर वहां से होते हुए रोहतास की ओर जाने वाली हजारीबाग रेजिमेंट से फायदा उठाकर उसने भोगता लोगों को भी विद्रोह का संकेत दिया। इसमें तनिक भी शंका नहीं है कि पहाड़ी जातियां क्रमिक सत्ताहीन

हु जाने से भीतर-भीतर अत्यधिक नाराज हो रहे थे अ : वे इस सुअवसर से फायदा उठाकर अपनी स्वतंत्रता हासिल करने के प्रयास में सन्नद्ध हुए। परन्तु यह संकेत सिर्फ पहाड़ी जातियों तक सीमित नहीं था। आन्दोलन शनैः शनैः जनसमूह में बिखर गया। चेरो और भोगता आपस में मिल गये। उनलोगों ने, ठाकुर रघुबर दयाल को जो उनके दुश्मन थे और अंग्रेजों के खैरख्वाह थे, अपना पहला निशाना बनाया। कप्तान डाल्टन का मत है कि रघुबर दयाल पर केवल पुरानी शत्रुता के आधार पर आक्रमण किया गया था। किन्तु इस मत से सहमत होना ठीक नहीं है। विद्रोह का कारण गर्हित था। आक्रमण का असली ध्येय अंग्रेज थे और उनके दलाल के रूप में रघुबर दयाल पर निशाना किया गया। रघुबर दयाल के ऊपर आक्रमण संकेत मात्र था। अभिलेखों से जो अब भी प्राप्य हैं जाहिर होता है कि अंग्रेज-समर्थक जमीन्दारों के रोकने के प्रयास के बावजूद भी पलामू क्षेत्र में क्रान्ति की लहर शीघ्रातिशीघ्र फैल गयी। यह संभव है कि चेरो की दयनीय आर्थिक दशा ने आग में घी का काम किया। एक बड़ी तायदाद में छोटे-छोटे चेरो जागीरदार जिला में बस गये थे और वे अपनी भू-सम्पत्ति विशेषतः बंधक में रख दिये थे। डाल्टन के अनुसार अनेकों जागीरदारों ने बन्धक की बला को टालने हेतु विद्रोहियों का साथ दिया। इसमें अत्युक्ति नहीं प्रतीत होती है।

आन्दोलन का वर्णन जो गत जिला विवरणिका से उद्धृत किया गया है उसकी पूर्त्ति डाक्टर अ० एन० सरकार लिखित "पलामू जागीरदार" के उल्लेख से की जा सकती है। वे अपने वर्णन को दो भागों में विभक्त किये हैं—एक १८५७ के अक्टूबर से १८५८ का फरवरी तक और दूसरा फरवरी से १८५८ के नवम्बर तक। जिला विवरणिका के उद्धरण में द्वितीय भाग (१८५७ की फरवरी से नवम्बर तक) का वर्णन का निदश नहीं है। अतएव इस भाग का संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

शाहाबाद और पलामू

शाहाबाद जिला, जो क्रान्ति के अग्रणी बाबू कुंवर सिंह का निवास स्थान था, उसका प्रभाव सदैव से पलामू के सीमा पर रहा है। २६ अप्रैल १८५८ को बाबू कुंवर सिंह के निधन के पश्चात उनके भाई बाबू अमर सिंह ने उनका पद ग्रहण किया और अंग्रेजों का मुकाबला करते रहे। शाहाबाद के विद्रोही ढ़ और पलामू पहुंच गये। शाहाबाद के दूतों ने असंतुष्ट भोगताओं से सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें अमर सिंह के सैन्य दल की सहायता के लिये प्रेरित करने का प्रयास किया। आयुक्त ने ३० सितम्बर, १८५८ को बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर को सूचना दी कि भोगताओं को शाहाबाद के विद्रोहियों से साँठ-गाँठ करने से रोका जायगा। इस हेतु कप्तान डलेस की फौज तथा कोल और संथालियों की टुकड़ी के सहित लेफ्टिनेंट रीव्स को पलामू में रहने के लिये आयुक्त, गवर्नर का अनुमोदन लेना चाहता था। इसके अतिरिक्त वह यह भी चाहता था कि रामगढ़ बटालियन की फौजी दस्ता के अधिकारी वर्ग भी संबलपुर से लौट कर यहां प्रस्तुत रहें।

शाहाबाद के कुछ विद्रोही १८५८ के नवम्बर में सोन नदी पार कर मझियांव पहुंचे और ऐसा मालूम होता था कि वे गढ़वा पर आक्रमण करना चाहते थे। यह ५०० विद्रोही भोगताओं के दल का पुनः लूटपाट मचाने का संकेत था। कप्तान डेविस और डेल, ९ नवम्बर १८५८ को लेफ्टिनेंट ग्राहम से मिले और उनलोगों ने विद्रोहियों को हगाया। चेचारी के भैया (जमीन्दार) ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार की। लेसलीगंज

से अंग्रेजी सेना दो भागों में विभाजित होकर तीव्र गति से आगे बढ़ी। पश्चात् घटनाओं का उल्लेख डाक्टर जे० एन० सरकार ने इस प्रकार दिया है :--

"जब कप्तान डेविस चेचरी के समीप सुनया की ओर बढ़ा, ग्राहम चक्कर काटता हुआ रामकुंड होते हुए दक्खिन की ओर गया। बरगर थाना के छोटे रक्षकदल तथा शस्त्र आरक्षीगण विद्रोहियों की बड़ी तायदाद में आक्रमण की संभावना क ख्याल कर आयोजित युद्ध-नीति से कुन्हार नदी पारकर १८ नवम्बर १८५८ को सिरगुजा लौटे। भोज और भारत के नेतृत्व में भोगताओं की एक शाखा ने थाना भवन को विध्वंस किया तथा फसलों को काटना आरम्भ किया। आरक्षी दल ने कुन्हार नदी पारकर सिरगुजा को भागते समय दो कोलों को पथ-प्रदर्शक के रूप में लिया जिन्होंने उन्हें महान गहन कानन के संकीर्ण मार्ग को तय करते हुये ठीक लुटेरे भोगताओं के पास पहुंचा दिय। भोगतावर्ग आश्चर्य चकित हो गये तथा लड़ाई में अनेकों हताहत हुए। १६ मारे गये, ३० घायल हुए तथा ३ कैद कर लिये गये। परन्तु दोनों नेता किसी प्रकार अश्व पर सवार होकर भाग गये। सरकार की तरफ सिर्फ तीन घायल हुए।

"उमों सिंह (अमर सिंह) के नेतृत्व में २४ नवम्बर १८५८ को विद्रोहियों का एक दल कुरांडा (कोरंडा) में खेमा गिराया। यद्यपि विद्रोही दल छोटा था फिर भी आयुक्त ने संबलन हेतु दो युरोपियन सैन्य दल को रांची प्रस्थान के लिये सुझाव दिया जो छोटानागपुर में बढ़ते हुए विद्रोहियों को रोक सके तथा आवश्यकतानुसार कप्तान डेविस की मदद करें, जिससे रांची की मद्रास इनफैन्ट्री सिंहभूम को भेजी जा सके।

"सिधुवा सिंह (सीधा सिंह) के नेतृत्व में सचमुच १,१०० विद्रोहियों ने ३० नवम्बर १८५८ तक पलामू में प्रवेश किया। सुनया जो विद्रोहियों का केन्द्र था, वहां के राम बहादुर सिंह संभवतः उनका दूसरा प्रमुख नेता था। तथाकथित संख्या में, ६०० के साथ फौजी बन्दूकें थी। दूसरे एक ९०० के दल का भी सनया में मिल जाने की खबर थी।

"बिहार के अधिकारियों ने ग्राहम के अनुरोध से ब्रिगेडियर डगलस की फौज का एक हिस्सा उसके संबलन के लिये पलामू जिला के चैनपुर में भेजना चाहते थे। चैनपुर में ग्राहम की स्थिति रक्षनीय थी। चेचारी में कप्तान डेविस ने शाहाबाद के विप्लवकारियों की सूचना पर न्यायपूर्वक उचित कार्रवायी की।

"अंग्रेजों की योधन नीति यह थी। विप्लवकारी रसद के अभाव में अधिक दिनों तक मायापहाड़ियों में नहीं टिक सकते थे और यदि वे छोटानागपुर का मार्ग साफ पाते तो उधर बढ़ने के लिये जरूर कोशिश करने। कप्तान डेविस उनलोगों की गति अवरुद्ध करने के लिये बहुत ही उपयुक्त स्थान में था। उसने ग्राहम से मिलने का प्रयास नहीं किया। पलामू की छोटी सेना, सनया के विद्रोहियों को, छोटानागपुर की ओर जाने से रोकने के निमित्त उन्हें एक जगह स्थिर कर दिया गया। अतएव आयुक्त ने सैन्यदल भेजने की उपादेयता सिर्फ पलामू में ही नहीं समझ बल्कि छोटानागपुर में भी और इसलिये उसने सरकार से मिन्नत की कि हिज मेजेस्टी की २९वीं सेना की दो कम्पनियां जो हजारीबाग को प्रस्थान करने के लिये थी, उन्हें तुरत रांची भेजने की अनुमति दी जाय और उनके स्थान पर एक या दो कम्पनी हजारीबाग भेजी जाय।

"कप्तान डेविस, ११ नवम्बर से १ दिसम्बर १८५८ तक अकोसर (अकसी) नामक गाँव में डटा रहा जिसमें विप्लवकारियों को वहां से रसद की सामग्री प्राप्त न हो। यह स्थान बड़ा ही सर्वोपरि था क्योंकि कप्तान डेविस की फौज सिरगुजा के राय की फौज के सहयोग से विद्रोहियों को दक्षिण तथा पूर्व की ओर बढ़ने या हटने से उन्हें रोके रहा।"

करीब ५०० की संख्या में एक मजबूत सैन्यदल १३ नवम्बर को चैनपुर जाकर ग्राहम के साथ मिलाया। ये लोग मायापुर में ठहरे जो विद्रोहियों के स्थान से सिर्फ कुछ ही दूर पर था। लेफ्टिनेंट ग्राहम रामगढ़ बटालियन के १७० सिपाहियों तथा कोल और संथाल की सेनाओं को मिलाकर अपनी सैन्य संख्या बढ़ाय।

भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार में अनेकों प्रलेख हैं जो पूर्व वर्णित तथा नवीन घटनाओं पर काफी प्रकाश देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शासनाधिकारियों ने पलामू का योधन नीतिक महत्व और इसके आन्तरिक विप्लवों को पूर्णरूपेण समझा। पलामू की रक्षा हेतु वे अत्यधिक चिंतित थे। कई प्रलेखों में विद्रोहियों को दक्षिण शाहाबाद से हटाने के बाद पलामू में उनके प्रवेश को रोकने की महत्ता पर विशेष जोर है (पब्लिक ओ० सी० १ली अक्तूबर १८५८, नं० ३१-३२) भारत सरकार के गृह सचिव के पास बंगाल सरकार के सचिव के १२ दिसम्बर १८५८ के पत्राचार में बिहार की अरक्षित स्थिति तथा शाहाबाद और अवध के क्रान्तिकारियों को पलामू प्रवेश की सद्भावना के बारे में कहा गया है (पब्लिक ओ० सी०, २२ अक्तूबर १८५८, नं० २६–३२)। इस पत्र में शीघ्रातिशीघ्र सैन्य की वृद्धि की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया गया है। एक दूसरा पत्राचार (पब्लिक ओ सी०, २९ दिसम्बर १८५८, नं० ३१–३३) में भी विद्रोहियों को हरेक हालत में पलामू में नहीं जाने देने की बात पर अत्याधिक जोर दिया गया है। इस लेख में यह भी बतलाया गया है कि यदि भोगताओं को और भी मदद मिली तो परिस्थिति अत्यन्त ही चिन्ताजनक हो जायगी। कोल और संथाल से सहायता मिलने की आशा थी। २९ अक्तूबर १८५८ के पत्राचार में पुनः शाहाबाद के विद्रोहियों का पलामू प्रवेश और फलस्वरूप वहां की तत्कालीन बिगड़ी हुई परिस्थिति को और भी गंभीर बना देने की आशंका की गयी है।

भोगता या बोगता के आन्दोलन के फलस्वरूप भयपूर्ण स्थिति का आभास २९ अक्तूबर १८५८ के पत्राचार में होता है (मिलीटरी ओ० सी० २९ अक्तूबर १८५८, नं० १६३-६४) और उसमें संकेत है कि मद्रास की सेना उस समय भी आने से लाचार थी। पलामू और हजारीबाग में शान्ति पुनस्स्थापन का उल्लेख पूर्व लिखित १५ अक्तूबर १८५८ के प्रलेख में है (मिलीटरी ओ० सी०, नं० ५०५-०६) और उसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि पलामू को किसी हालत में नहीं छोड़ना चाहिये। भारत सरकार ने भी पूर्णरूपेण उग्र कार्रवायी को पसन्द की।

पलामू, प्रशासकों के लिए एक गहन समस्या थी जिसका उल्लेख अनेकों प्रलेखों में पाया जाता है (मिलीटरी ओ० सी० १० सितम्बर १८५८, नं० ४००, पब्लिक ओ० सी०, १७ दिसम्बर १८५८, नं० ४०-४१)। इन प्रलेखों में लिखा हुआ है कि पलामू तथा बरही ब्रिगेडियर डगलस के संरक्षण में रक्खा जाय क्योंकि वह इनका उचित रक्षा करने से असमर्थ था। पब्लिक ओ० सी०, १० सितम्बर १८५८ के प्रलेख में डाल्टन ने अपने पत्राचार नं० ५३२, दिनांक १६ अगस्त १८५८ जो बंगाल सरकार के सचिव ए० आर० यंग के पास लिखा गया है, उसमें

उल्लेख है—"मैं फिर भी आपसे आग्रह करूंगा कि शाहाबाद से खदेड़े हुए विद्रोहियों को पलामू की ओर जाने से रोकना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह वह धनी क्षेत्र है जहां विद्रोहियों को काफी रसद मिल सकती है तथा इसकी सामरिक स्थिति इतनी महत्वपूर्ण है कि यह बहुत बड़ी फौज का भी सामना कर सकती है।

आयुक्त डाल्टन ने पहाड़ियों के योधन नीति के महत्व को समझा। इसलिये उसने अपने ३० सितम्बर १८५८, नं० १४४४ की चिट्ठी में कप्तान हेल के अधीन सिक्ख फौज तथा लेफ्टिनेंट रीक्स के अधीन रामगढ़ बटालियन के कोल तथा संथालों की टुकड़ी को पलामू में भेजने की सुझाव पेश की।

शेरघाटी के उपायुक्त ने २ दिसम्बर १८५८ को बंगाल सरकार के सचिव के पास एक तार भेजा जिसमें उसने शाहाबादी विद्रोहियों के घुसने का खतरा के बारे में लिखा। उसने आगे लिखा कि २०० की संख्या में गत मास २७ ता० को विद्रोहियों ने ओडर को छोड़ा और वे पलामू की ओर गये।

आयुक्त डाल्टन ने अपने ८ दिसम्बर १८५८ के पत्राचार जो पब्लिक ओ० सी०, २४ दिसम्बर, नं० ३८–३९ में सुरक्षित है, सूचित किया कि "वस्तुतः विद्रोहियों ने सिधुवा सिंह के नेतृत्व में पलामू में प्रवेश किया तथा संभवतः दूसरा नेता राम बहादुर सिंह भोगताओं को सहयोग देने के लिये गया है। इनमें से ६०० के पास बन्दूके हैं। लेफ्टिनेंट ग्राहम की स्थिति चैनपुर में रक्षा के योग्य थी। डाल्टन ने सोचा कि विद्रोहीवर्ग रसद के अभाव में बहुत-काल तक समय पहाड़ी में नहीं रह सकते और यदि वे छोटानागपुर का मार्ग निस्कंटक पायेंगे तो उनलोगों को उधर बढ़ने की संभावना है। डेविस जो चेचारी में था, पहले ही सूचित किया था कि विद्रोहियों की संख्या भोगता और खरबार जातियों के संयोग से काफी बढ़ गयी है। उसने बाद में सूचना दी कि विद्रोहियों की एक दूसरी बड़ी तायदाद का, भोगता तथा खेरबार से मिलने का जोरदार अफवाह है।

कप्तान डाल्टन के ध्येय का पुष्टीकरण कोरंडा सबडिवीजन के विशेष कनीय सहायक आयुक्त के २७ दिसम्बर १८५८ के पत्राचार से भी होता है जिसमें उसने उसे ४०० विद्रोही सिपाहियों को सिरगुजा तथा मिर्जापुर जिले में रहने की सूचना दी। पलामू में भी ३०० से कम विद्रोहियों का आगमन नहीं हुआ था। कोरंडा के दंडाधिकारी ने सूचना दी कि विद्रोहीवर्ग स्वच्छंदतापूर्वक देहातों को लूट रहे थे और ६०० की संख्या में एक दूसरा दल प्रतापपुर की ओर प्रयाण कर रहे थे, क्योंकि वे कारपरदाज लाल विन्देश्वरी प्रसाद को विवश करना चाहते थे। कोरंडा दंडाधिकारी बिना अतिशयोक्ति के उल्लेख करता है कि सिरगुजा जिला विद्रोहियों के हाथ में था। उसे सेना की अत्यावश्यकता थी क्योंकि मंडल की फौज सिरगुजा सरदार की मुक्ति के उपयुक्त न थी। इसके अतिरिक्त वह यह भी लिखता है कि सैन्यदल की आवश्यकता अन्य जगहों में भी है इसलिये सेना पलामू के लिये नहीं भेजा जा सकता है। लेसलीगंज से सूचना मिली कि विद्रोहीगण १०० की संख्या में हुटी नामक ग्राम को लूटे तथा शेरघाटी की ओर जाने की उनकी मंशा थी। शेरघाटी के उपायुक्त ने यह सूचना दी कि ७९० विप्लवकारी पलामू होते हुए गोंड़ा के पास के जंगल में थे जो कोरंडा से सिर्फ ६ मील की दूरी पर हैं तथा वे उत्तर की ओर बढ़ रहे थे।

सैन्य विभाग पलामू में फौज भेजने की जरूरत महसूस करती थी, जो पब्लिक ओ० सी० नं० ८५-८६ के २१ जनवरी १८५९ के पत्राचार से जाहिर है। यह

निर्णय किया गया कि पलामू जिला के संगठित विद्रोहियों को हटाने के लिये वहां सैन्यदल नियुक्त करना चाहिये।

क्रान्ति दमन हेतु पलामू जिला के प्रत्येक भाग में सैन्यदल का प्रवेश हुआ। आयुक्त डाल्टन के पब्लिक ओ० सी०, ११ फरवरी १८५६ के प्रलेख जो २५ जनवरी १८५६ को सचिव, यंग के पास भेजा गया था, उसमें उसने विद्रोहियों के विरुद्ध एक हफ्ता याने ६ से १४ तक के सैनिक कार्रवायी के बारे में सूचना भेजी थी। प्रलेख के एक हफ्ता के सैन्य गमनागमन से पूर्णरूपेण विदित है कि भोगता आदि क्रान्तिकारियों के दमन हेतु कप्तान डेविस, सिरगुजा के मैनेजर कोरिया की रानी तथा जसपुर नरेश प्रत्येक दिशा से सैन्य संचालन कर रहे थे।

आयुक्त डाल्टन के ८ नवम्बर १८५८ का एक दूसरा पत्राचार जो सचिव, यंग के पास लिखा गया था उसमें पलामू के आन्तरिक विद्रोहियों के दमनार्थ सिक्ख फौज रामगढ़ लाइट इन्फैन्ट्री और रामगढ़ इररिगुलर केभेलरी के संचालन का उल्लेख है। यह प्रतीत होता है कि लेफ्टिनेंट ग्राहम, ब्रिगेडियर डगलस तथा पटना के आयुक्त के संरक्षण में सैन्य संचालन कर रहा था। शाहपुर, चैनपुर, लेसलीगंज तथा गढ़वा नगरों पर आक्रमण हुआ था। लेफ्टिनेंट ग्राहम कोरंडा अवर-प्रमंडल में कनीय सहायक प्रभारी के पद पर स्थानापन्न का कार्य कर रहा था। मनिका थाना के दारोगा ने सूचना का समर्थन किया कि विद्रोहियों की संख्या बढ़कर ५,००० के लगभग हो गयी थी।

शेरघाटी के उपायुक्त डेविस की सूचना जो ग्राहम के पास भेजी गयी थी उससे पता चलता है कि पलामू के विप्लव में सुनपुरा नरेश तथा हुसेनाबाद के नवाब इत्यादि भी सम्मिलित थे तथा कप्तान ग्राहम के अनुसार विश्रामपुर के बाबू भवानी बक्स भी इसमें थे। लेफ्टिनेंट ग्राहम अपनी सफलता के बावजूद भी भोगता के गहन क्षेत्र में अल्प-सेनाओं के साथ प्रवेश करने से मना किया गया। यह पब्लिक ओ० सी०, ४ दिसम्बर १८५७, नं० ३३ के प्रलेख से प्रमाणित है।

पब्लिक ओ० सी०, १४ जनवरी १८५६ नं० ३५।३८ के पत्राचार क्रांति की गहनता के द्योतक है। लोहरदग्गा के वरीय सहायक आयुक्त ने अपने २३ दिसम्बर १८५८ के पत्राचार में इस प्रकार लिखा है "जैसा कि आपको विदित है कि यह क्षेत्र ४० वर्ग मील के विस्तार में विद्रोहियों के कब्जे में है और गहन जंगल तथा दुर्गम पहाड़ियों से भरे रहने के कारण यहां विद्रोहियों का पता चलना इस समय नितान्त कठिन है। ग्रीष्म ऋतु के आगमन के पश्चात् घासों के जलाने से, विद्रोही वर्ग का पता, जो कुछ ही गज की दूरी पर अभी अदृश्य हैं, लग सकता है।

"इन प्राकृतिक मुसीबतों के अतिरिक्त बिना अतिशयोक्ति यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र के निवासी गुप्त रूप से विद्रोहियों के साथ मिले हुए हैं और हमारे सैन्य संचालन की सूचना उन्हें इनसे मिल जाती है। परन्तु हमलोग शायद तबतक उनका पता नहीं पाते हैं जब तक वे अपने समीप के क्षेत्र के ग्राम को नहीं लूटते अथवा जलाते हैं।"

नेतागण

पलामू में, शांति का पुनसंस्थापन, आयुक्त डाल्टन के पत्राचार क्रम संख्या ५६, दिनांक १४ मार्च, १८५६ से विदित होता है। होम डिपार्टमेन्ट, पब्लिक कन्सलटेसन १ली अप्रैल

१८५६, संख्या १५-१६ में डाल्टन ने इस पत्र द्वारा सूचना भेजी है कि विद्रोही नेतागण दोनों भाई पीताम्बर और नीलाम्बर तथा नीलाम्बर का सुपुत्र कुमारसाही, शिवचरण मांझी और रत्न मांझी या तो स्वयं आत्मसमर्पण किये या पकड़े गये। एक दूसरा पत्राचार जो ६ मार्च, १८५६ को ग्राहम द्वारा डाल्टन के पास लिखा गया था, उसमें उपरोक्त नेतागण के अतिरिक्त भूखा साह को भी कैद करने के बारे में कहा गया है। सचिव यंग ने पत्र संख्या १७८३, १८ मार्च, १८५६ को भारत सरकार के गृह सचिव को सूचना भेजी कि पलामू के प्रमुख विद्रोही नेतागण या तो आत्मसमर्पण किये या कैद कर लिये गये। कप्तान डाल्टन से आग्रह किया गया कि वह ठाकुर रघुवर दयाल तथा किसन दयाल को सूचना दे कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर उनकी सहायता से अवगत हुए।

जिला अभिलेखागार के सुरक्षित पत्राचारों के उल्लेख के पूर्व यहां उन महानुभावों के नाम को उल्लिखित करना अत्यावश्यक है जिन्होंने क्रांति में सक्रिय भाग लिया। चेरो सरदारों में जिन्होंने ब्रिटिश अधिकार की अवज्ञा की उनमें विश्रामपुर के भवानी बक्स का नाम उल्लेखनीय है। वह चेरो जाति में सर्वश्रेष्ट तथा अत्यधिक प्रभावशाली था। आयुक्त ने उसको रांची ले जाना जरूरी समझा। उसके सैन्य संगठन में व्यस्त होने की भी सूचना थी परन्तु बाद में वह ३ फरवरी १८५८ को लेसलीगंज के आयुक्त की सभा में उपस्थित हुआ। आयुक्तानुसार यद्यपि उसके विरुद्ध राज विद्रोह का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न था फिर भी "उसने ग्राहम की सहायता नहीं की जिसके फलस्वरूप उसे दंडित करने का सुझाव दिया गया"।

चुकला का राम बकस राय तथा उसका पुत्र हरि बकस राय के ऊपर आयुक्त डाल्टन के अनसार गम्भीर अभियोग था, यद्यपि वह आयुक्त के साथ सुव्यवहार के साथ पेश आया था। अभियोग यह था कि उन्होंने ग्राहम की उचित मदद नहीं की तथा उनके कुछ अनचरगण राजहरा कोयला कारखाने पर आक्रमण में विद्रोहियों को सहयोग दिये थे।

लकना के देवी बक्स राय ने भोगताओं को खुले आम मदद की थी। आयुक्त के निर्णयानुसार भोगता उसे राजा बनाना चाहते थे। परन्तु बाद में वह अंगरेजों से मिल गया।

उन्टारी के भैया भगवान देव ने, लेफ्टिनेन्ट ग्राहम को बहुत कम मदद दिया था परन्तु आयुक्त के हस्तक्षेप के पश्चात् उसने बन्दूकचियों का एक दल प्रदान किया।

खरबार तथा भोगता के सरदारों में नीलाम्बर और पीताम्बर जिसकी जागीर चेमू, सनया तथा दक्षिण-पश्चिम पलामू में थी, वास्तव में सबसे बड़ा नेता था। ुंडा का इलाकादार परमानन्द जो खरबारों का सर्वश्रेष्ठ सरदार था दोनों भाई पीताम्बर तथा नीलाम्बर को पूर्ण रूपेण सहयोग प्रदान किया था। पश्चात् नवम्बर, १८५८ के करीब भोज और भारत, भोगताओं के नेता थे और २ दिसम्बर के करीब भोगतालोग सनया के राम बहादुर के नेतृत्व में थे।

नकलौत मांझी ने, जो खरबार ही था अंगरेजों को काफी परेशान किया। हमीर के राजा सिंह, अन्त में कैद किये गये तथा उन्हें फांसी पर लटका दिया गया। पांच गांव की उनकी जागीर जब्त करने के पश्चात् मंका के कुवर भिखारी सिंह को प्रदान

किया गया। टिकैत उनारस सिंह तथा दीवान शेख भिखारी १८५८ के जनवरी में पकड़े गये और विद्रोह से सम्बन्धित होने के अभियोग में उन्हें फांसी की सजा मिली।

राजभक्त जमींदार

ठाकुराय रघवर दयाल सिंह, ठाकुराय किसन दयाल सिंह, नवागढ़ के शिवचरण राय, मंका के भिखारी सिंह, उन्टारी के भगवान देव तथा भैया देवनाथ सिंह, नोवादाग के देवी बकस सिंह, देव (गया) के राजा तथा पिथौरी (रांची) के जगत पाल सिंह प्रमुख ब्रिटिश वफादार व्यक्ति थे।

अप्रकाशित पत्राचार

१८५७-५८ के आन्दोलन की गतिविधि को पूर्णरूपेण समझने के लिये डाल्टेनगंज के अभिलेखागार से प्राप्त कुछ पत्रों का निर्देश करना सहायक सिद्ध होगा।

२४ नवम्बर १८५८ को बंगाल सरकार के सचिव ए० आर० यंग ने अपने पत्र संख्या ४००५,२४ नवम्बर १८५७ के पत्राचार में छोटानागपुर के स्थानापन्न आयुक्त को सूचित किया कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर उनके सुझाव से जो क्रांति को कुचलने के लिये था, पूर्णरूपेण सहमत हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आयुक्त को आन्दोलन के दमन हेतु संभवतः असीम अधिकार प्रदान किया गया था जिसकी एक प्रति कुंडा अनुमंडल के कनीय सहायक आयुक्त को भी भेज दी गयी थी। प्रत्येक मंडल के आदमियों ने जो एक बड़ी तायदाद में अंगरेजों के विरुद्ध लोहा लिया था उनलोगों ने पलामू के गहन तथा दुर्गम पहाड़ियों में आश्रय लिया। अतः छोटानागपुर के आयुक्त कप्तान डाल्टन को परिस्थिति संभालने के लिये अनेक फौजी दस्ते मिले। २८ नवम्बर, १८५७ को डाल्टन ने अपने पत्र संख्या १९१ में कोरंडा अनुमंडल के कनीय सहायक आयक्त आई० एम० ग्राहम को मंका, लेसलोगंज, चैनपुर तथा अन्य स्थानों में रसद भेजने की समुचित व्यवस्था के लिये कहा।

ग्राहम को इस बात का भी आदेश दिया गया कि ठहराव के स्थानों के समीप स्वच्छ तथा प्रचुर मात्रा में जल होना चाहिये तथा वह आयुक्त के पास उक्त स्थानों का एक खाका भी भेज दे। अंगरेज की दो कम्पनियों के तेरहवीं ससराम-स्थित लाइट इन्फैन्ट्री को अकबरपुर होते हुए चैनपुर जाने का आदेश दिया गया। देव के राजा को भी सहयोग देने के लिये बुलाया गया। यह आदेश बंगाल सरकार के सचिव द्वारा उसके पत्राचार संख्या ४०६०, २७ नवम्बर १८५७ से प्राप्य है। रानीगंज स्थित मद्रास राइफल्स की एक टुकड़ी को शेरघाटी होते हुए पलामू जाने का आदेश दिया गया। पलामू में विभिन्न प्रकार के सैन्य दलों की टुकड़ियों का संचालन वहां की गंभीर स्थिति के ही परिचायक हैं। बंगाल सरकार के सचिव द्वारा छोटानागपुर के स्थानापन्न आयुक्त को ३० दिसम्बर १८५७, पत्र संख्या ४८०३ से स्पष्ट है कि ग्राहम को मदद मांगने के लिये हल्की चेतावनी दी गयी। पत्र में इस प्रकार उल्लेख है—"लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, ग्राहम के अपनाये गये तरीके तथा पलामू में टिके रहने का उत्साहपूर्ण निश्चय से सहमत हैं, साथ ही साथ सरकार उससे आशान्वित है कि वह अपनी सभी कायवाहियों में सतर्क रहे, क्योंकि आफत में घिर जाने से उसकी मुक्ति हेतु फौज भेजना अति दुष्कर हो जायगा।"

यहां यह बता देना अनावश्यक नहीं होगा कि कप्तान डाल्टन ने २८ जुलाई १८५८ के पत्राचार में लिखा था कि कोरंडा अनुमंडल जिसमें पलामू, सिरगुजा, उदयपुर और

बरही अनुमंडल भी शामिल थे उसे ब्रिगेडियर डगलस के सैन्य-भार के अधीन के मंडल में शामिल कर देना चाहिये। प्रासंगिक प्रलेखों से प्रमाणित है कि पुलिस तथा नागरिकों को उनके सक्रिय सहयोग के फलस्वरूप उन्हें पदोन्नति तथा पुरस्कार खुलकर दिया गया। यह सहयोग फरारों को कैद कराने तथा उससे संबंध रखने वाली अन्य सूचनाओं के रूप में था। लोहरदग्गा के दंडाधिकारी को सरकारी अनुमोदन की आशा में घुड़सवार तथा पैदल सेना में वृद्धि हेतु आदेश दिया गया। २६ जून १८५७, पत्र संख्या ६८७ से पुलिस अधिकारियों को प्रोत्साहित किया गया कि सराहनीय कार्य करने वालों को शीघ्र पुरस्कृत किया जायगा। ए० आर० यंग ने अपने पत्र संख्या ३११८, २६ जून १८५८ को छोटानागपुर के आयुक्त को सूचित किया कि ठाकुर किसनदयाल सिंह के एक सैन्यदल की पराजय पर संतोष प्रगट किया गया। इस पत्र में ठाकुर किसन दयाल को सफलता पूर्वक रामगढ़ बटालियन के एक हवलदार के भगाने का भी उल्लेख है।

सफलतापूर्वक विद्रोहियों की गिरफ्तारी तथा उनसे संबंधित अन्य कार्यों में सहयोग देने वाले व्यक्तियों को पुरस्कृत किया गया। कप्तान डाल्टन के २२ दिसम्बर १८५७ पत्र संख्या २५२ जो कोरंडा अनुमंडल के कनीय सहायक आयुक्त को लिखा गया था, उससे पता चलता है कि भवानी बक्स राय की गिरफ्तारी के लिये उसे ५०० रुपया पुरस्कार देने का अधिकार दिया गया था। कनीय सहायक को मुकुट मांझी की गिरफ्तारी के लिये २०० रुपये का पुरस्कार देने का अधिकार था।

विश्रामपुर के भवानी बक्स राय का उल्लेख हो चुका है। डाल्टन ने इस व्यक्ति के आत्मसमर्पण के पश्चात् ग्राहम को आदेशित किया कि वह उसके स्पष्टीकरण की जांच कर उसकी सूचना उसे शीघ्र भेजे। ग्राहम के पास ३ फरवरी १८५८ के पत्राचार की दूसरी कंडिका में ऐसा संकेत है। डाल्टन ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—"इस जांच का परिणाम चाहे जो भी हो परन्तु यह जरूरी है कि बाबू को जिसने अपनी उपस्थिति के आदेश की आज तक अवज्ञा की तथा आपको क्रांति के कुचलने में, आशा के विपरीत, मदद नहीं दी, उसकी सख्त जाँच हो और आपसे मेरा अनुरोध है कि इन आरोपों के विरुद्ध उस पर अविलम्ब कार्रवाई होनी चाहिये और कार्रवाई के पश्चात् ब्यौरा, आपकी राय सहित, निर्णय हेतु मेरे पास पेश हो।"

चेचारी के जमीन्दार भैया कुमार सिंह जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है अधिकारियों की क्रोधाग्नि का शिकार बने। उसके ऊपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उसकी भू-संपत्ति जब्त कर ली गयी। शासन को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से इस क्षेत्र में थाना स्थापित किया गया। कोरंडा अनुमंडल के अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त २ अक्टूबर १८५८, पत्र संख्या ११३ से आदेशित किया गया कि पिथौरा के जमीन्दार राय जगतपाल सिंह बहादुर "चेचारी राज्य तथा थाना के अस्थायी प्रभार ग्रहण करने के लिये श्रेष्ठ व्यक्ति होंगे"।

छोटानागपुर के आयुक्त कप्तान डाल्टन के द्वारा बंगाल सरकार सचिव के पास दिये गये ३१वीं जनवरी १८५९ के पत्र संख्या २१ के आशय से यह स्पष्ट है कि १८५८ में सर्वत्र प्रतिक्रिया का बाजार गर्म रहा। इस पत्राचार के साथ कप्तान डेविस के विवरण की एक प्रति, जिसमें पलामू में किये गये सैन्य संचालन का उल्लेख था और जिसके फलस्वरूप पलामू तथा उसके समीप के मंडलों से शाहाबाद तथा बिहार के विद्रोहियों को बाहर भगाने का विवरण था, भी

भेज दी गयी। कप्तान नेशन की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। डाल्टन ने पत्र में लिखा है—

"चूंके यह अवगत हो गया कि विद्रोही वर्ग संख्या में अधिक थे तथा उनसे युद्ध में निपटना प्रायः दुष्कर था अतएव उन्हें किसी तरह घबड़ा देने का प्रयास किया गया। उन्हें चैन की नींद नहीं सोने दिया गया। उन्हें वीरान पहाड़ियों में एक स्थान से दूसरे स्थान में तबतक खदेड़ा गया जबतक वे निराश होकर इस जिला को बिल्कुल नहीं छोड़े। अन्ततः स्थानीय विद्रोही ही बच गये। नीलाम्बर और पीताम्बर की अध्यक्षता में उनकी संख्या अब घट कर प्रायः अत्यन्त ही क्षीण हो गयी है। मुझे विश्वास है कि कप्तान डेविस तथा उनके सहयोगी पदाधिकारियों के ओजपूर्ण तथा सुदृढ़ उपायों से उनका पूर्ण शमन हो सकेगा।"

बंगाल सरकार के सचिव ने इस पत्र को अनुमोदित करते हुए लिखा है कि सैन्य संचालन की योजना सर्वोपरि तथा उपयुक्त परिस्थिति के अनुकूल थी।

बंगाल सरकार के सचिव द्वारा २१वीं फरवरी, १८५९ का पत्र संख्या ११९६, जो छोटानागपुर के आयुक्त को लिखा गया था, वह दूसरा महत्वपूर्ण पत्राचार है, जिसमें बताया गया है कि पलामू के विद्रोहियों का एक दल पोराहाट विप्लवकारियों के साथ साँठगाँठ के उद्देश्य से सिंहभूम के मार्ग में था। परन्तु उपयुक्त दल को कुछ रामगढ़ इर्रेगुलर कैभलरी के लोगों ने जिसे कप्तान डेविस ने इसी कार्य हेतु भेजा था, खदेड़ दिया। बाद में वे कप्तान नेशन तथा लेफ्टिनेन्ट ग्राहम द्वारा पीछा किये गये। पलामू स्थित विप्लवकारी को दूसरे ज़िले के विप्लवकारियों से सम्पर्क नहीं बढ़ाने देने में पूर्ण रूप से सतर्क थे।

अंगरेजों के बफादार अपनी वफादारी के लिये काफी इनाम पा रहे थे। जब्त रियासतों को जागीर में परिणत कर वफादारों को दिया गया। ए० आर० यंग ने १३वीं अगस्त १८५८ को पत्र संख्या २८५९ के द्वारा लोअर प्रोभिन्स के राजस्व बोर्ड के सचिव को अवगत कराया कि कुछ इनाम बाँटे गये। रघुवर दयाल सिंह तथा किसन दयाल सिंह ठकुराइयों को राय बहादुर का खिताब और खिल्लत के अलावे दो नालों की राइफल प्रदान की गयी। ठाकुर रघुवर दयाल को इसके अतिरिक्त बारह ग्रामों की जागीर नाम मात्र के सालाना कर १३ रुपये ११ आने ९ पाई पर दे दी गयी। शिवचरण राय को अपनी मौजूदा जागीर के अलावे खिल्लत की उपाधि से विभूषित किया गया। कुंवर भिखारी सिंह को भी ३० रुपये वार्षिक कर पर ५ गांवों की जब्त जागीर के अतिरिक्त खिल्लत दी गयी। इन इनामों के लिये छोटानागपुर के आयुक्त ने अपने २१वीं जून १८५८ के पत्र के द्वारा बंगाल सरकार के सचिव से सिफारिश की थी, अतएव ये उसी के प्रतिफल थे। आयक्त ने ठकुराय रघुवर दयाल सिंह को अपना प्रमुख सहायक माना। उसने जोरदार शब्दों में दोनों को सराहते हुए लिखा कि "ठकुराय रघुवर दयाल सिंह उपद्रवों के दुःसह आघातों को सहन करने में मुख्य थे। उनकी सम्पत्ति सभी दिशाओं में लूट ली गयी तथा कई जगह उनके सहायकों की भी हत्या हुई। जिस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण भोगताओं के विरोध का मुकाबिला किया तथा सराहनीय सहयोग प्रदान किया और आरंभ से ही सरकार के प्रति सद्भावना प्रकट की उसके लिये वह प्रशंसा का पात्र है।" आयुक्त ने चेमू सिंह की जागीर जो बाद में नीलाम्बर तथा पीताम्बर को दी गयी थी और अब जब्त हो चुकी थी, उसे रघुवर दयाल सिंह को देने की सिफारिश की। बुरुगढ़ रियासत के जागीरदार बाबू शिव चरण राय का

उल्लेख उस व्यक्ति में किया गया जिसने सरकारी खजाना, अभिलेख तथा पदाधिकारी जो विद्रोहियों द्वारा आक्रांत हो लेसलीगंज से भाग गये थे, उनकी रक्षा की थी। डाल्टन के मतानुसार उसने ग्राहम तथा उसकी सहायता विशेष रूप में की थी। कुंवर भिखारी सिंह के बारे में डाल्टन की उक्ति इस प्रकार है, "वह चेरो जमीन्दार में एक ही व्यक्ति थे जिसने आद्योपांत वीरतापूर्वक सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र से अपने को तटस्थ रक्खे तथा भरसक विछोभ तथा उपद्रव को रोकने का प्रयास किया। यह सर्वप्रथम सहयोगी व्यक्ति था जिसने लेफ्टिनेन्ट ग्राहम का साथ दिया तथा उसे महत्वपूर्ण सूचना देकर उसका काफी उपकार किया। फलस्वरूप मंका में उसके महल पर आक्रमण हुआ और महल जलाया गया। भिखारी सिंह के ग्राम के समीप ही रेगा सिंह की, जिसे विद्रोह में नेतृत्व हेतु फांसी मिली, जब्त जागीर है। इस जागीर में पांच ग्राम सम्मिलित हैं तथा सरकार को वार्षिक कर इससे ३० रुपये मिलता है"। आयुक्त डाल्टन ने सिफारिश की कि यह जागीर खिल्लत सहित भिखारी सिंह को मिलना चाहिये। डाल्टन के उक्त पत्र से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि निम्नवर्ग के चेरो जमीन्दारों में करीब सबों ने अंगरेजों के विरुद्ध लोहा लिया। हमलोग भोगताओं की करतूतों से अवगत हैं। इसका अर्थ यही है कि वस्तुतः इस क्षेत्र के चारो तरफ क्रांति की लहर व्याप्त थी।

१८६० के प्राचीन पत्राचार में अत्यन्त ही मनोरंजक पत्र हैं, जिससे पता चलता है कि विप्लव की प्रतिक्रिया १८६० तक चल रही थी। उटारी नगर के जमीन्दार भगवान देव के आचरण की जांच पलामू अनुमंडल के अतिरिक्त कनीय सहायक आयुक्त, आई० एम० कैम्पबेल तथा लोहरदगा प्रमंडल के वरीय सहायक आयुक्त के बीच के पत्राचार का प्रमुख विषय था। उनके ऊपर के आरोपों से यह परिलक्षित होता है कि जमीन्दार भगवान देव ने सरकार को काफी सैन्य सहयोग प्रदान करने से अस्वीकार किया था। एक सनद के द्वारा जिस पर उसकी जमीन्दारी की शर्त्तें आधारित थीं, वह इसके लिये वाध्य था। उल्टे उसने अपनी जमीन्दारी क्षेत्र से सशस्त्र विप्लवकारियों को निर्विरोध जाने दिया। इसके अतिरिक्त यह भी शिकायत थी कि उसने नगर के समीप ठहरे हुए विद्रोहियों के लिये रसद का बन्दोबस्त किया अथवा होने दिया। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि भैया के ऊपर पलामू की ओर से गुजरने वाले घाटों की रक्षा का भार था। कैम्पवेल का निर्णय था कि वह अपने उत्तरदायित्व को निभाने में बिल्कुल असफल रहा और उसकी असफलता उसकी रियासत की जब्ती का हेतु है।

पलामू अनुमंडल के कनीय सहायक आयुक्त के ३०वीं अगस्त १८६० के पत्र, संख्या १५६ जो वरीय सहायक आयुक्त को लिखा गया था, प्रतीत होता है कि चत्तरपुर, मेका और लेसलीगंज थाने, १८५७ के आन्दोलन में जला दिये गये थे। इसमें "ग्रामीण" शब्द का उल्लेख बड़ा ही महत्वपूर्ण है जिससे ज्ञात होता है कि यह सिर्फ सशस्त्र विद्रोहियों का ही आन्दोलन न था जो सिर्फ भवनों को ही तोड़ रहे थे। इस पत्र से यह भी अवगत होता है कि भोगताओं ने वूरुगढ़ थाना को बर्बाद किया।

विद्रोहियों की सूची

अतिरिक्त कनीय सहायक आयुक्त जे० एम० ग्राहम ने, १८५७ के विद्रोहियों का एक विवरण तैयार किया था, जिसमें निम्नलिखित नाम हैं:—

नीलाम्बर शाह, रत्नसाह, नारायण बनिया, पीताम्बर साह, कटकुन साह और भूखा साह के ऊपर विद्रोह, जान-बूझकर हत्या तथा चैनपुर नगर पर आक्रमण करने का अभियोग था।

इसके अतिरिक्त नीलाम्बर साह के ऊपर बंगाल कोल कम्पनी के लूटने तथा बरबाद करने का और बरारी तथा हेयागढ़ आदि ग्रामों को जलाने का भी आरोप था। कुमार साह, रत्नसाह, नारायण बनिया, शिवचरण मांझी को नीलाम्बर तथा पीताम्बर के साथ कुछ सरकारी कर्मचारियों की हत्या तथा विद्रोह का अभियोग था। भूखा साह पर बरगढ़ थाना को जलाने का आरोप था। इसके अलावे गणपत तथा कुरदू मांझी इत्यादि पर भी विद्रोह का आरोप था। इसमें सन्देह नहीं है कि स्वेच्छा-पूर्वक हत्या, डकैती, अगलग्गी तथा लूट करने का आरोप कई व्यक्तियों पर था। इसमें भी सन्देह नहीं किया जा सकता की बड़ी तायदाद में खूनखराबी, अग्निकांड तथा लूटपाट हुए। ऐसा कहना मुश्किल है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपराधों का प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद था। कागजातों के आधार पर कई व्यक्तियों पर आरोप के कारण स्पष्ट नहीं हैं।

बाबू टिकैट सिंह को ८ वर्ष के कारावास के अलावे इनकी रियासत जब्त कर ली गयी। इन बातों का उल्लेख कोरेंडा अनुमंडल के अतिरिक्त कनीय सहायक आयुक्त (Extra Junior Assistant Commissioner) द्वारा बंगाल के सचिव के पास पत्र संख्या १४, २३ मई १८५९ में है। इसके पुत्र सूरज नारायण की, पुनरीक्षण हेतु, याचना पर मोकदमा की पुनः सुनवायी हुई। ग्राहम के मतानुसार गढ़वा क्षेत्र के ग्रामों को जलाने में टिकैत सिंह का प्रधान हाथ था। इसलिये याचना पत्र खारीज हो गया।

बहुत से प्रलेखों से यह स्पष्ट है कि जमीन्दार वर्ग और ग्राम के मुखिया लोगों ने या तो विद्रोहियों को खुलेआम मदद दी या उनलोगों ने उनकी लूटपाट की अवहेलना की। अतिरिक्त कनीय सहायक आयुक्त ने अपने ९ जून १८६० के पत्र में इस प्रकार लिखा है। इसमें सन्देह नहीं है कि विद्रोही वर्ग बिना स्थानीय जमीन्दार की अवहेलना के किसी क्षेत्र में छिप नहीं सकते थे। इस स्पष्ट स्वीकारोक्ति से १८६० में पलामू की हालत का निश्चित पता चलता है।

सार्वजनिक आन्दोलन

घटनाओं के वृतान्त से यह स्पष्ट है कि पलामू में आन्दोलन का स्वरूप मात्र सिपाही विद्रोह से बहुत कुछ भिन्न था। चेरो, भोगता तथा खेरवार के आदिम निवासियों ने सरकार के विरुद्ध लोहा लिया। यहां के अधिकांश जागीरदार तथा जमींदार सरकार के विरुद्ध थे। ब्रिटिश सरकार के पक्ष में राजपूत जागीरदारों की संख्या बहुत कम रह गयी। अतः सरकार के साथ-साथ इनके विरुद्ध भी आवाज उठायी गयी। यहां के मुख्य नगर लेसलीगंज, गढ़वा, मैका और चैनपुर लूटे गये। सरकारी थाने तथा आबकारी कचहरियां तोड़ कर जला दिये गये। दिसम्बर, १८५७ में आन्दोलन चरम सीमा पर था। जनवरी, १८५८ के प्रथम सप्ताह तक परिस्थिति अंगरेजों के अनुकूल हो गयी। परन्तु नीलाम्बर और पीताम्बर कुछ महीने बाद तक फरार रहे तथा विनाशकारी कार्य करते रहे, जिससे पता चलता है कि नागरिकों का भी आन्दोलन में पूर्णरूपेण सहयोग था। मार्च, १८५८ में गणपत राय तथा विश्वनाथ शाही के नेतृत्व में आन्दोलन की आग फिर से ज्वलन्तरूप में धधक उठी। अन्त में इनलोगों को कैद के पश्चात् फांसी दे दी गयी।

क्रान्ति का रूप पलामू में उतना उग्र नहीं था जितना कि सिंहभूम में और न इसका रूप संथाल परगना के सिपाही विद्रोह के ही ऐसा था। आन्दोलन का रूप यहां सर्व जनीन था। नागरिक के हरेक तबके के लोगों ने इसमें शामिल होकर ब्रिटिश सत्ता के

उन्मूलन हेतु प्रयास किया। यहां का आन्दोलन मात्र सैन्य विद्रोह के ही रूप में न था जो नागरिकों के सहयोग अथवा असहयोग पर निर्भर होता। पलामू के आन्दोलन में नागरिकों ने अपने स्थानीय जमींदार तथा जागीरदार के नेतृत्व में शस्त्र उठाया। यदि इसे निरा गदर की ही संज्ञा दी जाय तो यह वह गदर था जिसमें आम जनता ने कंधे से कंधा मिलाकर अपनी आवाज बुलन्द की तथा खून बहाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हो उठे। १९वीं दिसम्बर १८५७ तथा २१वीं जून १-५८ के महत्वपूर्ण प्रलेख पलामू के आन्दोलन पर काफी प्रकाश डालते हैं। डाल्टन के गदर का विवरण का सारांश (अनुलग्नक संख्या २) से पता चलता है कि आन्दोलन का रूप कितना सार्वजनिक था।

अनुलग्न ः १

मिलीटरी डिपार्टमेन्ट कन्सलटेशन,

१५वीं जनवरी १८५८, संख्या ५०५०—६।

संख्या १३१।

प्रेषक

छोटानागपुर के आयुक्त,

प्रेषित

बंगाल सरकार के सचिव।

छोटानागपुर, १९वीं दिसम्बर १८५७।

महाशय,

मैंने आपके गत १६ तारीख का पत्र, संख्या ४४६५, अनुलग्नक सहित पाया। आपने मुझे आदेशित किया है कि मद्रास राइफल्स जो पलामू जाने वाली थी अब कप्तान रेट्रे के सिक्ख फौज का युद्ध हेतु मदद में हजारीबाग जा रही है। अतएव पलामू के लिये अतिरिक्त फौज की व्यवस्था नहीं हो सकती।

मेरा अनुमान है कि मद्रास राइफल्स का दल ३०० का होगा। यदि इन सेनाओं के अतिरिक्त यहां स्थि मद्रास की फौज छोटानागपुर तथा हजारीबाग जिले के आम कार्य हेतु मेरे जिम्मे कर दिया जाय और यदि ग्राहम को विवश होकर पलामू छोड़ने की नौबत नहीं आवे, तो मैं काफी संख्या में पलामू के विद्रोहियों के विरुद्ध सैन्य संचालन कर सकूंगा।

यह नहीं भूलना चाहिये कि पलामू परगना सरकार की खास मिलकियत में है और यहां के माल तथा भले रैयतों को विद्रोहियों से लूटे जाने के लिये छोड़ देना सरकार की कमजोरी का ही परिचायक होगा, और इसका घातक प्रभाव रेवा तथा अन्य स्थानों में जहां भी संभवतः पहुंचेगा, बहुत खराब होगा। यदि मद्रास राइफल्स का जत्था ३०० का पूरा हो जायगा, तो मैं १०० तत्काल हजारीबाग के रक्षार्थ छोड़ दूंगा और १०० इस स्टेशन के लिये। इसके बाद मद्रास आरटीलरी, २ लाइट फिल्ड फोर्स, रामगढ़, इरेगुलर कैभलरी, ६० सवार तथा ३०० से ३५० मद्रास इनफैन्ट्री लेकर पलामू के लिये रवाना हो जाऊंगा। यदि इस वाहिनी के अलावे ग्राहम का सैन्यदल, जमीन्दार तथा

देव राजा क: फौज के साथ मिला दिया जाता है, तो मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि यहां शान्ति पुन: स्थापन नहीं हो सकेगी। विशेषत: मेजर मेकडोलैण्ड के सक्रिय तथा बहादुरीपूर्ण अधिनायकत्व में और भी ऐसी उम्मीद की जा सकती है।

आपका,
ई० टी० डाल्टन,
औफिसियेटिंग कमिश्नर,
छोटानागपुर।

अनुलग्नक २

प्रेषक
कप्तान ई० टी डाल्टन,
छोटानागपुर का आयुक्त,

प्रेषित
ए० आर० यंग,
बंगाल सरकार के सचिव,
फोर्ट विलियम।

कैम्प चायबासा, २१वीं जून १८५८।

महाशय,

मैं श्रीमान् बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर के सूचनार्थ पलामू जिला के प्रमुख जमींदारों, विशेषत: जिन्होंने हाल के विप्लव को दबाने में सरकार को या अधिकारियों के साथ उत्साहपूर्वक शान्ति पुरस्थापन हेतु सहयोग प्रदान किया, उनलोगों के आचरण का व्योरा भेजता हूं।

इन महनुभावों के नाम को सूची के अलावे यहां यह जरूरी है कि यहां की घटना के विषय का भी संक्षिप्त चित्रण किया जाय जिससे यहां क्रान्ति हुई।

इस जिला की जनसंख्या में मुख्यत: चेरो तथा खरवार जातियां हैं। खरवार की संख्या अधिक है। इसके अतिरिक्त कोल और भुईया हैं जिनका उपद्रवों में हाथ नहीं है। ब्राह्मण, राजपूत तथा अन्य हिन्दु जातियां इस आन्दोलन के विरुद्ध थीं। कौरवा भी एक उदण्ड पहाड़ी जाति है और जो कोल से मिलती-जुलती है, उनमें से कुछेक ने भोगताओं का साथ दिया।

चेरो एक प्रकार के काल्पनिक राजपूत हैं। ये कुमायु के मूल निवासी थे और ब्राह्मण के समान यज्ञोपवीत धारण करते हैं। कुछ शताब्दी पूर्व इस जाति के एक नेता ने युद्ध में पलामू के राकसेल राजपूत राजा को हराकर सिरगुजा में प्रवेश किया और उस क्षेत्र का राजा घोषित हुआ। अन्तिम राजा चुरामन राय जो नि:सन्तान मरा इसी का वंशज था। चुरामन राय की विधवा अब भी जीवित हैं। इस वंश की तीन

शाखाएं हैं—विश्रामपुर के बाबू भिखारी बक्स राय ज्येष्ठ परिवार में के हैं। वह १४३ ग्रामों का जागीरदार हैं। चगला देव गांव के बाबू रामबक्स राय जिन्हें ३७० ग्राम हैं, दूसरे परिवार के हैं और तीसरा लखुया के बाबू देवीबक्स राय हैं।

शासक चेरो थे, इसलिये उनलोगों ने सोचा कि सहयोग के लिये समुन्नत चेरो किसान अत्यावश्यक थे। अतएव पलामू में छोटे-छोटे चेरो जागीरदार बहुत मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जागीरदार फजूलखर्ची थे, क्योंकि इनकी रियासत का अधिकांश भाग बंधक में था। अतएव बहुतों ने विद्रोहियों को बंधक की बला टालने हेतु भी साथ दिया।

खरवारों की संख्या पलामू तथा छोटानागपुर के अन्य स्थानों में अधिक है। ये पच्छिम रोहतास की पहाड़ियों से आये। यहां एक स्थान है जो किराह कहलाता है। सुरकी का राजा खरवार है। इस प्रमण्डल में कुंडा के राजा और चेचारी के भैया (जमीन्दार) खरवार जाति के मुखिया हैं।

ये कई उपजातियों में विभक्त हैं, जैसे भोगता, मंधी, विसीस और चौधरी इत्यादि। मुझे विश्वास है कि ये हिन्दु परिवार में शामिल नहीं हैं, वरन्य ये हिन्दी को छोड़ दूसरी भाषा नहीं बोलते।

खेरवार के कब्जे में जागीरें हैं। नीलाम्बर और पीताम्बर जो भोगताओं के प्रधान हैं, उन्हें सरकार ने जागीर प्रदान की थी। इस जाति के ग्राम पलामू के निम्न भाग और ढलाऊ पठार के बीच बसे हैं जो कई पहाड़ियों की श्रेणी से तथा सिरगुजा की ऊंची पठार से पुनः विभक्त होता है। इन बस्तियों में पहाड़ी घाटियों के अलावे दूसरे मार्ग से जाना संभव नहीं है। अतएव इन घाटियों की रक्षा बहुत आसान है तथा यहां के वाशिन्दे दुर्गम सिरगुजा की ऊंची पठार में रक्षार्थ भाग भी सकते हैं।

अतएव कानून के पंजे से दूर रहने के कारण ये भोगता जाति के लोग प्राचीन समय से ही बदनाम लुटेर हो गये। इसका अन्तिम प्रधान नीलाम्बर तथा पीताम्बर के पिता जाति-निष्कासित होकर मरा। इसके पुत्रों को उसकी जागीर नाममात्र के शुल्क (quit rent) पर देने से भोगताओं की लूट की प्रवृत्ति बहुत हद तक दबी। परन्तु हाल के उपद्रवों ने उनकी प्रवृत्ति को फिर से जगायी।

जिस समय रामगढ़ की फौज ने बगावत की थी उस समय अभाग्यवश, पीताम्बर रांची में था। बगावत को देखकर अधिकारीवर्ग अपने स्टेशन को छोड़कर भाग गये। वह यह सोचते घर की राह ली कि शायद अंगरेजी राज्य खत्म हो गया। उस अवसर पर रामगढ़ ने टिभ इन्फैन्ट्री की दो कम्पनियां जो हजारीबाग में बगावत की थीं, पलामू गुजरते हुए रोहतासगढ़ जा रही थी। उनके जाने का उद्देश्य बाबू कुंवर सिंह के भाई बाबू अमर सिंह से मिलना था।

इनलोगों ने कहीं प्रचण्ड लूटपाट नहीं मचायी, परन्तु वे जहां गये वहां से रसद तहसील किये। उनलोगों की इस प्रवृत्ति से अज्ञान पलामू के बाशिन्दों के हृदय में विश्वास हो गया कि सरकार बदल गयी। अतः भोगताओं ने शस्त्र से सुसज्जित हो लूटपाट मचाना पुनः आरंभ कर दिया। इन लोगों ने सर्वप्रथम अपना निशाना अपने पुराने दुश्मन ठाकुर रघुवर दयाल सिंह को बनाया और उनका ग्राम और माल लूटने

लगे। बिना मदद के वे राजपूत जागीरदारों का सामना नहीं कर सकते थे, लेकिन उपद्रव ने जो अबतक राजनैतिक रूप ले लिया था, वह एक विशाल विद्रोह का रूप लेकर फैला।

चुरामन राय की विधवा रानी पलामू जिला के शाहपुर में रहती है। २५ सितम्बर को बाबू भवानी बक्स राय शाहपुर पहुंचे और उन्होंने अपने तथा रानी के नाम पर चेरो की एक सभा बुलायी। सभा बुलाने का उद्देश्य एक चेरो राजा का निर्वाचन करना था। परन्तु बाबू ने बताया कि वे जिला की रक्षा हेतु अन्य और जागीरदारों से मिलकर मेरे आदेशानुसार कार्य करना चाहते हैं। बाबू स्वयं टी० सी० कैम्पबेल के परवाना के आदेश पर जो कर्नल फिसर की सेनाओं से सम्बद्ध था अथवा रांची पर अंगरेजों का पुनः कब्जा का संवाद सुनकर शाहपुर से चल पड़े। इसके पश्चात् विद्रोहियों के साथ गठबंधन का कोई सबूत उसके विरुद्ध नहीं है। उक्त सभा को बुलाने की जो मंशा हो, पर यह बिल्कुल सत्य है कि चेरो और खरवार, भोगताओं के साथ २१वीं अक्टूबर को चैनपुर जहां ठाकुर रघुवर दयाल का निवास था, धावा बोल दिया। ठाकुर ने उनलोगों की सम्मिलित ताकत की सामना हेतु काफी तैयारी के साथ मुकाबला किया और कुछ घंटे की लड़ाई में विद्रोहियों को हराया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भोगता अपने ऊपर चेरो आधिपत्य को लेकर उतने उत्सुक नहीं थे जितना कि वे अपनी पुरानी शत्रुता का बदला ठकुराय से चुकाने के लिये। परन्तु यह स्पष्ट है कि चेरो और दूसरे-दूसरे लोगों ने ठकुराय तथा उसके दल का विनाश अपनी सफलता के लिये आवश्यक समझा। क्योंकि ठकुराय ब्रिटिश सरकार का वफादार था और उनका विनाश, ब्रिटिश के विनाश का कारण होता। ठाकुर रघुवर दयाल का विश्वास था कि सरकार इन विद्रोहियों से नहीं हटाया जा सकता। अतएव उसने उत्साहपूर्वक विद्रोह के विरुद्ध कार्य किया। ठाकुर किसन दयाल भी रघुवर दयाल के (चचेरा भाई) ऐसा सरकार के खैरख्वाह थे। इसलिये विद्रोहियों ने इनको भी अपने आक्रमण का निशाना बनाया। परन्तु ये उत्साहपूर्वक उनका मुकाबला करते रहे।

चैनपुर की हार के पश्चात् विद्रोही शाहपुर गये और रानी के चार पुरानी तोपों को अपना लिया। इनलोगों ने थाना को तोड़कर रेकर्ड को बरबाद कर दिया और उन्होंने रात्रि में नदी के दूसरे किनारे में खेमा गिराया। ऐसा संवाद आया है कि उनलोगों ने इन तोपों से एक सरकारी थाना को बरबाद कर बरकन्दाजों को कैद कर लिया। दूसरे दिन विद्रोहियों के ५०० के एक जत्थे ने लेसलीगंज को लूटा, थाना तथा आबकारी कचहरी को जलाया। परन्तु बहुत से अभिलेख और चंद मकान बचाये गये। विद्रोहियों के गमन के पश्चात् ठीक समय पर लेसलीगंज के निवासियों ने आग को बुझा दी। उस दिन पांच ग्राम और जलाये गये।

लेसलीगंज में विद्रोहियों के आगमन पर तहसील पुलिस और आबकारी संस्थाओं के लोग सरकारी खजाना को लेकर भागे तथा बाबू शिवचरण राय (नवागढ़) की शरण ली। नवागढ़ के शिवचरण राय जो चेरों के प्रधान थे तथा जिनकी जागीर में ५६ गांव थे, सरकार के वफादार थे। शिवचरण राय सरकारी कर्मचारियों तथा खजाना की रक्षा, ग्राहम, जो रामगढ़ इन्फैंट्री के ६० आदमियों को लेकर रांची से चला था, उसके आगमन तक करते रहे। ग्राहम ७ नवम्बर को चैनपुर पहुंचा। उसके आगमन का तात्कालिक परिणाम अच्छा निकला और विद्रोही छिन्न-भिन्न होकर अपने ग्रामों को चले गये। परन्तु जब विद्रोहियों ने पाया कि ग्राहम की सेना संख्या में बिल्कुल तुच्छ थी और वह चढ़ाई कर विद्रोहियों को नहीं कुचल सकता था तब वे पुनः बड़ी तायदाद

में चैनपुर होते हुए उसके समीप में ही ठहर गये। ग्राहम ठाकुर के भवन में ही बन्द रहा और नगर की रक्षा करता रहा। विद्रोही वर्ग उसके बाद से फिर चढ़ाई नहीं किये। वे राजहरा स्टेशन जाकर कोल कम्पनी पर आक्रमण किये और इसे लूट कर बरबाद कर दिये। विद्रोहियों ने २ दिसम्बर को मंका तथा चितरपुर थाना को जलाकर अभिलेख को बरबाद कर दिया। किन्तु मेजर कोटर के अधीन ८ दिसम्बर को यूरोपियन फौज, जो ग्राहम की मुक्ति हेतु आयी थी, उनके आगमन के पश्चात् वे तितर-वितर हो गयी।

परन्तु उक्त यूरोपियन सेना से पलामू में सैन्य संचालन का कार्य नहीं हो सकता था, अतएव ग्राहम को आदेश मिला कि वह आगे तबतक नहीं बढ़े जबतक सवार और बन्दूक वर्ग काफी मात्रा में देव के राजा के साथ लेसलीगंज को नहीं पहुंच जाय।

ग्राहम २५ दिसम्बर को लेसलीगंज पहुंचा और कुछ काल तक ऐसा प्रतीत होता था क विद्रोही वर्ग कुचल दिये गये। विद्रोहियों के कुछ प्रभावशाली नेताओं को फांसी दे दी गयी। कितने जेल में थे। चेरो ने बहुत हद तक आन्दोलन का परित्याग कर दिया। परन्तु कुछ पत्राचार जो भोगता कैम्प से उपलब्ध हुआ था, उससे पता चलता है कि उनके प्रधान नीलाम्बर और पीताम्बर को अमर सिंह से सहायता पाने की आशा थी। परन्तु वे इसमें असफल रहे। एक दल मिर्जापुर पहाड़ियों से आकर विद्रोहियों से मिला और उन्होंने पुनः लूटपाट करना आरम्भ किया। कुछ ग्राम लूटे गये और जलाये गये।

मैं उस समय मद्रास फौज की एक छोटी टुकड़ी के साथ मेजर मैकडोनल्ड की संरक्षण में बढ़ रहा था और विद्रोही भोगता हमसब के सामूहिक फौज का मुकाबला हेतु एक संकीर्ण घाटी में डटे हुए थे। परन्तु २२ तारीख को मैकडोनल्ड ने उन्हें पूर्णरूपेण हराया।

इस युद्ध में चैनपुर के ठाकुर रघुवर दयाल सिंह, रंका के ठाकुर किसनदयाल सिंह, उमूडंग के देवी बक्स सिंह, उन्टारी के देवनाथ सिंह, करपरदाज और भैया भगवान देव, मंका के कुमार भिखारी सिंह और वामनडीह के देव नारायण सिंह शामिल थे। मुझे उनलोगों को धन्यवाद देने का आदेश दिया गया। लेसलीगंज पहुंचने पर मैंने सभी जागीरदारों को अनुयायियों सहित उपस्थिति का आदेश किया। इसका अच्छा असर हुआ। जो जागीरदार पहले नहीं आये थे वे अपने नियत हिस्से के मुताबिक सेना लेकर खेमें में दाखिल हुए। इनमें भवानी बक्स राय भी जो कई बहाना बनाकर अभी तक गैरहाजिर थे, आये।

यह निःसंदेह है कि बहुत से जागीरदार जो हमलोगों के साथ मिल गये थे पहले विद्रोहियों के साथ मिले हुए थे। परन्तु मैंने परिस्थितिवश उन लोगों की सेवा स्वीकार की, यद्यपि उन्हें माफी का वादा नहीं किया गया था और अंत में उन्हें अपने अपराध की सजा भुगतनी ही पड़ती। इस कुशल नीति ने चेरो तथा भोगता के मैत्री को खत्म कर दिया और हमलोगों को सिर्फ भोगताओं से निपटना था।

यहां यह जरूरी नहीं है कि मैं पुनः विस्तारपूर्वक भोगता क्षेत्र में सैन्य संचालन का विवरण विस्तारपूर्वक करूं, क्योंकि समय-समय पर इसकी सूचना बराबर भेजी गयी थी। यहां यह कहना काफी होगा कि यद्यपि हमलोग उनके दो सरदारों को पकड़ने से अबतक असफल रहे, परन्तु उनकी ताकत बिलकुल खत्म हो गयी और उस समय से पलामू में शांति बनी रही।

मैं ने बाबू भवानी बक्स राय को कुछ समय के लिये दूर रखना जरूरी समझा और वे हमारे साथ रांची आये। यहां वे अबतक हैं। ग्राहम ने अपनी जांच की सूचना अबतक नहीं भेजी है यद्यपि शाहपुर की घटनाओं में बाबू का प्रत्यक्ष राजद्रोह का अभियोग साबित नहीं हो सकता फिर भी वह ग्राहम की सहायता नहीं करने के अभियोग में जिसके लिये वह बाध्य था, दंडित हुए बिना नहीं रह सकता।

बाबू देवी बक्स राय पर भोगताओं से मिलने के आरोप की छानबीन चल रही है। ऐसा अनुमान है कि उसने उनलोगों की काफी मदद नहीं की, परन्तु यह बिल्कुल स्पष्ट है, चाहे वह उसे स्वीकार करे अथवा अस्वीकार कि भोगता वर्ग उसे राजा बनाना चाहते थे। बाद उसने हमलोगों की काफी मदद की।

दूसरे चेरो के बाबू रामबक्स राय तथा उसके पुत्र हरवक्स राय के आचरण का जहां तक सवाल है, इनलोगों का वर्ताव मेरे प्रति अच्छा था, परन्तु एक समय इनलोगों ने अपनी सत्ता अनुसार ग्राहम की मदद करना अस्वीकार कर दिया था। बाबू तथा उसके अनुयायियों पर कोल कम्पनी पर आक्रमण का आरोप है। मुझे अबतक उनलोगों पर जांच का परिणाम मालूम नहीं हुआ, अतः मैं अभी आगे कुछ नहीं कह सकता।

उन्टारी के भैया भगवान देव और उनके करपरदाज ने बाद में हमलोगों को बन्दूकचियों के एक जत्थे से मदद की। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि वह मेरे आगमन के पूर्व ग्राहम को कम सहयोग दिया। अतएव मुझे दुःख है कि मैं उसको अच्छी नजर से नहीं देख सकता। उसकी रियासत में टोलों के अलावे ८४ गांव हैं।

मैंने अबतक उन जागीरदारों का उल्लेख किया है जिनका आचरण हमलोगों के प्रति पूरा संतोषजनक नही था। अब उनका विवरण करूंगा जिन्होंने सरकार को आदि से अन्त तक काफी मदद किया।

मैं ठाकुर रघुवर दयाल और किसन दयाल को इस विवरण में प्रथम मानता हूं। उनके आचरण के बारे में ग्राहम ने इस प्रकार लिखा है "मैं खासकर रंका के ठाकुर किसन दयाल और चैनपुर के रघुवर दयाल का नाम उल्लेख करता हूं। ठाकुर किसन दयाल ने मुझे जिला में प्रवेश करने की मदद प्रदान करने हेतु मेरा साथ शुरू से आखिर तक दिया। रघुवर दायाल के करपरदाज रामप्रताप सिंह ने विद्रोहियों को कई बार आक्रमण कर भगाया और रंका जिले में अनुशासन कायम रक्खा। रघुवर दयाल सिंह विद्रोहियों के आघात सहन करने के सर्वप्रथम थे। उनकी जायदाद सभी जगह लूटी गयी तथा उनके अनुयायियों तथा सेवकों को कई जगह जान से भी हाथ धोनी पड़ी।

जिस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण भोगताओं के विरोध का मुकाबला किया और आरम्भ से हमलोगों के वफादार रहे, उसके लिये वे प्रशंसा के पात्र हैं। अतएव इन्हें रायबहादुरी की पदवी और खिल्लत प्रदान करना जरूरी है। खिल्लत के साथ इन्हें दो नाली वाली बन्दूक भी देना चाहिये क्योंकि दोनों जागीरदार शिकारी भी हैं। इसके अतिरिक्त मेरी राय है कि चेमूसेनया की जागीर जो नीलाम्बर तथा पीताम्बर की थी और जो अभी जब्त है, ठाकुर रघुवर दयाल को मिलनी चाहिये। इस जागीर का वार्षिक शुल्क नाम मात्र का ४३रु० ११ आ० ९ पा० था, मैं इसी शुल्क पर इन्हें जागीर देना चाहता हूं। परन्तु शर्त यह रहेगी कि इन्हें पहाड़ी घाटियों से गुजरते हुए राहगीर की रक्षा करनी होगी।

रघुवर दयाल सिंह ने अपनी रियासत में खेती करवाना प्रारम्भ कर दिया है, अतएव मुझे उम्मीद है कि इसका बन्दोबस्त भी वे उचित तौर पर करेंगे। इस रियासत में नाम के लिये १२ ग्राम हैं, परन्तु इसमें कई छोटे-छोटे टोले तथा कारवाह ग्राम भी हैं। यह रियासत जंगल तथा पहाड़ियों से अधिक विभक्त नहीं है।

नवागढ़ के शिवचरण राय की जागीर ५६ गांवों की है। ने इस व्यक्ति का उल्लेख अपने पत्र ी १७वीं कंडिका में किया है। यह वह व्यक्ति है जिसने गवर्नमेंट कर्मचारियों को लेसलीगंज से भागने पर उनकी जान, खजाना और अभिलेख की रक्षा की। इसने अपनी जागीर में अमन कायम रखा तथा ग्राहम और मुझको काफी मदद की। मैं सिफारिश करता हूं कि इसे सेवा के बदले खिल्लत दी जाय तथा १०० या १५० रुपये अतिरिक्त वार्षिक रकम की जागीर दी जाय। यह जागीर जब्त या खालसा जमीन में से दी जानी चाहिये।

मंका के कुंवर भिखारी सिंह, जो एक छोटे जागीरदार हैं, आरम्भ से हमलोग के वफादार रहें और काफी सेवा प्रदान किये। यह वह चेरो जमीन्दार में से हैं जिसने कभी सरकार के विरूद्ध कोई षडयंत्र विद्रोहियों से मिलकर नहीं किया तथा बराबर साथ दिया। उसने ग्राहम को सर्वप्रथम मदद की और उसकी दी गयी सूचना से उसे काफी लाभ हुआ। फलस्वरूप मंका में उसके गृह पर विद्रोहियों का आक्रमण हुआ और वह जलाया गया। मुश्किल से कुछ दोस्त कोलों ने उसके परिवार की रक्षा की।

भिखारी सिंह के ग्राम के समीप ही रेगा सिंह की जब्त जागीर है। इसे विद्रोह के आरोप में फांसी दी गयी। इसकी जागीर ५ ग्रामों की है तथा सरकार को ३० रुपये वार्षिक आय इससे है। मेरी राय है कि यह जागीर और ऐसी अन्य जागीर भिखारी सिंह को इसकी वफादारी के फलस्वरूप मिलनी चाहिये। इसके अलावे इसे खिल्लत भी दो जाय। निम्नलिखित जागीरदारों ने सरकार को पलामू में अनुशासन पुनःस्थापन हेतु काफी मदद दिये:—

लादी के कुंवर शिवचरण सिंह, नामूदंग के बाबू देवी बक्स सिंह, वामनडीह के देवनारायण सिंह, उन्टारी के देवनाथसिंह, करपरदाज, चन्दगीर सतगांव के अखौरी गौरी चरण राम, कानूनगो, मिन्टू के कुंवर त्रिलोजित सिंह।

आपका,
डाल्टन,
छोटानागपुर के आयुक्त।

अनुलग्नक ३

मिलीटरी कन्सलटेशन, २७ नवम्बर १८५७, संख्या ४१०

इसमें पलामू की स्थिति के बारे में कई प्रसंग हैं। पुरुलिया स्थित कर्नल फोर्स्टर को आदेशित किया गया कि वह डाल्टन की मदद हेतु डोरंडा को प्रयाण करे। यह इस समय शेखबत्ती बटालियन का कमांडेंट था। आयुक्त को आदेश मिला कि वह कर्नल फोस्टर को उपयुक्त सूचना तथा मदद प्रदान करे। कनल फोर्स्टर को आज्ञा हुई कि वह काफी तायदाद में बटालियन तथा तोप लेकर डोरंडा को प्रयाण करे। इसके अधीन

आयुक्त की फौज भी कर दी गयी। ट्रंक रोड के परिवहन और रसद के सुपरिंटेंडेंट को आदेश मिला कि वह गाड़ी, हाथी इत्यादि से मदद करें।

मिलीटरी कन्सलटेसन, २७ नवम्बर १८५७, संख्या ४११

इसमें उल्लेख है कि शेखवत्ती बटालियन जो पलामू के विद्रोह के दमन में व्यस्त है अंत में शाहाबाद जिला के दक्षिण हिस्सा में भेजा जाय जिसमें वहां शान्ति का पुनःस्थापन हो जाय।

मिलीटरी कन्सलटेशन, १० सितम्बर, संख्या ४००

इसमें छोटानागपुर के आयुक्त ने पलामू की स्थिति पर दृष्टिगोचर किया है। इसमें उल्लेख है कि बिहार का जमीन्दार भानु प्रताप अपने को पलामू में कुंवर सिंह का सूबेदार बतलाता है और वह भोगता तथा खरवारों के साथ विद्रोह में कार्य कर रहा है। इसके साथ कई विद्रोही हैं।

मिलीटरी कन्सलटेशन, २९ अक्टूबर १८५८, संख्या १६३-६४

आयुक्त डालटन ने ३० सितम्बर को बंगाल सरकार के सचिव के पास पत्र भेजा कि सेनथा के असंतुष्ट भोगता को शाहाबाद के विद्रोहियों से मदद मिलने की उम्मीद है। इसे जरूर रोकना चाहिये। इसके लिये उसने सिक्ख भोलेन्टियर तथा कोल और संथाल की फौज कप्तान हेल के अधीन भेजने की मांग की।

कप्तान डाल्टन आगे ८ दिसम्बर १८५८ को लिखता है कि गत ३० तारीख तक पलामू में १०० विद्रोही आये जो सिबहर सिंह के अधीन हैं। इनलोगों का दूसरा नेता शायद राम बहादुर था। ग्राहम चैनपुर में तथा डेविस चेचारी में खेमा गिराये हुए थे। आयुक्त ने प्रार्थना की कि २९ वें फूट की दो कम्पनी रांची से, जो हजारीबाग के लिये है, पलाम भेजा जाय और उसकी जगह हजारीबाग में दूसरी फौज भेजी जाय।

पांचवां परिच्छेद

रांची

प्रारम्भिक इतिहास

अन्य कुछ मंडलों से विपरीत रांची मंडल के यत्र-तत्र पाये गये कब्रगाहों आदि के पत्थरों से इस जिले के प्राचीन काल पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। सोनाहाटू थाना के चोकाहाटू ग्राम में हजारों पुराने जमाने के स्मारक पाये जाते हैं। कर्नल डाल्टन ने इनकी संख्या ७,३६० बतायी थी और उसके विचार से खुदाई होने पर इस तरह के स्मारक की एक तह और भी नीचे मिल सकती थी। खूंटी अनुमंडल के चापी ग्राम में, तोरपा अंचल के गांवों में तथा अन्य दूसरी जगहों में अभी भी प्राचीन भवनों का भग्नावशेष पाया जाता है। प्रस्तर युग के प्रारम्भिक तथा उत्तरार्द्ध काल के प्रस्तर खंडों का पता लगा है और उन्हें पहचाना भी गया है। ताम्र युग की कारीगरी के सामान, ताम्बे और लोहे के औजार आदि भी मिले हैं, जो पटना म्यूजियम में देखे जा सकते हैं। स्वर्गीय श्री एस० सी० राय का ध्यान इस जिले के "असुर" भूमि की ओर आकृष्ट हुआ था और गवेषणाओं के आधार पर उनका मत था कि छोटानागपुर में भी सभ्यता का विकास सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता के समकालीन ही हुआ। पूर्ण अनुसन्धान नहीं होने के बावजूद भी इस मंडल की पुरातन सभ्यता के ज्वलन्त प्रमाण मिलते हैं।

वैदिक काल में इस क्षेत्र के अनेकों नाम मिलते हैं। विभिन्न प्रकार के आदिवासियों को "कोल" नाम से जाना जाता था, पर उन्हें "परवतिया" तथा "किरात" भी कहा जाता था।

कर्नल डाल्टन के मतानुसार "कोल", जो नाम साधारणतः छोटानागपुर के आदिवासियों के लिये लिया जाता है, गंगा नदी के मैदान में प्रारम्भिक अप्रवासी थे और वहां से प्रवासित होने के पहले ही सभ्यता के हल्के रंग में रंग गये थे। बौद्ध धर्म का प्रचार होने के समय तक मुण्डा और दूसरे आदिवासियों के अधिकार में, ऐसा कहा जाता है कि पूरा "किकट" या मगध का भाग था। लेकिन उन्हें बौद्ध तथा जैन धर्मों के फैलने के साथ-साथ इन क्षेत्रों को छोड़ना पड़ा और ये मांसाहारी आदिवासी दक्खिन की ओर छोटानागपुर के अगम्य किंतु सुविधापूर्ण मैदानों में चले गये। यहां के पहाड़ी क्षेत्रों में इनका पूर्ण उत्थान हुआ। वस्तुतः छोटानागपुर का समस्त क्षेत्र अगर "गुप्त" वंश के द्वारा विजित हुआ भी तो नाम मात्र के लिये। अधिकार, व्यावहारिक तौर पर, मुण्डाओं का रहा। उनके रस्म-रिवाज अपने आप अबाध्य गति में प्रतिपादित होते रहे और इस तरह एक स्पष्ट सामाजिक तथा बौद्धिक रूप का विकास होता रहा।

ईसा की सातवीं शताब्दी से यवन शक्ति के उत्थान-काल तक उक्त क्षेत्र का राजनीतिक इतिहास दुर्लभ है। मुसलमानों के शासन काल में इस भाग का नाम झारखंड पड़ा। यवन लोग संथाल परगना को भारखंड तथा चुटियानागपुर (जिसका नाम बाद में छोटानागपुर रखा गया) को झारखंड कहकर पुकारते थे। श्री चैतन्य चरितामृत में भी झारखंड का जिक्र आया है। चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन से जगन्नाथपुरी जाते समय झारखंड से होकर ही गुजरे थे तथा उनका प्रभाव यहां भी जबर्दस्त रूप से पड़ा और

अभी भी वर्त्तमान है। पांच परगना तथा खूंटी अनुमंडल अभी भी वैष्णवों का सुदृढ़ अड्डा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि खूंटी अनुमंडल के बुन्दू, तामर और जरिया आदि जगहों में चैतन्य महाप्रभु का आगमन हुआ था। आदिवासियों का अल्पसंख्यक किन्तु प्रभावशाली हिस्सा, यथा ताना और भगत आदि लोग जानवरों के मांस को छूते भी नहीं हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब कभी छोटानागपुर में सामाजिक तौर पर धार्मिक आन्दोलन हुआ है तो उसमें किसी-न-किसी रूप में वैष्णव सिद्धान्त जरूर रहे हैं।

शेरशाह के सेनापति "कावाइ" द्वारा झारखंड पर आक्रमण किया गया, क्योंकि महर्त नामक चोरो राजा ने शेरशाह को नाराज कर दिया था।

१५८० ई० में सम्राट अकबर के समय में इस पूरे क्षेत्र का एक सूबा बना दिया गया। फिर भी मुगलों का आधिपत्य यहां दृढ़ नहीं हो सका क्योंकि यह भाग अगम्य होने के साथ-साथ यहां के निवासी अपने सरदारों की असीम भक्ति से ओत-प्रोत थे। मुगलों की सत्ता दिखलाने के लिये कभी-कभी फौजी टुकड़ियां यहां भेजी जाती थीं। ऐसा मालूम होता है कि १६१६ ई० में बादशाह जहांगीर के शासन काल में इस जिले पर चढ़ाई हुई जब यहां महाराजा दुर्जन शाल सरदार था। दुर्जन शाल को कैद कर लिया गया किंतु बाद में ग्वालियर में छोड़ दिया गया और उसे पूर्ववत एक स्वतंत्र सरदार के रूप में रहने की आज्ञा मिल गई। इसके बाद मुगल बादशाहों तथा कुकराह सरदारों का सम्पर्क सामंजस्य पूर्ण ही दिखाई पड़ता है। नियमित रूप से ६,००० रुपये सालाना कर यहां से मुगल सम्राटों को दिया जाता था।

१६२४ ई० में दुर्जन शाल के मुक्त होने से लेकर १६७२ ई० में अंग्रेजों के आगमन तक का काल इस मंडल के लिये पूण अमन का काल कहा जा सकता है, जिसका प्रमाण क्रमशः जागीरदार और ठीकेदार वर्गों के लोगों का भैया, वरैत, ओहदार आदि नामों से प्रसिद्ध होकर उत्थान करने में मिलता है। भूमिपतियों की सामन्तशाही के साथ-साथ अहीरों, कुम्हारों तथा अन्य पेशेवर व्यक्तियों का निर्विरोध क्रम से जीवन-यापन करना उक्त शांतिपूर्ण काल का द्योतक है। कुलीन धनी व्यक्तियों द्वारा उड़ीसा से ब्राह्मणों को बुलाया गया तथा उन्हें पुजारी या पुरोहित का काम करने के फल-स्वरूप जमीन दिये गये, जो लोग अभी भी रांची के आन्तरिक भागों में पाये जाते हैं। डोइसा, चूटिया, सूतियाम्बी, जगन्नाथपुर, बोरिया, तिल्मी, नागफेनी और नागर के भवन तथा मन्दिर यहां की उच्च सभ्यता की ओर इंगित करते हैं।

राजनीतिक ध्येय से उपरोक्त काल में छोटानागपुर के महाराजा का प्रभाव तथा साम्राज्य दोनों का ही विकास हुआ। बोनाई के करद महाल, चंग वाकर, गांगपुर, कोरिया, उदयपुर और सिरगुजा, सभी छोटानागपुर राज्य में मिला लिये गये, तथा छोटानागपुर के महाराजा को नजराना देने लगे। बुन्दू, तमार, सिल्ली, बन्ता, हाजम बावी आदि के जमींदारों से भी सलामी ली जाती थी। व्यावहारिक तौर पर पद्मा (हजारीबाग) और काशीपुर (मानभूम) को छोड़ लगभग सभी राज्य छोटानागपुर के महाराजा का आधिपत्य स्वीकार करते थे। यहां तक कि छोटानागपुर के महाराजा सिंहभूम के "हो" लोगों के विरुद्ध भी सैनिक अभियान करते थे।

अंगरेजों का आगमन।

१२ अगस्त १७६५ को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिल जाने से रांची मंडल भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाममात्र के आधिपत्य में आया। गिद्धौर तथा

रामगढ़ के राजाओं का आपसी घातक कलह और गोपाल राय एवं चित्रजीत राय की पलामू राजगद्दी के लिये प्रतिद्वन्द्विता आदि से अंगरेजों का ध्यान इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हुआ। १७७१ ई० में कप्तान कामक ने पलामू पर चढ़ाई की और चित्रजीत राय को राजा बना दिया। इसके बाद से रांची जिला का इतिहास पलामू, हजारीबाग तथा सिंहभूम के इतिहास से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

रामगढ़ तथा छोटानागपुर के सरदारों के आपसी वैमनस्य के आधार पर छोटानागपुर के महाराजा द्रिपनाथ शाही अपने को अंगरेजी शासन का प्रत्यक्ष रैयत समझने लगे। छोटा-नागपुर के महाराजा रामगढ़ राजा के द्वारा भूमि-कर भेजना नहीं चाहते थे क्योंकि रामगढ़ राज्य एक समय उनके अधीनस्थ था। चालाक अंगरेज तो इसी अवसर की ताक में थे। राजा द्रिपनाथ शाही की आंखें अंगरेजों की कूटनीति से शीघ्र ही खुल गईं। कप्तान कामक की महत्वपूर्ण तृवर्षीय बन्दोबस्त के आधार पर छोटानागपुर के राजा पूर्णरूपेण कर देने वाले सरदार हो गये। इस तरह द्वितीय-तृवर्षीय बन्दोबस्त के समाप्त हो जाने पर १७७७ ई० से १७७८ ई० तक वार्षिक बन्दोबस्त किया गया। १७७९ ई० तक यहां कोई स्थायी बन्दोबस्त नहीं हुआ।

सैनिक समाहर्त्ताओं की व्यवस्था का शीघ्र परिणाम अपराधों की वृद्धि, जागीरदारों और ग्रामीणों में वैमनस्य का विकास के रूप में हुआ।

परीक्षात्मक रूप में बृटिश प्रशासकों ने १७८० ई० में रामगढ़ हिल ट्रैक्ट के नाम से एक जिले का निर्माण किया, जो १७८३ ई० तक रहा। इसमें रांची मंडल को नहीं लिया गया था लेकिन उक्त नियमित जिले के अधिकारी ही परोक्ष रूप से यहां के राजा का नियंत्रण रखते थे।

उक्त अधिकारी का असीम अधिकारों से युक्त, एक ही साथ न्यायाधीश, समाहर्त्ता तथा दंडाधिकारी होने से, शासन व्यवस्था में गड़बड़ी होने लगी। अतः १५ अप्रील १८०० ई० के एक आदेश में राजस्व समिति (बोर्ड ऑफ रेवेन्यू) ने रामगढ़ को बिहार के समाहर्त्ता के क्षेत्राधिकार में दे दिया। बिहार के समाहर्त्ता ने इस आधार पर राज्य की अन्दरुनी व्यवस्था में भी दखल देना आरम्भ किया और इस तरह मुद्रांकित-पत्रों का प्रचलन छोटानागपुर राजा की शक्ति के ऊपर सर्वप्रथम आघात के रूप में किया गया। विशेष कर संग्रह के प्रमुख उद्देश्य से १८०९ ई० में एक बिहार के उप-समाहर्त्ता की बहाली की गई और उसे रामगढ़ में स्थित किया गया। श्री रिचार्ड वालपोल ऐसा सर्वप्रथम उप-समाहर्त्ता था। कुछ ही दिनों बाद मेजर रफ्सेज दक्षिण बिहार के सरकार का राजनीतिक अभिकर्त्ता (पोलिटिकल एजेंट) नियुक्त हुए। इसी साल तमार थाने में भयानक अनावृष्टि हुई तथा राजा से पुलिस की व्यवस्था का भार लेकर अंगरेज पुलिस अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस) के अधीन कर दिया गया। आदिवासियों का दैनिक पेय 'हंड़िया' के ऊपर कर लगा दिया गया। इससे असंतोष बहुत उग्र रूप में फैला तथा प्रतिकार स्वरूप इसको १८३३ ई० में हटा भी दिया गया, लेकिन ऐसा बहुत दिनों के बाद किया गया जबकि विद्रोह बिल्कुल फूट पड़ा था।

अंगरेजों का छोटानागपुर के राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करने के समकालीन ही यहां सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्तियां भी हुईं। इन क्रांतियों का मौलिक सिद्धान्त था कि "जमीन उसकी है जिसने जंगलों तथा पहाड़ी भागों को साफ किया है"। किंतु इसी अत्यधिक प्रजातंत्रवादी सिद्धान्त के आधार पर सामन्तशाही की जड़ गहरी जम गई थी। अतः अंगरेजों ने जब अपनी हस्ती मजबूत करनी चाही तो उनके सामने मानकी तथा

मुण्डा, परहा, पाहन और महतो आदि की परम्परागत प्रथायें पड़ीं। पाहन एक आध्यात्मिक सलाहकार होता था जिसका काम बोंगा (भूत) को प्रसन्न रखना तथा आदमियों और पशुओं में किसी महामारी को फैलने से रोकना होता था। महतो एक प्रशासनिक मुखिया जैसा होता था। लेकिन छोटानागपुर के महाराजा के शासन संचालन के क्रम में उक्त संस्थाओं की सत्ता कमजोर पड़ती गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी प्रथमतः मात्र कर पाने से ही संतुष्ट रहती थी। उनकी अन्दरुनी व्यवस्थाओं में यह कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करती थी। किन्तु मात्र कर पाने के उद्देश्य ने ही कम्पनी को वहां की आन्तरिक प्रथाओं में दखल देने को बाध्य किया तथा उनके खोखलेपन से भी अवगत करा दिया। लगभग तीन शताब्दियों की महाराजा छोटानागपुर के अधिनायकत्व में राजाओं की शासन व्यवस्था बिल्कुल असफल रही। कहीं भी शांति नहीं थी। किसान इस बात पर निश्चित नहीं हो पाते थे कि किसके लिये खेती की जाती थी। वर्त्तमान छोटानागपुर, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश के कुछ भागों में उस समय मराठे आक्रमणकारियों तथा लुटेरों का राजा सामना नहीं कर पाते थे। फलस्वरूप राजस्व में नियमित रूप से बकाया पड़ता जाता था। १८०९ ई० में अंगरेजों के उदाहरण पर ही जमींदारों द्वारा छः आरक्षी थानाओं की स्थापना हुई थी। लेकिन राजाओं ने उक्त आरक्षियों की व्यवस्था को अपनी तौहिनी समझी। उन्होंने प्रतिशोध स्वरूप जघन्य अपराधों यहां तक कि खून और डकैती भी करने को प्रोत्साहित किया। अभागे कोलों को कहीं भी शरण नहीं थी। उनकी पुकार न तो थाने में और न सैनिक समाहर्त्ता के न्यायालय में ही सुनी जाती थी। सैनिक समाहर्त्ता का मुख्यालय दूरस्थ चतरा में था जहां से हटाकर शेरघाटी में लाया गया। जब कभी आदिवासी थाने या न्यायालय जाते थे तो वहां जमीन्दार के आदमियों को पहले से ही बैठा देखते थे। इतना ही नहीं, जमींदार के आदमी उनकी प्रतीक्षा में इस तरह तैयार रहते थे कि झूठी गवाही दिलाकर उल्टे उन्हीं को हथकड़ी पहना दी जाय। तमार के राजा ने इस तरह अपने एक रैयत रघुनाथ सिंह के ऊपर अत्याचार किया, जो उसकी नालिश करने को न्यायालय गया। वहां ठीक प्रचलन के मुताबिक राजा के आदमी गवाहों के साथ तैयार थे। मामला इस कदर मोड़ा गया कि रघुनाथ सिंह को कालेपानी की सजा मिल गई। १८२० ई० के तमार विद्रोह का यह एक प्रधान कारण था। नये, बिहार के पुलिस कर्मचारीगण बाहर के ही थे। बहुत-से जागीरदार भी इसी तरह बाहर के अर्थात् विदेशी थे जिन्हें "दिक्कू" कहा जाता था। छोटानागपुर के महाराजा तथा उनके अधीनस्थ राजागण दिक्कू अर्थात् बाहर, बिहार, बंगाल और उड़ीसा के आदमियों का ही विशेष भरोसा रखते थे और वह सब क्रमशः आदिवासियों की क्रोधाग्नि को और भी प्रज्वलित कर रहा था।

१८५७ के आन्दोलन के तीन या चार दशाब्दियां पहले से ही यहां की ग्रामीण, सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण क्रमशः विक्षुब्ध होती हुई राजनीतिक पृष्ठभूमि तैयार कर रही थी। कुछ कारणों के दृश्य से तो विरोधाभास ही होता था। एक तरफ तो मानकी या मुण्डा के अधिनायकत्व में ग्रामवासी परहा लोगों की संस्थायें थीं, लेकिन वस्तुतः उनका संस्थाओं पर कोई अधिकार नहीं होता था। ग्रामवासी ही इसका संचालन करते थे। दूसरी तरफ वे परहा लोग राजनीतिक प्रधानता प्राप्त कर चुके थे। सार्वजनिक मतलब की बातों में, यथा सुरक्षा, शिकार, पर्व-त्योहार, झगड़ों का निर्णय आदि हर बातों में परहा के पंचायत का हाथ रहता था। पंचायत को परम्परागत न्याय तथा दण्ड देने के अधिकार प्राप्त थे। इसका मुखिया सरदारों में से होता था जिसकी मदद के लिये स्थायी कर्मचारी यथा पाहन, पनवरा (कोटियर्स), पाण्डे, सिपाही आदि रहते थे। लेकिन छोटानागपुर के महाराजा की बढ़ती हुई ताकत में परहा राजाओं की शक्ति विलीन होती गई और इसी क्रम में देहातों की परहा पद्धति भी दिनानुदिन अवनति के गर्त्त की ओर बढ़ती गई।

छोटानागपुर महाराजा के अनुगामी राजा, जैसा कि ऊपर जिक्र किया जा चुका है, तामार, बुन्दू, राही, बड़ाण्डा, सिल्ली और बरवे की जमीन्दारियों में थे। इन अनुगामी राजा तथा स्वयं महाराजा के द्वारा राजनीतिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार के आदमियों को नियुक्त कर उन्हें बड़े-बड़े इनाम के तौर पर काफी जमीन दिये गये। वे लोग बरैक, राजपूत तथा रावटिया थे जो वगैर किसी काम के पड़े रहते थे। मूलतः उनके प्रति ऐसी धारणा की गई थी कि वे राजाओं की फौज का काम करेंगे। उनके छोटे भाइयों की, जो लाल साहब या टिकैत के नाम से जाने जाते थे, मात्र जन्म के अधिकार से विशाल भू-सम्पत्ति का स्वामित्व मिल जाता था। इन्हीं निरर्थक तथा आलसी जमींदारों के निर्माण के फलस्वरूप अंगरेज यहां घुस सके और घुसने के बाद अपनी सत्ता छोटानागपुर में दृढ़ कर सके।

प्रथमतः अंगरेजी नीति जानबूझ कर या अनजाने ही वहां की राजनीतिक वातावरण से बेफिक्र ही रही। अभिलेख प्रमाण हैं कि उन्हें अपनी बढ़ती लगान को तथा उस क्षेत्र के बढ़ते सूद-दरों को देखकर संतोष होता था। गरीब आदिवासियों से जबर्दस्ती बेगार का काम लिया जाता था। कमियौती प्रथा खुलेआम प्रचलित थी तथा कुछ रुपये कर्ज के लिये दो-दो, तीन-तीन पुश्तों तक मुफ्त काम करना पड़ता था।

राजनीतिक अशांति, जो १८५७ के कुछ दशाब्दियाँ पहले हुई, अप्रत्याशित नहीं थीं वह तो मात्र प्रतिशोधात्मक न्याय के रूप में प्रगट होना चाहती थी। चमकती हुई किन्तु खोखली व्यवस्था को जिसका आधार भी बहुत कमजोर था, छिन्न-भिन्न कर देना उद्देश्य था। असंतोष की आग भड़कना ही चाहती थी कि तामाड़ के दुखन शाही मानकी द्वारा इसका सामान भी प्रस्तुत हो गया। १७७६—७८ के बीच में कुछ हल्के विद्रोह पड़ोस के परगने राही तथा सिल्ली में हुए थे। तामाड़ के मुण्डाओं का, बिशुन मानकी के नेतृत्व में, और उससे भी प्रबल १८०७ ई० में उसी परगने में दुखन शाही मानकी के नेतृत्व में आन्दोलनों का, अंगरेजों ने स्वयं मुकाबला किया, यद्यपि वे इतना जरूर समझ गये थे कि आन्दोलनों का मूल कारण क्या था। कप्तान रफसेज, लेफ्टिनेन्ट वेल्स तथा और दूसरे लोग कई वर्षो तक वहां की व्यवस्था सम्भालने में जुटे हुए थे। १८१२ ई० में फिर एक उपद्रव उठ खड़ा हुआ। इसे पूर्णतया दमन भी नहीं किया गया था कि एक दूसरा प्रचण्ड विद्रोह तामाड़ में रुदन तथा कान्ता मुण्डा के नेतृत्व में शुरू हो गया। दोनों नायकों को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। लेकिन महाराजा से कुछ थाने का बन्दोबस्त ले लिया गया तथा उन्हें "सैर" का कर लगाने से रोक दिया गया, जिन बातों से ही पता चलता है कि कुछ ही दिनों के अनुभवों के आधार पर अंगरेज आन्दोलनों के कारणों को समझ गये थे।

कुछ दिनों की अमन-चैन के बाद १८३२ ई० में कोलों के विद्रोह से वातावरण फिर विषाक्त हो गया। कोल विद्रोह सिंहभूम से प्रारम्भ हुआ था जिसका वर्णन सिंहभूम के परिच्छेद में किया गया है। इसका असर रांची जिले पर भी भयानक रूप से पड़ा। तामाड़ परगने में मुण्डा लोगों की एक बड़ी सभा हुई और निर्णय किया गया कि सिक्ख तथा पठान दण्डित किये जायें। मुण्डा, ओरांव, हो, खरिया आदि सभी जातियों के लोग संगठित होकर एक मत हो गये। तामाड़ के मुण्डा लोग एक लंका गांव में सम्मिलित हुए और निश्चित किया कि उनके पास अत्याचारियों को लूटने, खून करने तथा डकैती करके धन छीनने के अलावे कोई उपाय नहीं था। अमानुषिक अत्याचार किये जाते थे। विदेशी अर्थात् दिक्कू यथा तामाड़ बुन्दू, राही और बरवे के ठीकेदार तथा जमींदार लोग अपनी जान बचाने के लिये भाग निकले। कुछ दिनों बाद आयुक्त ने सूचना भेजी कि "बेचैन, भयानक तथा रोष से भरे हुए वे लोग बगावत कर उठे, जिसकी विभीषिका

की तुलना मुश्किल से हो सकती है। लूटने को बेताब, प्रायः पीकर मत्त, वस्तुतः या अनुमानतः अत्याचारों से उत्तेजित, उनकी सारी जाति भयानक विद्रोह कर उठी। आग लगाना, लूटना तथा खून करना उनलोगों ने खुलेआम जारी कर दिया। क्या निर्दोषी, क्या दोषी, बिना किसी विचार के अन्धाधुन्ध खून-खराबी का बाजार गर्म हो उठा। बेकसूर औरतें, निस्सहाय बच्चे भी इस तूफान से नहीं बच सके। ऐसा प्रतीत होता था कि आदिवासी इस जाति का समूल विनाश कर देना चाहते हैं''। यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि विदेशी जो विद्रोहियों के हाथों पड़ जाते थे उनके शरीर के ऊपर सात जगह काटकर निशान बना दिया जाता था जो इस बात के प्रतीक स्वरूप दिया जाता था कि आदिवासियों के ऊपर सात तरह के कर लगाये गये थे, यथा हंड़िया कर, डाक कर, बट्टा (रुपये के खुदरे कुछ काटकर दिया जाना), सलामी, बेगारी अर्थात् जबर्दस्ती काम लिया जाना, जुर्माना, अफीम का कर, आदि।

किंतु आन्दोलन वस्तुतः सरकार के विरुद्ध नहीं होकर जमींदारों के विरुद्ध था। किंतु बृटिश प्रशासकों को उसमें दखल देना पड़ा क्योंकि उसका असर उनके लगान पर पड़ता था और साथ ही इसी अवसर के आधार पर वे अपनी सत्ता भी दृढ़ करना चाहते थे। १४ फरवरी को ५,००० सिपाहियों के साथ कप्तान इम्पी आया और एक मुण्डा के नेता भगत सिंह को उसके सात बेटे तथा १५० आदमियों के साथ मार डाला। इसका असर भी शीघ्र ही पड़ा। विद्रोह ठंढा पड़ गया और शांति तो नहीं बल्कि चारों ओर सूना-सूना-सा दिखाई पड़ने लगा। इसका उल्लेख तो किया जा चुका है कि विल-किन्सन ने किस तरह कोलों को शान्त करने की कोशिश की। हंड़िया के ऊपर लागू कर को उसने १८३३ ई० में हटा दिया और अपने सुधार कार्य के बदौलत बहुत दिनों तक अल-किसुन साहब के नाम से प्रसिद्ध रहा।

दक्खिन-पच्छिम सीमान्त एजेन्सी

१८३४ ई० में उपद्रव शान्त होने के बाद छोटानागपुर तथा मानभूम के कुछ हिस्से को लेकर दक्खिन-पश्चिमी सीमान्त एजेन्सी का निर्माण हुआ। न्यायालय को शेरघाटी से हटाकर लोहरदग्गा में स्थित किया गया, जिसको १२,५०० वर्गमील के अधिकार क्षेत्र के साथ जिला की श्रेणी दे दिया गया। कप्तान विलकिन्सन गवर्नर-जेनरल के सर्वप्रथम अभिकर्त्ता (एजेंट) बनाये गये और उनका मुख्यालय किशनपुर (रांची) में बनाया गया तथा फौजी छावनी डोरण्डा में रखी गई। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि इस किशुनपुर का नाम अल-किसुन साहब के नाम पर ही रखा गया था। लेफ्टिनेन्ट औसली लोहरदग्गा के लिये एजेन्ट का प्रधान सहायक (प्रिन्सिपल असिस्टेंट टू दि एजेंट) नियुक्त हुआ। उनका क्षेत्राधिकार वर्त्तमान पलामू और मानभूम जिले के लगभग था।

साधारण आइन-कानून को स्थगित कर दिया गया। एजेंट को बहुमुखी अधिकार दिये गये जिससे वह सभी विभागों का निरीक्षण कर सके। वह न्यायाधीश, दंडाधिकारी, पुलिस अधीक्षक, पोस्टमास्टर और आकस्मिक रूप में अवकाश प्राप्त डाक्टरों के बदले में भी काम करने वाला, सब कुछ था। दीवानी मामलों में सुप्रीम दीवानी तथा निजामत अदालत, राजस्व बोर्ड (बोर्ड आफ रेवेन्यू) एवं बोर्ड ऑफ कस्टम्स ऐंड ओपियम के अधीनस्थ उसे काम करना पड़ता था। गवर्नर-जेनरल के एजेंट के दो मुख्य सहायकों (प्रिन्सिपल असिस्टेंट्स टू दी एजेन्ट) को मानभूम तथा हजारीबाग जिले का भार दिया गया। ये मुख्य सहायक जिलाधीश के रूप में होते थे जिन्हें अभी डिप्टी कमिश्नर कहा जाता है। खास डिप्टी कमिश्नर नामकरण इस जगह के लिये १८४३ ई० में

किया गया। लेकिन उन दिनों डिप्टी कमिश्नर आजकल के जुडिसियल कमिश्नर तथा एजेंट आजकल के कमिश्नर के समान होते थे। इस तरह वर्त्तमान में सम्पूर्ण भारत की प्रचलित शासन-व्यवस्था का रांची से श्रीगणेश हुआ।

एजेंट को एक ओर तो मानकी, मुण्डा तथा अन्य असन्तुष्ट आदिवासियों को संतुष्ट करना था और दूसरी ओर पराजित सरदारों को राजभक्त बनाकर रखना था। सरकार द्वारा अनुमोदित ३१ नियमों को एजेन्ट के द्वारा जारी किया गया जिनमें सर्वप्रधान नियम यह था कि बिना एजेंट की स्वीकृति से किसी भी जमीन की बिक्री, गिरवी या हस्तान्तरण, कानूनन जायज नहीं समझा जायगा। एक दूसरे नियम के द्वारा किसी भी न्यायालय में वकीलों को वकालत करने से रोक दिया गया तथा मामलों की पैरवी मुख्तार या अधिकारी अभिकर्त्ताओं द्वारा होने लगी। अफीम की खेती चलाने का विचार छोड़ दिया गया तथा आबकारी और डाक के ऊपर से कर उठा लिया गया। १८४२ ई० में प्रिन्सिपल असिस्टेन्ट का मुख्यालय लोहरदग्गा से किशनपुर (रांची) हटाकर लाया गया और जैसाकि पहले जिक्र किया जा चुका है, डिप्टी कमिश्नर का पद-निर्माण १८४३ ई० में किया गया जो सत्र दीवानी तथा फौजदारी के मामलों की जांच करते थे।

किन्तु उक्त उच्च श्रेणी की न्याय व्यवस्था जिसके साथ साधारण स्तर पर समुचित न्याय का इन्तजाम नहीं था, अपराध कम करने तथा लोगों की सुरक्षा के ख्याल से उपयुक्त साबित नहीं हुआ। अतः धीरे-धीरे जमींदारी पुलिस को हटाकर थानाओं में नियमित पुलिस का प्रबन्ध किया गया। घाटवालों को काम करने के लिये सतर्क कर दिया गया। एजेन्ट के साथ-साथ दो मुन्सिफों की भी बहाली हुई जिनमें एक लोहरदग्गा तथा दूसरे किशनपुर में स्थित किये गये। १८४५ के नवम्बर महीने के लगभग एक प्रिन्सिपल सदर अमीन की बहाली हुई और उसे हजारीबाग में पदस्थापित किया गया। १८५३ ई० में यह कार्यालय उठकर गोला चला गया। वर्त्तमान डिप्युटी कमिश्नर के अधिकार उस समय प्रिन्सिपल असिस्टेंट को फौजदारी मामलों की जांच के लिये प्राप्त थे। यहां के फैसले की अपील एजेन्ट के यहां होती थी जिसे अधिकार था कि उसको और भी पक्का कर दे या एकदम रद्द कर दे या कुछ हेर-फेर कर दे। प्रिन्सिपल असिस्टेंट फांसी की सजा नहीं दे सकते थे। उन्हें सात वर्ष तक की सजा देने का अधिकार था।

एक और दूसरा हितकर नियम लागू किया गया जिसके द्वारा मुन्डा, मानकी तथा कोलों के विरुद्ध एक पक्षीय (*exparte* decree) न्याय मुन्सिफ नहीं दे सकते थे। १८५९ ई० में नागरिक प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) का पुरःस्थापन किया गया। इस वक्त तक कप्तान विलकिन्सन के चलाये साधारण नियम ही चालू थे। १८६१ में पुलिस ऐक्ट पास किया गया। पुलिस ऐक्ट के पास होने से जमींदारी पुलिस थाने के अवशेष अधिकारों का भी खात्मा हो गया। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि जमींदारी पुलिस कर्मचारीगण, यद्यपि अत्यन्त भ्रष्ट तथा निकम्मे हो गये थे, फिर भी बर्खास्त कर दिये गये तो राजाओं तथा छोटानागपुर के महाराजा को इससे खुशी नहीं हुई। पालकोट थाना में महाराजा तथा अन्य थानाओं में विभिन्न राजा लोग दारोगा का कार्य करते थे, जो कार्य उस समय सर्वाधिक सराहनीय तथा आदरनीय था।

एक अविनियम प्रमंडल

(Non-regulation Division)

१८५४ ई० की २०वीं धारा के प्रचारित होने में यह स्पष्टतया दिखाई पड़ता है कि अंगरेज प्रशासक तत्कालीन शासन-व्यवस्था की खामियों से अवगत थे। इस धारा

के अनुसार एजेंसी नाम हटाकर छोटानागपुर को एक अविनियम प्रमंडल बना दिया गया और यह बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन कर दिया गया जो प्रबन्ध १९१२ ई० तक रहा। एजेन्ट को कमिश्नर बनाया गया तथा प्रिन्सिपल असिस्टेंट को प्रिन्सिपल असिस्टेंट कमिश्नर बनाया गया एवं दूसरे सहायक एजेन्ट वरीय या कनीय सहायक कमिश्नर बना दिये गये। इस तरह सर्वप्रथम छोटानागपुर का कमिश्नर डब्लू० जे० एलेन हुआ।

एक दूसरी मार्के की घटना, रांची में ईसाई पादरियों का १८४५ ई० में, आगमन, कहा जा सकता है। पादरियों ने आते ही यहां के गिरे हुए तथा पीड़ित जातियों की समस्याओं में अपने को लगाया क्योंकि उन्हें इनकी दशा में सुधार होना जरूरी मालूम हुआ। वे लोग थोड़े ही समय में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये तथा कितने आदिवासियों को ईसाई धर्म का अनुयायी बना लिया। १८४५ से १८५७ ई० तक रांची जिले के अन्तरंग हिस्से तक उनलोगों की पहुंच हो गयी थी। लेकिन १८५७ ई० का आन्दोलन, इनकी व्यवस्था को भी कुछ-कुछ आन्दोलित कर उठा। पादरियों की बहुत-सी संस्थायें नष्ट कर दी गयीं तथा उन्हें जान बचाने के लिये भाग जाना पड़ा। इसी पृष्ठभूमि पर १८५७ के आन्दोलन का अध्ययन किया जा सकता है।

१८५७ का आन्दोलन

रांची के १८५७ के आन्दोलन के सम्बन्ध में प्रोफेसर हर प्रसाद चटर्जी का विचार उनके लेख बिहार में विद्रोह (बंगाल पास्ट एंड प्रेजेन्ट, खंड ७५, प्रथम भाग) में इस प्रकार उद्धृत है--

छोटानागपुर के पहाड़ी हिस्सों में गदर विस्तृत रूप से फैल चुका था। "१८५८ में बंगाल सरकार के अधीनस्थ प्रान्तों में गद्दर का प्रभाव नामक विवरण" में फ्रेडरिक हैलिडे ने लिखा कि छोटानागपुर प्रमंडल सम्पूर्ण विद्रोह काल तक चिन्ता तथा व्याकुलता का विषय बना रहा और कभी-कभी तो यहां का वातावरण वस्तुतः खतरनाक हो जाता था। सचमुच इस क्षेत्र के जैसा सतत् अशान्ति का केन्द्र बंगाल का कोई भी प्रमण्डल नहीं बना रहा। यहां कई छोटे-छोटे राज्य थे जो कभी स्वतंत्र रह चुके थे। इस मौके पर उन्हीं राजाओं ने तत्कालीन विक्षुब्ध परिस्थिति से फायदा उठाना चाहा। फलस्वरूप यहां विद्रोह सर्वव्यापी हो गया।

....हजारीबाग की तरह ही रांची भी विद्रोह का केन्द्र था। प्रारम्भ में रांची, रामगढ़ बटालियन का मुख्यालय था जिसमें परिपूर्ण पैदल सेना, घुड़सवार और युद्ध सामग्रियां थीं। यहां की फौजों में बिहार, छोटानागपुर तथा भारत के सभी भागों के रंगरूट थे। रामगढ़ बटालियन का दो दस्ता ३० घुड़सवारों तथा दो बन्दूकों के साथ लेफ्टिनेन्ट ग्राहम के अधीन हजारीबाग की फौजों से हथियार रखवाने के लिये भेजा गया। लेकिन रास्ते में, गदर का वृत्तान्त सुनकर, उनलोगों ने भी विद्रोह कर दिया। बन्दूकें, अस्त्र-शस्त्र गोले, चार हाथी तथा ग्राहम की निजी सम्पत्ति सभी विद्रोहियों के द्वारा अपने कब्जे में कर लिये गये और कप्तान की आज्ञा के विरुद्ध ही वापस रांची की ओर प्रस्थान कर दिया गया। रांची से बीस मील दूर, बर्मों में ही उनलोगों के साथ हजारीबाग का फौजी विद्रोही दल भी मिल गया। फिर भी घुड़सवार बफादार ही रहे तथा लेफ्टिनेन्ट ग्राहम के साथ हजारीबाग की ओर बढ़े। वहां रांची में कप्तान डाल्टन एवं अन्य यूरोपियन पदाधिकारी अपनी स्थिति खतरनाक समझकर रांची से हजारीबाग को चल दिये। हजारीबाग आकर जैसे ही डाल्टन ने अपना अधिकार जमाया, वैसे ही रांची तथा डोरण्डा विद्रोही के हाथों में चले गये। हजारीबाग में

व्यवस्था कायम करने के सिलसिले में, डाल्टन को रामगढ़ के राजा से पर्याप्त सहायता मिली। राजा ने ४०-५० सशस्त्र आदमियों को उनकी सेवा में हाजिर कर दिया। रामगढ़ के राजा की राजभक्ति में कोई सन्देह नहीं हो सकता था। इसी बीच विद्रोही रांची में लगभग एक महीने ठहर कर, जैसाकि पहले भी जिक्र हुआ है, कुंवर सिंह से मिलने के लिये रांची से रामगढ़ की ओर प्रस्थान किये। किन्तु, अन्त में वे पलामू में चन्दवा और बालूमठ होते हुए, चतरा की ओर बढ़े। रांची छोड़ते समय उन्होंने शहर के बाशिन्दों के ऊपर घोर अत्याचार किया। उनकी सम्पत्ति लूट ली, यहां तक कि उनकी स्त्रियों को भी बेइज्जत किया। अफसरों के बंगले जला दिये गये। एकमात्र ग्राहम का बंगला बच गया। जिलाधीश (प्रिन्सिपल असिस्टेंट) की कचहरी और जेल में आग लगा दी गई और अभिलेखों को नष्ट कर दिया गया। अस्पताल में ५० रोगियों का ख्याल कर अस्पताल के मकान को ध्वस्त नहीं किया गया। विप्लवकारियों ने जेल से सम्बन्धित एक वृद्ध देशी डा० बूडू को मार डाला। लेकिन उनके चले जाने के बाद रांची की स्थिति शान्तिपूर्ण होने लगी और शीघ्र ही व्यवस्था कायम हो गई। कप्तान डाल्टन २३ सितम्बर १८५७ को फिर यहां वापस आ गये।

रांची के जन-साधारण ने विद्रोह में बहुत कम हाथ बटाया। अधिकांश प्रमुख जमींदार सरकार के पक्ष में ही थे। कुछ विरोधी जमींदारों में छोटानागपुर के महाराजा के भूतपूर्व दीवान **मौंरो** के गणपत राय का नाम उल्लेखनीय है। उन्हें विद्रोहियों ने अपने सेना नायक के रूप में रखा था। फिर भी उपरोक्त वर्णन बहुत कुछ अपूर्ण ही कहा जा सकता है।

१ अगस्त १८५७ को, जुडिशियल कमिश्नर कप्तान ओक्स जो हजारीबाग में मामलों की जांच करने गया था, रांची वापस लौटा। उसने खबर दी कि हजारीबाग में सिपाही विद्रोह हो चुका था और फलतः सभी यूरोपियन वहां से भाग गये थे। यह समाचार पहले से भी लोगों के बीच फैल चुका था। यह भी सभी जान चुके थे कि ग्राहम के अधीन हजारीबाग के विद्रोहियों को कब्जे में करने के लिये भेजी हुई फौज भी रास्ते ही में विद्रोह कर उठी थी। एक जमादार जयमंगल सिंह ने सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया था। आयुक्त डाल्टन ने यूरोपियन पदाधिकारियों तथा कप्तान ओक्स से परामर्श किया और अपराह्न में हजारीबाग के लिये प्रस्थान कर दिया। वह ओल्ड रांची रोड से होकर बढ़ा, जो चिथोरिया और बादम होकर जाती थी। उसका ध्येय था कि ग्राहम के साथ के विद्रोही सिपाहियों से मुठभेड़ नहीं हो। डाल्टन हजारीबाग पहुंचा और तब ग्रेंड ट्रंक रोड पर स्थित बगोदर गया।

सैनिक संमन्त्रणा (Military Consultation) दिनांक १४ अगस्त १८५७, संख्या ३६२ में एक संख्या १२६८, दिनांक १२ अगस्त १८५७ का पत्र है जो बंगाल सरकार के सचिव के द्वारा भारत सरकार के सचिव के नाम से प्रेषित है। इस पत्र में रांची में विद्रोह के प्रारम्भ का वर्णन मिलता है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि कप्तान डाल्टन तथा अन्य यूरोपियन लोग अन्तिम क्षणों में नाउम्मीद होकर रांची से घोड़े पर पिथेरिया होते हुए हजारीबाग को चल पड़े। ऐसा विश्वास किया जाता था कि जमींदार लोग अंग्रेजों के साथ हैं। विशेषतः रामगढ़ के राजा के ऊपर तो और भी पक्का विश्वास था और इसी आधार पर ऐसा सोचा जाता था कि जिले पर शीघ्र ही पुनः अधिकार कर लिया जायेगा।

रांची से यूरोपियनों के चले जाने पर रांची में विद्रोहियों का बोलबाला हो गया। विद्रोही खुल कर खेले। डोरण्डा में न्यायालय का मकान, यूरोपियनों के बंगले,

सर्वप्रथम आक्रमण, अग्नि-कांड और लूट के शिकार बने । खजाने को लूट लिया गया तथा जेल को तोड़ कर खुला छोड़ दिया गया । भय से बाजार बन्द कर दिया गया । ईसाई पादरियों की संस्थायें बुरी तरह ध्वस्त कर दी गयीं । बहुत से पादरी कलकत्ता को भाग गये । रांची में जर्मन पादरियों के गिरिजाघर के शिखर पर चार गोले दागे गये जिनमें एक निशान का छेद अभी भी टावर के दीवार के सिरे पर देखा जा सकता है । ईसाइयों को बुरी तरह तंग किया गया ।

किन्तु सशस्त्र विद्रोह जन समूह तक पूरा नहीं फैल सका । छोटानागपुर के महाराजा तथा अन्य राजा लोग इसके प्रति अन्यमनस्क थे और उनका दबदबा जनता के ऊपर अभी भी काफी था । केवल दो जमींदार, बरकागढ़ के ठाकुर विश्वनाथ शाही और भौंरो के पान्डे गणपत राय ने विद्रोही सिपाहियों की मदद में हाथ बटाया । जमादार जयमंगल सिंह तथा मधू सिंह के साथ-साथ ठाकुर विश्वनाथ सिंह ने नेतृत्व किया और पान्डे गनपत राय तो सेनापति ही बना दिये गये थे । किन्तु ये नेता जन समूह पर नियन्त्रण नहीं रख सके । इसमें कोई सन्देह नहीं कि पर्याप्त लूट-पाट और खून-खराबी की गई । निरुत्साह सिपाही विभिन्न दलों में विभक्त होकर विभिन्न भागों से लूट-पाट करते हुए आगे बढ़े । फिर भी एक दल का नेतृत्व करते हुए नेता लोग कूरु और चांदवा होते हुए चतरा पहुँचे ।

आयुक्त डाल्टन, २३ सितम्बर को रांची लौटे । मेजर इंगलिश एक दिन पहले ही डोरन्डा (रांची) पहुँच चुके थे और उन्हें रांची पहुँच कर विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा, क्योंकि विद्रोही पहले ही रांची छोड़ चुके थे । न्यायालय का कार्य पुनः चालू हो गया । आयुक्त के लौटते ही मकानों का बनना भी फिर शुरू हो गया ।

डाल्टन ने शीघ्र ही प्रशासन को भी शृंखलाबद्ध किया । विद्रोहियों का टोह लगाया जाने लगा और उन्हें प्रतिकारात्मक दंड दिया जाने लगा । विश्वनाथ दूबे और महेश नारायण शाही की मदद से ठाकुर विश्वनाथ शाही और पान्डे गणपत राय मेजर नेशन के द्वारा पकड़े गये । जुडिशियल कमिश्नर ने संक्षिप्त विचार किया और पुराने आयुक्त के अहाते के एक पेड़ पर उन्हें फांसी पर लटका दिया गया । १६ अप्रील, १८५८ को ठाकुर को फांसी मिली और दिसम्बर १८५८ में उनके ९७ ग्रामों को जब्त कर लिया गया । साथ-साथ पान्डे गणपत राय के ११ ग्रामों की भी यही दशा हुई । लेकिन विश्वनाथ शाही तथा पान्डे गणपत राय के पकड़नेवालों को इनाम देने के लिये भी पता नहीं लगाया जा सका । वे लोग जान पर ही आफत समझते थे । चौरिया का भोला सिंह जिसने विद्रोहियों की मदद की थी, ऐसा कहा जाता है कि उसे एक अवरुद्ध कमरे में बन्द कर दिया गया जहां वह मर गया ।

ब्रिटिश अधिकार की पुनःस्थापना के साथ ही ईसाई धर्म प्रचारकों ने वापस लौटकर तत्परता दिखलाई और उनके द्वारा इंगलिश मिशन, डब्लिन युनिवर्सिटी मिशन और कैथोलिक मिशन की स्थापना की गयी । १८५७ के आन्दोलन का रांची के ऊपर या एक तरह से पूरे छोटानागपुर प्रमंडल के ऊपर यह असर हुआ कि पादरियों ने धर्म परिवर्त्तन का कार्य बड़े उत्साह के साथ शुरू कर दिया और इसमें वे बहुत कुछ सफल भी हुए । एक हाथ में अस्पतालों और स्कूलों की स्थापना तथा दूसरे हाथ में ईसा मसीह के आदेश को लिये हुए पादरी जिले के आन्तरिक हिस्से तक पहुँचे गये । उनलोगों ने पूरे उत्साह से काम किया और इसीलिये काफी सफल भी रहे । उनके लिये धर्म परिवर्तित लोगों की समस्यायें अपनी जैसी मालूम पड़ती थीं ।

१४ अगस्त १८५७ को कैम्प हजारीबाग से, कलकत्ता, भारत सरकार के सचिव को, रांची की हालत के बारे में एक संवाद भेजा गया कि रांची से यूरोपियन लोग भाग चुके थे। ऐसा लिखा हुआ था कि सभी प्रशासनाधिकारी और बटालियन के अफसर हजारीबाग चले गये थे और वहां अंग्रेजी फौज की आने का इन्तजार कर रहे थे। उसमें आग्रह किया गया था कि सैनिक कानून (Martial law) को पूरे देश में जारी किया जाय, क्योंकि तत्कालीन स्थिति बड़ी ही गंभीर थी। हजारीबाग आये हुए यूरोपियन लोगों में से कर्नल रोबिन्सन, कप्तान डाल्टन, ओक्स, डेविस, लेफ्टिनेंट वर्च, ग्राहम, रीव, मिडिल्टन, डा० बार्मफोर्ड, सार्जेन्ट-मेजर मेकी और चाइल्ड थे।

५ अगस्त, १८५७ से १३ मई, १८५९ तक आयुक्त डाल्टन तथा अन्य लोगों के द्वारा लिखे गये चालीस पत्रों में से जिनका जिक्र सिंहभूम परिच्छेद में आया है, कुछ रांची जिले के आन्दोलन का भी वर्णन करते हैं। डाल्टन यूरोपियन अफसर और रामगढ़ लाइट इन्फैन्ट्री के साथ डोरन्डा (रांची) को छोड़ चुका था, लेकिन छोड़ने के एक दिन पहले उसने तार द्वारा संवाद भेज दिया था। पत्रों में भी उसने लिखा था कि किस परिस्थिति में विद्रोह शुरू होने पर रांची उसे छोड़ना पड़ा था। डाल्टन के अनुसार हजारीबाग का विद्रोह और खासकर उनको वश में करने के लिये भेजी हुई ८वीं टुकड़ी के फौजों का रास्ते में बगावत की खबरों से संकेत मिलता था कि रांची के मुख्यालय में भी आन्दोलन होगा। यद्यपि डाल्टन रांची से भाग निकला था फिर भी उसे परिस्थितियों के अध्ययन के आधार पर आशा थी कि जमींदार लोग अवश्य ही अंग्रेजों का साथ देंगे, अगर अंग्रेजों का उपयुक्त दल शीघ्र व्यवस्था कायम करने को आगे बढ़े। डाल्टन ने ३०० आदमियों तथा दो गोले भेजने को लिखा था। दूसरे पत्र में भी उसने लिखा था कि केवल संगीन युद्धास्त्रों से ही विद्रोहियों को ठंढा किया जा सकता है। कुछ भी हो, वे लोग बहुत कम युद्ध सामग्रियों को इकट्ठा कर सके हैं। फिर एक दूसरे पत्र में जो ११ अगस्त १८५७ को लिखा गया था, डाल्टन के नैराश्य की भावना झलकती है। उसने लिखा था कि उसे रांची से पलायन किये हुए दो हफ्ते गुजर चुके थे, किन्तु मदद कहीं से नहीं आयी थी। अतः उसके विचार से यह उपयुक्त था कि ग्रैण्ड ट्रंक रोड के सहारे ही बढ़ा जाय, क्योंकि उसके पास की अत्यल्प फौजों के भरोसे बैठा नहीं जा सकता है और खासकर विद्रोह की हालत में तो खतरा और भी बढ़ने की संभावना थी। डाल्टन ने पुनः अनुरोध किया था कि फौजों की थोड़ी ही संख्या से विद्रोही परास्त किये जा सकते थे तथा इस कार्य में जितनी देर की जायगी, पुनः व्यवस्था कायम करने में उतनी ही दिक्कतें होंगी।

डाल्टन एक छोटी फौजी जत्थे को बगोदर में छोड़कर ग्रैण्ड ट्रंक रोड होते हुए रैट्रे के सिक्खों के एक दस्ते के साथ बूढ़ी आ गया। उक्त अवसर पर ग्रैण्ड ट्रंक रोड उपयुक्त रास्ता था क्योंकि इसी से होकर सरकारी फौजें मदद में आती-जाती थीं और विद्रोहियों ने उस पथ से आवागमन परित्याग कर दिया था।

अगस्त, १८५७ के अन्त तक डाल्टन बूढ़ी में ही रुका रहा और वहीं से घाटवालों को आदेश भेजता था कि यदि वे पहाड़ी मार्गों को खुला नहीं रख सकेंगे अथवा किसी तरह विद्रोहियों की मदद करेंगे, तो उन्हें उसके लिये उत्तरदायी माना जायगा। उन्हें ऐसी सजा मिलेगी जिसका उदाहरण कायम हो जायगा तथा उनकी पूरी संपत्ति भी जब्त कर ली जायगी।

स्वभावतया हजारीबाग पर पुनः अधिकार हो जाने से डाल्टन बहुत खुश हुए। रामगढ़ बटालियन के विद्रोही रांची में करीब ६०० की तायदाद में थे। उनलोगों में लूटने

की उत्सुकता ज्यादा थी और नेतृत्व विवादास्पद था। छोटानागपुर के राजा जैसे भूस्वामियों का पूर्णरूपेण साथ प्राप्त नहीं था। अतः वे लोग काफी सोच-विचार के बाद रांची से चल पड़े। उनका ध्येय घाटियों को पार करके रोहतासगढ़ में कुंवर सिंह के दल से जाकर मिलने का था। ऐसा ज्ञात होता है कि कुंवर सिंह से, पहले से ही पत्राचार चल रहा था। डाल्टन के पत्रों से विदित होता है कि विद्रोहियों की आगे बढ़ने की गति बहुत धीमी थी। वे प्रतिदिन ७-८ मील की रफ्तार से बढ़ रहे थे।

पत्राचार के अध्ययन से पता चलता है कि मेजर इंगलिश के अधीन डाल्टन को एक फौजी जत्था दिया गया। उनके साथ वह हजारीबाग और चटोपालू होते हुए रांची पहुँचा और उसे पुनः अपने अधीन कर लिया। एक चूटिया के जमींदार हरि सिंह बरेक ने विद्रोहियों का रास्ता रोकने के लिये सड़क पर बहुत से पेड़ों को काट कर गिरा दिया था। किन्तु हरि सिंह को आत्म समर्पण करना पड़ा जब उनके आदमियों पर गोले बरसने लगे।

बागी सिपाही अन्ततः चतरा की ओर बढ़े। चतरा में लड़ाई हुई और अंग्रेजों की विजय हुई। युद्धास्त्र, गोले और बहुत बक्सों में लूटी हुई सम्पत्ति जब्त की गई। इस तरह विद्रोहियों का चतरा से निकाल बाहर किया जाना सारे छोटानागपुर प्रमंडल में प्रचारित हो गया कि पूरे छोटानागपुर पर ब्रिटिश लोगों ने कब्जा कर लिया। सूबेदार जयमंगल पांडे, नादिर अली खां और अन्य व्यक्ति पकड़े गये। किन्तु एक तूफानी अग्रणी जमादार मधु सिंह किसी तरह बच निकला। इसी चतरे की लड़ाई में सैकड़ों विद्रोही बुरी तरह कत्ल किये गये और इसी की जीत के आधार पर छोटानागपुर में ब्रिटिश सत्ता पुनः कायम हो गई। साथ ही साथ इस हार से विद्रोहियों में जो नैराश्य की भावना आई वह और जगहों में भी हार का कारण बनी।

छोटानागपुर प्रमंडल के आयुक्त तथा रांची मंडल के उपायुक्त के अभिलेख गृह में सुरक्षित पत्रों के अध्ययन से हमें न केवल रांची मंडल का बल्कि समस्त प्रमंडल का १८५७ के आन्दोलन की गतिविधि के बारे में सूचनायें प्राप्त होती हैं। उनमें से कुछ पत्र निम्नलिखित रूप के हैं।

छोटानागपुर के आयुक्त से बंगाल सरकार के सचिव के नाम से प्रेषित ६७ वां पत्र दिनांक १९वीं अप्रील, १८५८ में वर्णन मिलता है कि बंगाल सरकार को आयुक्त ने अनुरोध किया था कि १८५८ के अधिनियम १० के उपबन्धों को सभी जिलों के नागरिक. या राजनीतिक सभी मामलों में लागू किया जाय, जहां यूरोपियन पदाधिकारी हों। यह एक महत्त्वपूर्ण पत्र है, क्योंकि इसमें डाल्टन का यह आशय भी झलकता है कि जमीन्दार लोग आन्दोलन के समय निष्क्रिय रूप से ही सरकार के पक्ष में रहे। यदि इसके विपरीत अधिकारियों को उनका सक्रिय सहयोग मिलता तो आन्दोलन शुरू में ही दबा दिया जाता। उसका मत था कि राजा तथा जमींदार चुप बैठे थे, बल्कि कहीं-कहीं गुप्त मदद तथा प्रोत्साहन भी विद्रोहियों को दिया करते थे। जहां तक ग्रामीणों का सवाल था, वे लूटने के लोभ को संवरण नहीं कर सके। आयुक्त को असीम दुख था कि विद्रोही अपराधियों को पकड़वाने के लिये इनाम की घोषणा होने पर भी एक भी दृष्टांत ,नहीं मिला, जिसने इस तरह कोई आदमी इनाम का भागी बना हो। बहुत से अपराधी निस्संदेह पकड़े गये लेकिन जनता की मदद से नहीं बल्कि फौज तथा पुलिस की मेहनत से।

आयुक्त के अवलोकन से पता चलता है कि आन्दोलन बहुत गहरे तौर पर व्याप्त था। यह मात्र सैन्य विद्रोह नहीं था। यद्यपि कुछ अंश में वे लोग लूट-पाट भी किये थे फिर भी उन विप्लवियों को—अगर उन्हें यही कहा जाय—जन-सहयोग प्राप्त था। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि पूरा देश भय से त्रस्त हो उठा और कुछ भी नहीं कर सका। विद्रोही कहे जाने वालों की संख्या ही कितनी थी?

आयुक्त के १३ वीं जुलाई, १८५८ के एक दूसरे पत्र में लिखा है कि पोरहाट के विद्रोहियों के लिये झालदा और सिलो से पुराने ढर्रे की बन्दूक भेजी जाती थीं। इन्हें बनाने वालों तथा बेचने वालों का पता लगाने के लिये पुलिस अफसरों को नियुक्त किया गया और अन्त में लेफ्टिनेंट रीब्स के मातहत एक दल ने रघुदेव के जत्थे पर आकस्मिक अभियान में ३० उक्त तरीके की बन्दूकों को जब्त किया। यहां उल्लेखनीय है कि झालदा अभी भी लौह-निर्मित चीजों के लिये प्रसिद्ध है।

छोटानागपुर के सबसे बड़े जमींदारों में से ठाकुर विश्वनाथ शाही के सम्बन्ध में बहुसंख्यक पत्र मिलते हैं। विश्वनाथ शाही ने, जैसा कि जिक्र किया जा चुका है, आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और गिरफ्तार कर लिया गया। लोहरदगा के आयुक्त ने लिखा कि उन्होंने शुरू, २०वीं अगस्त, १८५७, से ही आन्दोलन में विद्रोहियों के साथ काम किया। बंगाल सरकार के नाम ४ अक्टूबर, १८५८ को छोटानागपुर के उपायुक्त ने अपने पत्र संख्या ६ में लिखा कि उनकी सारी संपत्ति जब्त कर ली जाय। इस तरह ठाकुर विश्वनाथ शाही को विद्रोह में भाग लेने के फलस्वरूप फांसी की ही सजा नहीं मिली, बल्कि उनकी पूरी सम्पत्ति और उनके पुरोहित के अधीन मन्दिर को भी जब्त कर लिया गया। बाद में सरकार ने मन्दिर की संपत्ति को मन्दिर के साथ, पुरोहित के हवाले कर दिया।

जिस शीघ्रता से टिकैत ओमरांव सिंह, शेख भिखारी, ठाकुर विश्वनाथ शाही और पांडे गणपत राय को फांसी दे दी गई, उससे प्रमाणित होता है कि अंग्रेज उनसे विशेष भयभीत और त्रस्त थे। ११वीं अगस्त, १८५८ को आयुक्त (छोटानागपुर) के नाम बंगाल सरकार के द्वारा भेजी गयी पत्र संख्या ३११८ से विदित होता है कि टिकैत ओमरांव सिंह और शेख भिखारी को ६ जनवरी, १८५८ को सजा का निर्णय दिया गया और ठीक दो दिन बाद उन्हें फांसी मिली। ठाकुर विश्वनाथ शाही और पांडे गणपत राय को दंड सुनाने के दिन ही क्रमशः १६वीं अप्रील, १८५८ और २१वीं अप्रील, १८५८ को फांसी दे दी गयी। टिकैत ओमराव सिंह, वृज भूषण सिंह, शेख भिखारी, चामा सिंह, राम लाल सिंह और विजय राम सिंह को पहाड़ी घाटियों को बन्द करने के लिये सजा दी गई। शीतम चौधरी, और रामगढ़ बटालियन के बाजार चौधरी को १० वर्ष की सजा कठोर श्रम के साथ दी गई। बहोरन सिंह, जिसने जिलाधीश (प्रिंसिपल असिस्टेन्ट), लोहरदगा पर आक्रमण करने की योजना बनायी थी, उसे ५वीं जनवरी, १८५७ को फांसी की सजा मिली।

ठाकुर विश्वनाथ शाही के सम्बन्ध में उपरोक्त पत्रों में लिखा है कि वे छोटानागपुर के प्रभावशाली जमींदारों में से एक थे और उन्होंने विद्रोहियों में शामिल हो जाने के पश्चात् सरकारी पदाधिकारियों को वापस लौटने के अवरोध स्वरूप पहाड़ी रास्तों को बन्द कर दिया था। पत्र में आगे लिखा है कि कैदी ने सिपाहियों को बादशाही वेतन देने का वादा किया। उसने कुछ धनी व्यापारियों को पकड़ कर बुरी तरह तंग किया और लुटवा दिया। उसका ध्येय था कि वे २५,००० रुपये दे दें जिससे सरकार के विरुद्ध लड़ाई सफलतापूर्वक की जा सके। रामगढ़ बटालियन की चतरा में हार हो

जाने के बाद कैदी छोटानागपुर लौटा और बहुत बड़ी संख्या में लोगों को इकट्ठा कर, कई गांवों को लूटा और सरकारी थाना, बरवा में आग लगवा दी। लोहरदगा शहर पर आक्रमण करने के ख्याल से कैदी ने १,१०० आदमियों का जत्था तैयार किया। वह उन आदमियों के साथ शहर तक पहुँचा ही था कि रात में लोहरदग्गा स्थित प्रिन्सिपल असिस्टेन्ट ने अपने कुछ घुड़सवारों के साथ धावा बोल दिया और उसे पकड़ लिया। गत १६वीं अप्रील को न्यायालय के फैसले के मुताबिक उसे फांसी दे दी गयी।

विद्रोहियों की लम्बी तालिका में समाहरणालय के अन्तर्गत जिलाधीश के दफ्तर में काम करने वाला एक जमादार कुरबन अली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। १८५७-५८ में रांची आयुक्त के दफ्तर के पत्राचारसंग्रह में कुरबन अली की विशेष रूप से चर्चा की गयी है। उसको विद्रोह करने तथा ४थी अगस्त, १८५७ के लगभग पादशायी राज्य (**Pedshaee Raj**) घोषित करने के अपराध में १५ वर्ष की सजा दी गयी। इससे कुछ ऐसा आभास भी मिलता है कि कुरबन अली ने केवल सक्रिय रूप से विद्रोह में भाग ही नहीं लिया था, बल्कि जिलाधीश के जमादार होने की हैसियत से जमींदारों और विप्लवी फौजों के बीच संपर्क जोड़ने का भी काम किया था। ठाकुर किसन दयाल सिंह और पलामू के अन्य जमींदारों के बीच भी वह संवादवाहक का काम करता था।

प्रमुख नेताओं के अतिरिक्त अधिकारियों ने गांव के उन मुखियाओं को भी पकड़ना शुरू किया जो या तो आन्दोलन में भाग लिये थे या उनकी भावनाओं का स्वागत किये थे। पत्र संख्या ७७, दिनांक १५वीं अक्टूबर, १८५७, प्रेषक प्रिन्सिपल असिस्टेन्ट कमिश्नर, प्रेषित सीनियर असिस्टेन्ट कमिश्नर लोहरदग्गा, में उन मुखियों की लम्बी सूची है जिन्होंने मानभूमि और हजारीबाग जिले के विद्रोह में हाथ बंटाया था। उक्त नामावली में रांची जिले तक के आदमियों का नाम मिलता है। पहाड़ी इलाकों में घाटवालों ने स्थिति से काफी लाभ उठाया और बहुधा पुलिस तथा सेना की छोटी टोलियों को दूर रखने में सफल भी हुए थे। जमींदारों, खास कर छोटे-छोटे जमींदारों पर अंग्रेज पूर्ण संदेह करने लगे थे। इस वक्त अधिकांश पुलिस थानों का संचालन भी वे ही लोग करते थे। जमींदारी थानों का सिलसिला और दबदबा उपेक्षाभाव से या अन्तर्द्वन्द्व से पूर्णतया नष्ट हो चुका था। यहां यह उल्लेखनीय है कि इन जमींदारों और थानों का शान्ति स्थापना के बाद खात्मा कर दिया गया। फौजी पेन्शन प्राप्त लोगों पर भी संशय होने लगा। २५ अगस्त १८५६ को बंगाल सरकार के सचिव ने फौजी विभाग के सचिव को पत्र संख्या १४३४ में सतर्क कर दिया कि सैन्य निवृत्ति वेतन भोगी पर कड़ी निगरानी रक्खी जाय। इसका कारण बताया गया कि कुंवर सिंह के बागी फौजों में बहुत से सरकारी पेंशन प्राप्त फौज भी थे।

रामगढ़ बटालियन और ८ वीं बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री की फौजी टुकड़ी के बलवे के फलस्वरूप इस प्रमंडल के जिले में जो सरकारी संपत्ति तथा सार्वजनिक अभिलेखों की बर्बादी हुई थी उसकी चर्चा राजस्व बोर्ड के सचिव के नाम से प्रेषित २६ अक्टूबर १८५७ की पत्र संख्या ४३६ में की गई है। इस पत्र से जाहिर होता है कि खजाने, मुद्रांकित पत्र तथा अफीम आदि को छोटानागपुर प्रमंडल के सभी कचहरियों में लूट लिया गया और अभिलेखों को या तो बिलकुल बरबाद कर दिया गया या उसका सिलसिला नष्ट कर दिया गया। एक सिंहभूमि की कचहरी ही ऐसी बच गई जहां अभिलेख बचे रहे। सिंहभूमि में लूटे हुए खजाने का ५०,३०३ रुपया मेजर इंगलिश के अधीनस्थ फौजी टुकड़ी द्वारा पुनः प्राप्त किया गया और २५,५०० रुपये पोराहाट राजा के प्रयत्न

से मिले। आयुक्त को मुद्रांकित पत्र और डाक लेबुल का, जो बरबाद कर दिये गये थे अथवा लूट लिये गये थे, पता लगाने के लिये कहा गया तथा उन्हें प्राप्त होने वाले पत्रों का १५ प्रतिशत मूल्य इनाम में दे देने के लिये प्राधिकृत किया गया। लेकिन कोई भी पत्र ऐसा नहीं मिलता जो बता सके कि पुरस्कार की घोषणा का कुछ भी प्रभाव लोगों पर पड़ा।

एक दूसरी पत्र संख्या ७, दिनांक ७ अक्टूबर, १८५७ से, जो आयुक्त डाल्टन की ओर से राजस्व बोर्ड के सचिव (फोर्ट विलियम) को लिखा गया था पता चलता है कि रामगढ़ बटालियन की पैदल सेना तथा तोप वाली टुकड़ी ने २ अगस्त को डोरन्डा (तत्कालीन लोहरदग्गा) में बलवा कर दिया और उसी दिन सैनिक तथा नागरिक जिला पदाधिकारी वर्ग खजाने को विद्रोहियों के कब्जे में छोड़कर चले गये। यहां फिर गत २२ तारीख को पुनः कब्जा किया गया। लेकिन बीच के २० दिनों में ही फूस के घरों की सारी कचहरी तथा अभिलेख सभी जलकर भस्म हो चुके थे। इस पत्र से संलग्न स्मृति पत्र में कई लूटे हुए खजानों का भी अन्दाज मिलता है, यथा लोहरदग्गा खजाने से १,६२,२९६-४-८ पाई, हजारीबाग खजाने से ९३,८७२-१-१½ पा०, मानभूमि खजाने से १,११,१९४-३-८ पा० तथा सिंहभूमि खजाने से ३७,७०५-७-० पा० के लूटे जाने का विवरण मिलता है।

कुछ प्राचीन पत्राचारों से प्रगट होता है कि अगस्त, १८५७ तक शासन-व्यवस्था मजबूत करने के लिये कड़ी कार्रवाई की जाने लगी। ता० १ अगस्त १८५७ के सरकारी आदेश संख्या १५५५ के अनुसार १८५७ के अधिनियम १४, धारा ७ के अधीन लोहरदग्गा के प्रिंसिपल असिस्टेन्ट को कमिश्नर बना दिया गया। इसके बाद ही १५ अगस्त १८५७ की परिपत्र संख्या १७९२ निकाली गयी जिसके अनुसार फौजी कानून (मार्शल लॉ) और १८५७ की १४ वीं धारा को जिले में दीवानी तथा फौजदारी कचहरियों के अधिकारों और न्यायों की उपेक्षा कर, जारी कर दिया गया। ऐसा इन्तजाम कर दिया गया कि फौजी कानून की घोषणा से फौजी अफसरों द्वारा ही कार्यसंचालन होने का कोई सम्बन्ध नहीं रहे। उच्च श्रेणी के फौजदारी अदालतों की कार्यवाही स्थगित कर दी गयी। भयानक अपराधों का निर्णय १८५७ की १४ वीं धारा के अनुसार नियुक्त, कमिश्नर ही देने लगे। जिले के सत्र न्याय धीश को, जहां तक उक्त धारा लागू की गयी थी, सरकार द्वारा अधिकार मिला कि विद्रोह से सम्बन्धित मामलों की वे आयुक्त की हैसियत से तथा साधारण तौर के मामलों का न्यायाधीश की हैसियत से जांच करें।

समय-समय पर बंगाल प्रांत के विद्रोह में प्रमुख भाग लेने वालों की विवरणात्मक सूची मांगी जाती थी तथा उनके बाप-दादों का और पुत्र पौत्रादियों का नाम भी मांगा जाता था। ऐसी सूची विभिन्न जिलों में अक्सर प्रसारित की जाती थी जिसका उद्देश्य था कि बरखास्त सिपाही अथवा विद्रोही सरकारी नौकरी में नहीं लिये जायं।

एक ऐसा परिपत्र भी था जिसके मुताबिक विद्रोह और खून के अपराध में फांसी नहीं देने के लिये अधिकारियों को पर्याप्त प्रमाण पेश करना पड़ता था।

ऐसे प्रलेख हैं जिससे स्पष्ट होता है कि विश्वनाथ शाही और गणपत राय दोनों नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार शीघ्रातिशीघ्र प्रसारित किया गया जिससे स्थानीय प्रशासकों में साहस का संचार हो। १३ मार्च, १८५८ को फोर्ट विलियम से बंगाल सरकार के सचिव द्वारा छोटानागपुर के आयुक्त को दिया गया पत्र उस पत्र की प्राप्ति का जिक्र करता है जिसमें नौवांगढ़ के विद्रोहियों के भगदड़ का तथा गणपत राय

और विश्वनाथ शाही दोनों नेताओं की गिरफ्तारी के फलस्वरूप लोहरदग्गा जिले में शान्ति स्थापना का जिक्र है। १८५७ के अधिनियम २५ के अधीन कार्रवाई की जाती थी जिसके फलस्वरूप फौज के अफसरों तथा सिपाहियों की सम्पत्ति विद्रोह के अपराध में जब्त की जा सकती थी और निर्दोष साबित होने पर वापस भी की जा सकती थी।

ऐसे भी प्रलेख हैं जिनसे पता चलता है कि रांची, हजारीबाग तथा पलामू के विद्रोही जो उत्तर प्रदेश चले गये थे, कुंवर सिंह से मिलने को बढ़ रहे थे। पेंशन प्राप्त फौजों पर पक्का संदेह किया गया और बंगाल सरकार के सचिव के द्वारा भारत सरकार फौजी विभाग के सचिव को एक पत्र, संख्या १४३४ में २५ अगस्त, १८५७ को आदेश निकाला गया कि सभी पेंशन प्राप्त सिपाहियों को अपने पेंशन देने वाले अफसर के समक्ष खास अवधि के भीतर हाजिर हो जाना चाहिये।

सेनाध्यक्ष (Commanding field Force) के हस्ताक्षर के साथ कैम्प रांची से एक उद्धृतांश, दिनांक १ नवम्बर, १८५७ का मिलता है जिसमें रामगढ़ लाइट इन्फैन्ट्री बटालियन के उन सिपाहियों का उल्लेख है जिन्हें ७ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक की कालेपानी की सजा विद्रोह करने के अपराध में दी गयी थी। सजा का हुक्म १८५७ की १४वीं धारा के अन्तर्गत सेनापति मेजर मैकडोनाल्ड की अध्यक्षता में आयोजित फौजी न्यायालय में सुनाया गया।

नई दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित विदेशी विविध अभिलेखों में ऐसे व्यक्तियों की सूची मिलती है जिनको अंग्रेजी सरकार की सेवा के फलस्वरूप इनाम मिला था। यह सूची लोहरदग्गा के परगनैत जगतपाल सिंह के बारे में निम्नलिखित विचार व्यक्त करती है :—

> "इसे देशी पैदल सेना के सिपाहियों के दो दलों के विरुद्ध पिथोरियाघाट को अपने कब्जे में रखने तथा छोटानागपुर के स्थानापन्न आयुक्त के रांची से अनुपस्थित रहने पर भी इनके साथ पत्राचार जारी रखने के पुरस्कार में राजाबहादुर की पदवी और खिल्लत दी गई। सूची में लोहरदग्गा के महाराजा जगन्नाथ शाही देव का नाम भी आया है जिन्होंने अपने भतीजे और चचेरे भाई के साथ सरकार की मदद की और परिणामस्वरूप धन्यवाद प्राप्त किया। झाल्दा के राजा का नाम भी सहायकों में लिया गया था। उसके बारे में पत्र में विवरण है कि राजा हजारीबाग जेल में कैदी था और विद्रोहियों द्वारा मुक्त कर दिया गया। मुक्त होने पर उसने रांची तथा पुरुलिया के बीच के रास्ते को बन्द कर उस दिशा से सैन्यद्रोहियों को बढ़ने में रुकावट पैदा कर दी।"

छोटानागपुर के महाराजा और उनके तीन भतीजे की अनवरत राजभक्ति दिखलाने के फलस्वरूप यथोचित सराहना की गयी। यहां यह उल्लेखनीय है कि छोटानागपुर महाराजा की निष्क्रिय राजभक्ति अंग्रेजों के लिये बड़ी ही उपयोगी हुई।

कुछ उपरोक्त जैसे ही लोगों की राजभक्ति के पुरस्कार में दो नाली बन्दूकों की खिल्लत के लिये सिफारिश की गई। इनमें बरैक हरि सिंह, इमाम बक्स खां, बरैक जब्बू सिंह, ठाकुर भीम सिंह, चम्मन सिंह और बेचन मिसिर आदि थे।

आन्दोलन के बाद की हालत सारांश में ऐसी हुई कि व्यवस्था कायम होने के कुछ ही दिनों के अन्दर देश में स्वाभाविक प्रगति हो गई। दूने उत्साह के साथ पादरी लोग वापस आकर काम करने लगे। गिरे हुए वर्गों की दशा में ठीकेदार और जमींदार लोगों के विरुद्ध सुधार लाने के साथ-साथ वे लोग ईसाई धर्म के संदेश का प्रचार करने लगे। शीघ्र ही एक के बाद दूसरा, इंगलिश मिशन, डब्लिन यूनिवर्सिटी मिशन तथा कैथोलिक मिशन आदि खुल गये। वस्तुतः रांची जिले में धर्म परिवर्त्तन का कार्य तेजी के साथ होना संभव हो गया।

व्यवस्था कायम हो जाने से अमलागण और बाहरी बाशिन्दे भी वापस आ गये। प्रशासन व्यवस्था के परिवर्त्तनों का उल्लेख हो चुका है। प्रशासकों का तत्कालीन कार्य आदिवासियों को संतुष्ट करना था। ईसाई संस्थायें आदिवासियों की ओर से जमींदार के विरुद्ध कोर्ट में भी मदद देती थी। भूमिपति लोग ईसाइयों के विरुद्ध झूठे डकैती के मामले दायर करने लगे और इसमें जमींदारी पुलिस सहायता देती थी। अपराधों की स्थिति शान्तिपूर्ण स्थापन के बाद की दशाब्दियों के उपलब्ध बलवे, मारपीट, खून और लूट के आंकड़ों से देखे जा सकते हैं। टेनैन्सी नियम को जरूरी समझा गया। १८५९ ई० में नागरिक प्रक्रिया संहिता (सिविल प्रोसिड्योर कोड) के बाद १०वीं धारा लागू की गयी। १८७२ में छोटानागपुर टेन्योर्स ऐक्ट पास किया गया। १८६१ ई० के पुलिस ऐक्ट के मुताबिक शीघ्र कारंवाई होने लगी। १८७८ में लोहरदग्गा और हजारीबाग रूरल पुलिस ऐक्ट तथा १८८७ में छोटानागपुर पुलिस ऐक्ट पास हुए। १८६५ ई० में रजिस्ट्रेशन ऐक्ट पास किया गया और सर्व प्रथम रजिस्ट्रार इस जिले में श्री एच० एल० कालीफैन्ट था। १८६९ ई० में रांची म्युनिसिपैलिटी की स्थापना हुई। ये सभी कार्य लोगों में आम प्रगति तथा समृद्ध शासन व्यवस्था लाने के ख्याल से किये गये।

लेकिन उपरोक्त कार्यों के बावजूद भी कुछ मूल कारण ऐसे रह गये जिससे असंतोष पूरा समाप्त नहीं हुआ और कभी-कभी बाद में फिर भभक उठा, यथा सरदारी लड़ाई तथा अन्य कृषक आन्दोलन १८९४-९५ और फिर १९०० आदि में।

छठा परिच्छेद

एक सिंहावलोकन

छोटानागपुर तथा संथाल परगना में १८५७ के आन्दोलन को मूलतः अध्ययन किये जाने से पता चलता है कि स्थानीय परिस्थितियों के दबाव से दोनों जिलों में विद्रोह के कारण और उसकी गतिविधि भिन्न भले ही रही हो लेकिन दोनों में मौलिक रूप से कुछ सादृश्य था जो दोनों जगहों के आदिवासियों के मिलते-जुलते तकलीफों तथा हालतों पर आधारित था। अतः दोनों जगहों की खास प्रगति का, जो पहले वर्णित हो चुका है, तुलनात्मक दृष्टि से अवलोकन उपयोगी सिद्ध होगा।

छोटानागपुर तथा संथाल परगना के १८५७ का आन्दोलन, आसन्न कारणों के आधार पर आकस्मिक उबाल नहीं कहा जा सकता है। आन्दोलन के कारणों का विश्लेषण अगर अंगरेजों के आगमन-काल से नहीं, तो कुछ दशाब्दी पहले से जरूर करना होगा। संथाल परगने का १८५७ का आन्दोलन १८५५ के विद्रोह की पृष्ठभूमि पर विस्तारित नहीं हो सका। १८५५ के विप्लव के बाद अधिकारीवर्ग सतर्क थे। उन्होंने १८५५ के विद्रोह के मूल कारणों का कुछ निराकरण भी किया था। संथाली कुचल दिये गये। अत्याचार और दंड की विभीषिकायें उनके दिमाग पर बिल्कुल हरी थीं। अतः यह कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं हुई कि उन्होंने सामूहिक रूप से आन्दोलन में सहयोग नहीं दिया और यही कारण था कि संथाल परगने के आन्दोलन का शीघ्र ही दमन संभव हो सका।

संथाल परगने के १८५५ के "संथाल-हूल" से सतर्क होकर अंगरेजों ने संथालियों को बहुत-कुछ सुविधा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करने की कोशिश की। लेकिन छोटानागपुर के सिंहभूमि तथा अन्य जिलों में १८५७ के पहले भी आदिवासियों के ऐसे विद्रोह हुए थे, जिसका असर अंगरेजों पर कुछ भी नहीं हुआ। वहां की हवा के रुख को नहीं समझ सकने के कारण शासकों ने कुछ भी नहीं किया। हमलोगों ने देखा है कि हजारी-बाग में संथालियों का आन्दोलन संथाल परगने की तरह ही हुआ लेकिन अधिकारी यहां मूल तत्वों की अवहेलना करके तटस्थ बैठ गये। उनकी दिक्कतों को समझने की कोशिश नहीं की गई। सिंहभूमि जिले में भी विराट कोल विद्रोह से सबक सीखा जा सकता था। अधिकारियों ने उनके लिये कुछ किया जरूर, मगर उनकी भलाई उनकी आंखों से देखकर नहीं बल्कि अपनी आंखों से। आन्दोलन के समय जो व्यवस्था कायम हुई वह उतनी ठोस और व्यापक नहीं थी जितनी संथाल परगने की। इसके अलावे सिंहभूमि में अपनी सत्ता दृढ़ करने के इच्छुक अंगरेज वहां के सरदारों से मिले रहने में ही अपनी भलाई देखते थे जिससे, सभी कमजोर पड़कर, कब्जे में रहे। सी बुनियाद पर सारा कार्य होता था और फलस्वरूप अवरुद्ध शांति अर्थात् शून्यता का आभास हर जगह मिलता था। बृटिश अधिकारीवर्ग सिंहभूमि और हजारीबाग की जनता को साथ लेकर बढ़ना नहीं चाहते थे। यही कारण था कि दोनों जगहों के सैन्य विद्रोह में जनता का सहयोग रहा और पूरे क्षेत्र में उत्साह तथा उमंग नजर आता था। केवल आदिवासी ही नहीं, अन्य तरह के बाशिन्दों ने भी बर्खास्त सिपाहियों के कन्धे से कन्धे लगा दिये। सक्रिय या निष्क्रिय किसी भी रूप में उनकी सद्भावना तथा मंगल कामना विद्रोहियों के साथ थी। यह भी सच है कि दोनों जिलों में बहुत-से प्रमुख सरदार और जमींदार अंगरेजों के पक्ष से कायरत थे, अतः आन्दोलन बहुत शीघ्र दबा दिया गया।

हजारीबाग में रामगढ़ के राजा तथा सिंहभूम में सरायकेला के राजा और खरसावां के ठाकुर बड़ी तत्परता से बृटिश का साथ दे रहे थे। साधारण नागरिक तथा शक्तिशाली राजाओं में मतैक्य नहीं था और इस परिस्थिति की अंग्रेजों ने पूरी उपयोगिता उठायी। रांची जिले में आन्दोलन नागरिकों के बीच बहुत कम अंश तक फैल सका। वहां भी बड़े-बड़े सरदार तथा छोटानागपुर के महाराजा आदि ने अंग्रेजों को मदद की। जन-समूह का साथ सैन्य दल को नहीं मिला। फिर भी कुछ जमीन्दारों ने, जो महाराजा की तुलना में नगण्य थे आन्दोलन में भाग लिया। किन्तु सैनिकों ने उत्तेजित होकर नागरिकों के ऊपर अत्याचार तथा व्यर्थ खून-खराबी की। महाराजा भी अन्यमनस्क ही रहे। इन कारणों से ही रांची के आन्दोलन का भी अंग्रेजों के द्वारा शीघ्र दमन सम्भव हो गया। छोटानागपुर के महाराजा ने अगर नागरिकों का साथ दिया होता तो बवंडर चन्ड रूप से फैलता।

लेकिन आन्दोलन से सर्वाधिक आक्रान्त का जिला पलामू था। स जिले में सारी जनता उत्तेजित थी। यहां राष्ट्रीय क्रांति का रूप मालूम होता था। जनसाधारण और भू-स्वामियों ने सम्मिलित रूप से जोर लगाया। यहां सैनिकों का विक्षोभ कम था और जनता का अधिक, इसी जिले में ऐसा देखा गया कि साधारणतया आन्दोलन के दो कारणों में से एक, यथा शक्ति का दावा, विद्रोह का बवंडर लाने में सफल हुआ। भोगता और आदिवासी के सरदारों ने अपनी असहायावस्था का अनुभव किया और वस्तुतः आन्तरिक उत्साह के साथ बेड़ी को हटाना चाहते थे।

यह सत्य था कि जगदीशपुर (शाहाबाद) के कुंवर सिंह के टक्कर में छोटानागपुर के कोई भी नेता नहीं थे और यह भी सत्य था कि आन्दोलन की प्रगति और व्यवस्था आयोजित नहीं थी, लेकिन अंशतः इसका कारण यह था कि बृटिश की समृद्ध ताकत ने विद्रोहियों को अत्यन्त शीघ्र ही कुचल दिया था। अधिक-से-अधिक छोटे जमींदार लोग कुछ देहाती बन्दूकें और तलवार इकठ्ठा कर सके तथा आदिवासी अपनी तीर और धनुष से लड़े। उनके ये युद्धास्त्र बृटिश के तोप-गोलों के सामने बिल्कुल बेकार थे। लेकिन अतिशीघ्र दमन हो जाने के बावजूद भी यह आसानी से कहा जा सकता है कि छोटानागपुर के कुछ विभागों का आन्दोलन जन-आन्दोलन था और यह राष्ट्रीयता रंग से भी रंगा था।

आन्दोलन के अध्ययन से एक और बात की पुष्टि होती है कि छोटानागपुर तथा संथाल परग के जिलों में सभी आदिवासियों के चरित्र तथा स्वभाव में एक समानता पाई जाती है। अति आवेशी, सादे किन्तु अपटु, आराम पसन्द किन्तु विशेष शारीरिक तथा मानसिक श्रम के कार्यों से हिम्मत नहीं हारने वाले, ये आदिवासी अपनी सामाजिक परम्पराओं तथा जन्मभूमि को अतिशय आवेग क साथ प्यार करने वाले होते हैं। सथाल परगना तथा छोटानागपुर के आदिवासियों का जब भी आन्दोलन हुआ है तो उसका कारण यही रहा है कि उनकी प्रिय वस्तुओं पर आघात पहुंचा हो या उनकी भावनाओं की अवहेलना की गई हो। इस क्षेत्र के ऐसे आन्दोलन सैन्य तथा पुलिस शक्ति से दबा दिये जा सकते हैं लेकिन समूल नष्ट नहीं किये जा सकते हैं जो हमलोगों के लिये सोचने का विषय है।

अनुक्रमणिका

ह

बि० स० मु० (रेवेन्यू) २३—मो०—२,०००—१५-१-१९५९—कि० प्र० सिन्हा तथा अन्य

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.